

मेरा धर्म

गांधीजी

सम्पादक

भारतन् कुमारप्पा



नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
महमबाबाद-१४

मूद्रक और प्रकाशक
जीवनजी डाह्याभायी देसायी
मवजीवन मुद्रणालय अहमदाबाद-१

मवजीवन ट्रस्ट, १९६०

पहली आवृत्ति ५०००

सम्पादकका निवेदन

चूँकि गांधीजीका सारा जीवन जिसी प्रयत्नमें बीता कि वे अपने धर्मका यथाशक्ति धुत्तम रूपमें पाछन करें, जिसलिये जिस पुस्तकमें पाठकोंको गांधीजीके लेखा और भाषणोंके अइस अंश देनेकी कोशिश की गयी है जिनसे गांधीजीके धर्मका रुग्मग संपूर्ण चित्र अुपस्थित हो जाय ।

यह काम आसान नहीं रहा है । गांधीजीकी प्रवृत्तियोंका मूछ स्रोत धर्म या जिस बातका अर्थ यह हो जाता है कि अपने सार्वजनिक जीवनके दौरानमें न सिर्फ धर्मके क्षेत्रमें बल्कि राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक जीवनमें भी अुन्होंने जो कुछ कहा या किया अुस सबका समावेश जिस पुस्तकमें किया जा सकता है । अुनकी दृष्टिमें जो धर्म जीवनके प्रत्येक पहलूसे सम्बन्ध न रखे वह धर्म ही नहीं था । अैसी स्थितिमें अुनके धर्मका कोभी भी बर्नन पर्याप्त नहीं हो सकता यदि वह ब्यक्तिगत या सामाजिक जीवनमें अुनके समूचे आचार-दर्शनको पेश नहीं करता ।

जिस कारण हमें पुस्तकमें बहुत विस्तृत क्षेत्रका समावेश करना पड़ा है । साथ ही जिस पुस्तकका आकार छोटा रखनेके लिये हमें सामग्री भी बड़ी सावधानीसे चुननी पड़ी है । और अुसे चुनते हुअे रुगातार जिस बातका भी ब्याप्त रखना पड़ा है कि कोभी महत्वपूर्ण चीज छूट न जाय ।

गांधीजी जन्मसे हिन्दू थे । परन्तु अुनका हिन्दूत्व अपने अंशका निराशा था । अुसकी अड़ें तो प्राचीन हिन्दू धर्ममें ही थीं और बहुत दृढ़ थीं परन्तु अुसका विकास हुमा दूसरे धर्मोंके, खासकर जीसाभी धर्मके सम्पर्कसे — अैसा कि जिस पुस्तकके दूसरे विभाषसे मामूम होगा । वे सब धर्मस्रोतोंसे अमृत-पान करना चाहते थे और जिसलिये वे महसूस करते थे कि सभी धर्म अुनके अपने ही हैं । फिर भी अगर अुनके धर्मका कोभी नाम रखना ही हो तो जिस नामको वे ज्यादा पसन्द करते थे और जो जन्म तथा

स्वभावसे अुनके छिजे अपना था वह है अुनके पूर्वजोंका धर्म — हिन्दू धर्म । जिस जिस धर्मसे अुनका सम्पर्क हुआ अुसीसे अुन्होंने सीखा । मगर बीसा करके वे न तो हिन्दू धर्मके प्रति अन्याय कर रहे थे और न अुसकी मौलिक शिक्षाओंसे दूर हट रहे थे । कारण, स्वयं हिन्दू धर्मकी अपने अपने अितिहासमें यह अेक विशेषता रही है कि अुसके रास्तेमें जो भी नया तत्त्व आया है अुसे या तो अुसने पचा लिया है या अपनी शिक्षाके साथ अुसका समन्वय कर लाया है । किसी पंथ या संस्थापकसे क्या हुआ न होनेके कारण हिन्दू धर्म सीखने बढ़ने और विकास करनेमें स्वतंत्र था । गांधीजी हिन्दू धर्मकी जिस संस्थाओंके तत्त्वके अेक ज्वलंत अुदाहरण हैं । अिसी तत्त्वने हिन्दूत्वको सदा ताजा, सजीव और निरंतर विकासशील रखा है । यह कहा जाय तो अचमूय कोभी अत्युक्ति नहीं होगी कि अिस रूपमें हिन्दू धर्मकी आरमा ही गांधीजीमें प्रगट हुई थी ।

प्राचीन कालमें हिन्दू धर्मने, अपनी संतान बौद्ध धर्मके साथ, तत्कालीन सम्य संसारके भारतसे लगाकर चीन-जापान तक सभी ज्ञात देशों पर प्रभाव डाला था । अिस समय गांधीजीके द्वारा हिन्दू धर्मका पुनरुज्ज्व हो रहा है और सभी राष्ट्र आदरके साथ भारतके अान्ति और अहिंसाके सन्देशको सुनते हैं । अिसमें प्रका नहीं कि मगर गांधीजीका धर्म अिस भूमिके अेक सिरेसे दूसरे सिरे तक फैल जाय तो दुनियाको मानव-जातिके अिर पर महानाशकी छायाकी भांति मंडरा रहे भौतिकवाद, अीम और संपर्पके अतरेसे अचानेमें भारत आज भी बहुत कुछ कर सकता है ।

किन्तु गांधीजीका सन्देश भारतके छिजे ही नहीं, बल्कि सारे संसारके छिजे है । अैसा अुन्होंने अुब कहा था वे केवल हिन्दू धर्मकी ही नहीं बल्कि सब धर्मोंकी भावनाको पुनर्जीवित करना चाहते थे । अुनकी रायमें यह भावना है जीवनमात्रक प्रेमके रूपमें प्रगट होनेवाला अीश्वर-प्रेम । अिसलिये अुनकी पुकार यह नहीं है कि दूसरे लोग हिन्दू बन जायें, वे तो कहते हैं कि अीसाभी बौद्ध अुसलमान और दूसरे सब अपने अपने धर्मकी शिक्षाओं पर अमल करें । अुनका अिदवांस था कि केवल अिसी प्रकार मनुष्य अपने समस्त मानव-अनुभूतोंके साथ अान्तिपूर्वक रह सकता है और अेक-दूसरेका अत्याज-आपन कर सकता है । अिसलिये अिस पुस्तकने

अध्ययनसे हिन्दू और पैर-हिन्दू दोनोंको अच्छा जीवन व्यतीत करनेकी प्रेरणा और मार्गदर्शन मिलना चाहिये।

स्नानकी मर्यादाके कारण हम गांधीजीके सामाजिक सवालसे सम्बन्धित विचारोंकी रूपरेखा-मात्र ही दे सकते हैं। जिन्हें अधिक पूरी तफ्तीस चाहिये वे नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद-१४ द्वारा प्रकाशित अग्य पुस्तकोंका आश्रय ले सकते हैं अदाहरणके लिये 'सर्वोदय', 'अहिंसक समाजवादकी ओर' 'स्त्रियां और धूमकी समस्याएँ' 'हरिजनसेवकोंके लिये' आदि।

अस पुस्तकमें सामग्रीका क्रम-विभाजन हमारा अपना है तथा विभागों और सेलोंके स्वीर्यक भी हमारे ही दिये हुये हैं।

मूल अंग्रेजीसे हिन्दी अनुवाद श्री रामनारायण चौबरीने किया है।

भारतम् कुमारप्पा

अनुक्रमणिका

सम्पादकका निवेदन ३

पहला विभाग : धर्मसे मेरा क्या अभिप्राय है ?

- | | |
|-----------------------------|---|
| १ धर्मकी व्याख्या | ३ |
| २ नैतिकताका केन्द्रीय स्थान | ५ |

दूसरा विभाग मेरे धर्मके श्रोत

- | | |
|---|----|
| ३ परमें | ६ |
| ४ पाठशालामें | ७ |
| ५ विलायतमें अपनी छात्रावस्थाके दिनोंमें | १० |
| ६ रायचन्द्रमाझी | १३ |
| ७ दक्षिण अफ्रीकामें | १४ |

तीसरा विभाग सब धर्मोंका सम्मान

- | | |
|--|----|
| ८ सब धर्म भीषणर तक से जाते हैं | २१ |
| ९ दूसराके धर्मग्रंथोंके प्रति मेरा रवैया | २४ |
| १० स्वधर्म | २७ |
| ११ औसाजी धर्म | २९ |
| १२ बीद धर्म | ३० |
| १३ अिस्थाम | ३१ |
| १४ यियोसॉफी | ३२ |
| १५ प्रेतबिद्या | ३२ |
| १६ धर्मोंकी तुलना | ३३ |
| १७ धर्म-परिवर्तन | ३६ |
| १८ बेहतर तरीका | ३८ |

घोषा विभाग मेरी श्रीश्वर-निष्ठा

१९ श्रीश्वर हैं	३९
२० श्रीश्वरका स्वरूप	४४
२१ श्रीश्वरमें मेरी निष्ठा	५१
२२ अन्तर्निधि	५६

पाँचवाँ विभाग मेरे धर्मका व्यावहारिक रूप

२३ प्रेमधर्म	५९
२४ त्यागमयी सेवा द्वारा प्रकट होनेवाला प्रेम	६१
(क) सेवा	६१
(ख) त्याग	६५
२५ अस्यायके विरोधमें प्रेम	७१
(क) द्वेषके विच्छेद प्रेमधर्म	७१
(ख) सीधी लड़ाई	७७
(ग) युद्धका अहिंसक साधन	८८
२६ प्राणी-जगतके प्रति प्रेम	९२
(क) प्राणियोंकी हत्या न की जाय	९२
(ख) शाकाहार	९८
(ग) व्रत	१००
(घ) प्राणियोंकी चीर-फाड़	१०१

छठा विभाग मेरे धर्म-पारक्रमके सहायक साधन

२७ अुपवास और प्रार्थना	१०३
(क) अुपवास	१०६
(ख) प्रार्थना	१०७
(ग) रामनाम	११९

२८. आधमके व्रत	१२४
(क) सत्य	१२५
(ख) अहिंसा या प्रेम	१२८
(ग) ब्रह्मचर्य	१३०
(घ) अपरिग्रह या गरीबी	१४१
(ङ) अस्तेय	१४३

सातवां विभाग : मेरे धर्मके लक्ष्य

२९ धर्म जीवनके सब क्षेत्रोंमें व्याप्त होना चाहिये	१४६
३० सामाजिक क्षेत्रमें	१४७
३१ आर्थिक क्षेत्रमें	१४९
३२ राजनीतिक क्षेत्रमें	१५६

आठवां विभाग : मेरा हिन्दू धर्म

३३ त्याग और समर्पण — हिन्दू धर्मका सार	१६०
३४ मन्दिर और मूर्तिपूजा	१६६
३५ भक्त्यार	१७२
३६ वर्ण और जात-पाठ	१७४
३७ अस्पृश्यता	१८२
३८. गौरदा	१८५
३९ हिन्दू धर्मकी महत्त्वपूर्ण विशेषतायें	१८८
४० जुपग्रहार	१९७
सूची	२००

मेरा धर्म

अपने स्वल्पका पता नहीं सम जाता सर्वेनहारका ज्ञान नहीं हो जाता तथा ज्ञप्ताके और अपने बीचका सम्बन्ध समझमें नहीं आ जाता।

योग विडिया १२-५-'२०, पृ० २

मनुष्य धर्मके बिना नहीं जी सकता। कुछ लोग अपनी बुद्धिके घमण्डमें कह देते हैं कि मुझे धर्मसे कोमी वास्ता नहीं। परन्तु यह वैसी ही बात है जैसे कोयी मनुष्य यह कहे कि वह सांस तो लेता है, परन्तु उसके नाक नहीं है। बुद्धिसे हो सहज बोधसे हो या अंधविश्वाससे हो, मनुष्य श्रीशिवरके साथ अपना कुछ न कुछ सम्बन्ध मानता ही है। कट्टरसे कट्टर अज्ञेयवादी या नास्तिक भी किसी नैतिक सिद्धान्तकी आवश्यकता अवश्य स्वीकार करता है और उसके पासनमें कुछ न कुछ भस्माभी तथा उसके अपासनमें कुछ न कुछ बुराभी समाप्तता है। ब्रह्मकाही नास्तिकता मजहूर है, परन्तु वह अपने अन्तरसमके विश्वासकी घोषणा करनेका सदा आपह रहता था। उसे जिस प्रकार सत्य कहनेके कारण काफी कष्ट सहने पड़े परन्तु जिसमें उसे आनन्द आता था और वह कहता था कि सत्य स्वयं ही अपना पुरस्कार है। यह बात नहीं कि सत्य-पासनसे मिछनेवासे जिस आनन्दका उसे कोमी ज्ञान नहीं था। परन्तु यह आनन्द सांसारिक बिसकुल नहीं है, यह तो देवी सत्ताके साथ सम्बन्ध जुडनेसे पैदा होता है। किसीदिने मैंने कहा है कि जो मनुष्य धर्मको नहीं मानता वह भी धर्मके बिना नहीं रह सकता और नहीं रहता।

योग विडिया, २३-१-'२०, पृ० २५

नैतिकताका केन्द्रीय स्थान

मैं किसी जैसे धार्मिक सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता, जो बुद्धिको न बचि और नैतिकताके विरुद्ध हो। धार्मिक भाव अनैतिक न हो वो बुद्धि संगत न होने पर भी मैं उसे सहन कर लेता हूँ।

यंग विडिया, २१-७-२० पृ० ४

ज्यों ही हम नैतिक आचारको खो देते हैं, त्यों ही हम धार्मिक नहीं रह जाते। नैतिकताका सुस्लंघन करनेवाले धर्मके जैसी कोखी चीज नहीं है। बुधाहरणके लिये मनुष्य झूठा निर्वय और असंयमी होते हुये यह दावा नहीं कर सकता कि श्रीस्वर उसके साथ है।

यंग विडिया २४-११-२१, पृ० ३८५

जो धर्म व्यावहारिक बाता पर ध्यान नहीं देता और मुन्हें सल करनेमें मदद नहीं करता वह धर्म नहीं है।

यंग विडिया ७-५-'२५, पृ० १६४

धार्मिक मनुष्यके प्रत्येक कर्मका छोट मुसका धर्म होता है क्योंकि धर्मका अर्थ है श्रीस्वरके साथ बन्धन। कहनेका मतलब यह है कि हमारी हरभेक सासका नियंत्रण श्रीस्वर करता है।

हरिजन २-३-३४ पृ० २३

दूसरा विभाग : मेरे घमके स्रोत

३

घरमें

मेरे पिता कुटुम्ब-श्रेणी सत्यप्रिय धूर, धुवार, किन्तु क्रोमी थे।

धार्मिक शिक्षा भमकी नहींके बराबर थी, पर मन्दिरोंमें जानेसे भीर क्वा वगैरा सुननेसे जो घर्मनाम असक्य हिन्दुओंको सहज भावसे मिष्टता रहता है वह भुममें था। आक्षिरके सालमें ब्रेक विद्वान प्राहणकी सलाहसे, जो परिवारके मित्र थे खुन्होंने गीतापाठ शुरू किया था और राज पूजाके समय वे घोड़े-बहुत एलोक बूच स्वरसे पाठ किया करते थे।

मेरे मन पर यह छाप रही है कि मेरी माता साध्वी स्त्री थीं। वे बहुत श्रद्धालु थीं। दिना पूजा-याठके कमी भोजन न करतीं। हमेसा हवेली (बैष्णव-मंदिर) जातीं। जबसे मैंने होष संभामा तबसे मुझ याद नहीं पड़ता कि खुन्होंने कमी चातुर्मासका व्रत छोड़ा हो। ब कठिन-से-कठिन व्रत शुरू करतीं और खुन्हें निबिध्न पूरा करतीं। लिसे हुजे व्रतोंको बीमार होने पर भी कमी न छोड़तीं। मैंसे ब्रेक समयकी मुझे याद है कि जब खुन्होंने चान्द्रायणका व्रत लिया था। व्रतके दिनोंमें वे बीमार पड़ी पर व्रत नहीं छोड़ा। चातुर्मासमें ब्रेक बार खाना तो मुनके लिसे सामान्य बात थी। भितनेसे संतोष न करके ब्रेक चौमासेमें खुन्होंने तीसरे दिन भोजन करनेका व्रत लिया था। लगातार बी-तीन उपवास ता मुनके लिसे मामूली बात थी। ब्रेक चातुर्मासमें खुन्होंने यह व्रत लिया था कि सूर्य नारायणके दर्शन करके ही भोजन करेगी। मुस चौमासेमें हम बाछन बादलोक सामने देखा करते कि कब सूरजके दर्शन हों और कब मा भोजन करें। यह तो सब जानते हैं कि चौमासेमें भकसर सूर्यक दर्शन दुखम हो जात है। मुझे मैंसे दिन याद है कि जब हम सूरजको देखते और कहते "मा-मा सूरज दीला" भीर मा खुताबली होकर जातीं।

मितनेमें सूरज छिप जाता और मां यह कहती हुयी छोट जातीं कि
कोभी बात नहीं आज भाग्यमें भोजन नहीं है”, और अपने काममें
दुब जाती।

मात्मकथा पृ० १-२ १९५७

४

पाठशालामें

छह या सात सालसे लेकर सोलह सालकी जुमर तक मने पढ़ायी की,
पर स्कूलमें कहीं भी मुझे धर्मकी शिक्षा नहीं मिली। यों कह सकते हैं कि
शिक्षकोंसे जो आसानीसे मिलना चाहिये था वह नहीं मिला। फिर भी
घातावरणसे कुछ-न-कुछ तो मिलता ही रहा। यहां धर्मका अुदार अर्थ
करना चाहिये। धर्मका अर्थ है आत्मबोध आत्मज्ञान।

मैं वैष्णव संप्रदायमें जन्मा था, जिसलिये हृवेलीमें ज्ञानके प्रसंग
बार-बार आत थें। पर अुसके प्रति अज्ञा अुत्पन्न नहीं हुयी। हृवेलीका
वैभव मुझे अच्छा नहीं लगा। हृवेलीमें चलनेवाली मनीषिकी बातें
सुनकर भय अुसके प्रति अुदासीन बन गया। वहासे मुझे कुछ भी न
मिला।

पर जो हृवेलीसे न मिला, वह मुझे अपनी घाय रम्मासे मिला।
रम्मा हमारे परिवारकी पुरानी नौकरानी थी। अुसका प्रेम मुझे आज
भी याद है। मैं अुपर कह चुका हूं कि मुझे भूत-प्रेत आदिका डर लगता
था। रम्माने मुझे समझाया कि जिसकी दवा रामनाम है। मुझे ता राम
नामसे भी अधिक अज्ञा रम्मा पर थी जिसलिये बचपनमें भूत प्रेतादिसे
भयसे बचनेके लिये मैंने रामनाम जपना शुरू किया। यह जप बहुत समय
तक नहीं चला। पर बचपनमें जो बीज बोया गया वह नष्ट नहीं हुआ।
आज रामनाम मेरे लिये अमोघ शक्ति है। मैं मानता हूं कि अुसके
मूलमें रम्माबाभीका बोया हुआ बीज है।

पर जिस बीजका मेरे मन पर गहरा असर पड़ा वह था रामा
यणका पारायण। पिताजीकी बीमारीका थोड़ा समय पोरबन्दरमें बीता

या। वहाँ वे रामजीके मन्दिरमें रोज रातके समय रामायण सुनते थे। सुनानेवाले रामचन्द्रजीके परम भक्त थे। भुनका कष्ट भीठा था। वे दोहा चौपायी गात थे और अर्घ्य समझाते थे। स्वयं भुसक रसमें छीन हो जाते थे और श्रोताजनको भी छीन कर देते थे। कुछ समय मेरी कुमर देख साठकी रही होगी, पर याद पड़ता है कि भुनक पाठमें मुझे सूब रस आता था। यह रामायण-भजन रामायणके प्रति मेरे अत्यधिक प्रेमकी बुनियाद है। आज मैं तुलसीदासकी रामायणकी भक्तिमार्गका सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ।

कुछ महीनोंके बाद हम राजकोट आये। वहाँ रामायणका पाठ नहीं होता था। अेकादशीक दिन भागवत जकर पढ़ी जाती थी। मैं कनी-कनी भुस सुनने बैठता था। पर भट्टजी रस भुत्पन्न नहीं कर सके। आज मैं यह देख सकता हूँ कि भागवत अेक बीसा ग्रन्थ है, जिसके पाठस भनरस भुत्पन्न किया जा सकता है। मैंने तो भुसे गुजरतीमें बड़े चावसे पढ़ा है। लेकिन अिककीस दिनक अपने भुपवास-कासमें भारत भूषण पंडित मन्मोहन मारुवीमजीक धुम भुससे मूल संस्कृतक कुछ अंश जब सुने तो खयाल हुआ कि बचपनमें भुनके समान भगवद्-भक्तके भुंसे भागवत सुनी होती तो भुस पर भुसी कुमरमें मेरा याद प्रेम हो जाता। बचपनमें पड़े हुअे धुम-अधुम संस्कार बहुत गहरी जड़े जमाते हैं, अिसे मैं सूब अनुभव करता हूँ, और अिस कारण भुस कुमरमें भुसे काभी कुत्तम प्रथ सुननेका साम नहीं मिला यह अब अबरता है।

राजकोटमें भुसे अनायास ही सब सम्प्रदायोंके प्रति समान भाव रखनेकी सिद्धा मिला। मैंने हिन्दू धमके प्रायेक सम्प्रदायका आदर करना सीखा क्योंकि माता-पिता बीजवास-मन्दिरमें, तिबाधममें और राम मन्दिरमें भी जाते और हम भाबियोंको भी साथ ले जाते या भेजते थे।

अिसके सिवा, पिताजीके पास जैन धर्माचार्योंमें से भी काशी व कोनी हमेशा आते रहते थे। पिताजी मुंहुँ भिक्षा भी देते थे। वे पिताजीके साथ धर्म और व्यवहारकी बातें किया करते थे। अिसके सिवा, पिताजीके मुसलमान और पारसी मित्र भी थे। वे अपने-अपने धर्मकी बर्षा करते और पिताजी कुनकी बातें सम्मानपूर्वक और अदसर रखपूर्वक सुना करते

ये। मर्स' होनेके कारण जैसी पश्चिमी समय में अक्सर हाजिर रहता था। जिस सारे वातावरणका प्रभाव मुझ पर यह पड़ा कि मुझमें सब धर्मोंके सिद्धे समान भाव पैदा हो गया।

शेक भीसाजी धर्म अपवादरूप था। उसके प्रति मुझे कुछ अरुचि थी। थुम दिनों कुछ भीसाजी हाथीस्कूलके कोने पर खड़ा होकर व्याख्यान दिया करते थे। वे हिन्दू देवताओंकी और हिन्दू धर्मको माननेवालोंकी बुराई करते थे। मुझे यह असह्य मालूम हुआ। मैं अकेला वार ही व्याख्यान सुननेके लिये खड़ा रहा होबूंगा। दूसरी बार फिर वहाँ खड़े रहनेकी विच्छा ही न हुयी। अन्हीं दिनों अेक प्रसिद्ध हिन्दूके भीसाजी बननेकी बात सुनी। गाँवमें पर्वण्ण थी कि अुन्हें भीसाजी धर्मकी दीक्षा देते समय मामांस खिलाया गया और शराब पिलायी गयी। अुनकी पोशाक भी बबलु थी गयी और भीसाजी बननेके बाद वे कोट-पठसून और अंग्रेजी टोप पहनने लगे। अिन बातोंसे मुझे पीड़ा पहुची। जिस धर्मके कारण गोमांस खाना पड़े, शराब पीनी पड़े और अपनी पोशाक बदलनी पड़े, अुसे धर्म कैसे कहा जाय ? मेरे मनने यह दलील थी। फिर यह भी सुननेमें आया कि जो नाथी भीसाजी बने थे अुन्होंने अपने पूजकोंके धर्मकी रीति-रिवाजोंकी और बेसकी निन्दा करना शुरू कर दिया था। अिन सब बातोंसे मेरे मनमें भीसाजी धर्मके प्रति अरुचि उत्पन्न हो गयी।

जिस तरह मद्यपि दूसरे धर्मोंके प्रति मनमें समभाव जागा फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि मुझमें अीश्वरके प्रति आस्था थी।

पर अेक जीवनने मनमें जड़ जमा ली — यह ससार नीति पर टिका हुआ है। नीतिमात्रका समावेश सत्यमें होता है। सत्यको तो खोजना ही होगा। दिन-पर-दिन सत्यकी महिमा मेरे निकट बढ़ती गयी। सत्यकी व्याख्या विस्तृत होती गयी और अमी भी हो रही है।

जिसके सिवा नीतिका अेक छप्पय दिखमें बस गया। अपकारका बबला अपकार नहीं अपकार ही हो सकता है यह अेक जीवन-सूत्र ही बन गया। अुसने मुझ पर साम्राज्य खसाना शुरू किया। अपकारीका मला खाहना और करना, जिसका मैं अनुरागी बन गया। जिसके अनगिनत प्रयोग मैंने किये। यह जमत्कारी छप्पय यह है

बस्तुका सेवन करना सर्वोप्य-रूप नहीं है। मेरी सलाह है कि आप वाजिबल पढ़ें।" मने भुमकी यह सलाह मान ली। बुन्हीने वाजिबल खरीद कर दी। मने मुसे पढ़ना शुरू किया पर मैं पुराना भिकरार (ओल्ड टेस्टामेण्ट) पढ़ ही न सका। 'जेनेसिस — सृष्टि रचना — के प्रकरणके बाद तो पढ़ते समय मुझे नींद ही आ जाती थी। मुझे याद है कि 'मैने वाजिबल पढ़ी है यह कह सकनेके लिये मने बिना उसके और बिना समझे दूसरे प्रकरण बहुत कष्टपूर्वक पढ़े थे। तन्वर्स नामक प्रकरण पढ़ते-पढ़ते मेरा जी खुपट गया था।

पर जब नये भिकरार (न्यू टेस्टामेण्ट) पर आया, तो कुछ और ही असर हुआ। बीताके गिरि-प्रबन्धन का मुझ पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। मुझे मैंने हृदयमें बसा लिया। बुद्धिने गीताजीके साथ भुसकी तुलना की। जो तुमसे कुर्ता मांगे खुश तू अंगरखा भी दे दे, जा तेरे दाहिने गाल पर तमाचा मारे, तू बायाँ गाल भी मुझे सामने कर दे — यह पढ़कर मुझे अपार आनन्द हुआ। शामल मट्टके छन्मयकी याद आ गयी। मेरे बालमनन गीता, आर्नल्ड कूठ बुद्ध-चरित और बीताके वचनोंका भेकीकरण किया। मनको यह बात पंच गयी कि रयागमें ही धर्म है।

अिस वाचनसे दूसरे धर्माचार्योंकी जीवनियां पढ़नेकी जिच्छा हुमी। किसी मित्रने कालाभिसकी 'विभूतियां और विभूति-भूजा (हीरोज बेथेड हीरो-वॉशिप) पढ़नेकी सलाह दी। उसमें से मैंने पैगम्बर (हजरत मुहम्मद) का प्रकरण पढ़ा और मुझे भुनकी महानता बीरता और तपस्वर्षाका पता चला।

मैं धर्मके अिस परिचयसे आगे न बढ़ सका। अपनी परीक्षाकी पुस्तकोंके अलावा दूसरा कुछ पढ़नेकी फुरतत में नहीं निकाल सका। पर मेरे मनने यह निश्चय किया कि मुझे धर्म-पुस्तकें पढ़नी चाहिये और सब मुख्य धर्मोंका परिचय प्राप्त कर लेना चाहिये।

नास्तिव्दताके धारमें भी कुछ जाने बिना काम कैसे चलता? ब्रह्मनाम नाम वा सब हिन्दुस्तानी जानत ही थे। ब्रह्मना नास्तिव्द मान जाते थे। अिसलिये भुमके सम्बन्धकी भेरु पुस्तक पढ़ी। नाम मुझे याद

नहीं रहा। मुझ पर बुसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। मैं भास्त्रिकता रूपी सहारेके रेगिस्तानको पार कर गया।

आत्मकथा पृ० ५८-६० १९५७

६

रायचन्द्रभाभी

रायचन्द्रभाभी हजारोंका व्यापार करते हीरे-मोतीकी परख करत व्यापारकी समस्यामें सुलझाते पर यह सब बुनका विषय नहीं था। बुनका विषय—बुनका पुस्तार्थ तो था आत्म-परिचय—हरि-दर्शन। बुनकी गद्दी पर दूसरी कोभी चीज हो चाहे न हो पर कोभी-न-कोभी धर्म पुस्तक और डायरी तो अवश्य रहती थी। व्यापारकी बात समाप्त होते ही धर्म-पुस्तक खुलती अथवा बुनकी डायरी खुलती थी। बुनके सेखोका जो संग्रह प्रकाशित हुआ है बुसका अधिकांश भिन्न डायरीसे लिया गया है। जो मनुष्य सासोंके सेम-देनकी बात करके तुरन्त ही आत्मज्ञानकी गूढ़ बातें लिखने बैठ जाये बुसकी जाति व्यापारीकी नहीं बल्कि शुद्ध ज्ञानीकी है। बुनका वैसे अनुभव मुझे एक बार नहीं कभी बार हुआ था। मैंने कभी बुन्हें मूर्च्छाकी स्थितिमें नहीं पाया। मेरे साथ बुनका कोभी स्वार्थ नहीं था। मैं बुनके बहुत निकट सम्पर्कमें रहा हूँ। मुझ समय मैं एक भिन्नारी वारिस्टर था। पर जब भी मैं बुनकी बुकान पर पहुँचता थे मेरे साथ धर्मबचकिये सिवा दूसरी कोभी बात ही न करते थे। यद्यपि बुस समय में अपनी दिशा स्पष्ट नहीं कर पाया था यह भी नहीं कह सकता कि साधारणत मुझे धर्मबचकिये रस था फिर भी रायचन्द्रभाभीकी धर्मबर्चा मैं यथिपूर्वक सुनता था। बुसके वाद में अनेक धर्माचार्योंके सम्पर्कमें आया हूँ। मैंने हरएक धर्मके धाचा योंसे मिरानेका प्रयत्न किया है। पर मुझ पर जो छाप रायचन्द्रभाभीने डाली वैसी दूसरा कोभी न डाल सका। बुनके बहुतेरे वचन मेरे हृदयमें सीधे खुतर जाते थे। मैं बुनकी बुद्धिका सम्मान करता था। बुनकी

प्रामाणिकताके लिये भी मेरे मनमें झुतना ही भावर था। जिसलिये मैं जानता था कि वे मुझे जान-बूझकर गलत रास्ते नहीं ले जाएंगे और जो अनुकूल मनमें होया वही कहेंगे। जिस कारण अपने आध्यात्मिक संकटके समयमें मैं अनुकूल आश्रय लिया करता था।

रायचन्दमाझीके प्रति अितना भावर रखते हुमे भी जुगुहें मैं अपन धर्मगुरुके सम्पर्कमें हृदयमें स्थान न दे सका। मेरी वह खोज तो आज भी चल रही है।

मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव डालनेवाले आधुनिक मनुष्य तीन हैं। रामचन्दमाझीने अपने सजीव सम्पर्कसे टॉलस्टॉयने 'सैकुण्ड ठेरे हृदयमें है नामक अपनी पुस्तकसे और रस्किनने 'अस्टू दिस कास्ट — सर्वावय — नामक पुस्तकसे मुझे चकित कर दिया।

आत्मकथा पृ० ७५-७६, १९५७

७

दक्षिण अफ्रीकामें

मेरे भविष्यक बारेमें मि० बेकरकी चिन्ता बढ़ती जा रही थी। वे मुझे बेल्जियन कन्वेंशनमें ले गये। प्रोटेस्टेण्ट भीषाभियोगमें कुछ वर्षोंके अन्तरसे धर्म-जागृति अर्थात् आत्मशुद्धिके लिये विशेष प्रयत्न किये जाते हैं। अिये धर्मकी पुनःप्रतिष्ठा अथवा धर्मके पुनरुद्धारका नाम वे रखते हैं। वैसे एक सम्मेलन बेल्जियनमें था। मि० बेकरको यह आशा थी कि अिस सम्मेलनमें होनेवाली जागृति, वहां आनेवाले लोगोंके धार्मिक अस्साह और अनुकूल श्रुतताकी मेरे हृदय पर वैसे गहरी छाप पड़ेगी कि मैं भीमाझी बने बिना न रह सकूंगा।

सम्मेलनमें यज्ञालु भीषाभियोगका मिलाप हुआ। मुझकी भडाको देखकर मैं प्रसन्न हुआ। मैंने देखा कि कभी लोग मेरे लिये प्रार्थना कर रहे हैं। मुझके कमी भजन मुझ बहुत मीठे मालूम हुये।

सम्मेलन तीन दिन चला। मैं सम्मेलनमें जानेवालोंकी धार्मिकताको समझ सका अुझकी सराहना कर सका। पर मुझे अपने पिदबापमें —

अपने धर्ममें — परिवर्तन करनेका कारण न मिला। मुझे यह प्रतीति न हुयी कि श्रीसात्री बनकर ही मैं स्वर्ग जा सकता हूँ अथवा मोक्ष पा सकता हूँ। जब यह बात मने अपने भले श्रीसात्री मित्रासे कही सब धुनको चोट ठा पहुंची परन्तु मैं छाधार था।

मेरी कठिनाधियां गहरी थीं। 'श्रेक श्रीसामचीह ही श्रीश्वरके पुत्र है। अहें जो मानता है वह तर जाता है' — यह बात मेरे गले झुतरती न थी। यदि श्रीश्वरके पुत्र हो सकते हैं तो हम सब अुसके पुत्र हैं। यदि श्रीसा श्रीश्वर-तुल्य है श्रीश्वर ही है तो मनुष्य-मात्र श्रीश्वरके समान है श्रीश्वर बन सकता है। श्रीसाकी मृत्युसे और अुनके रक्तसे संसारके पाप धुलते हैं अिसे अकारण सब माननेके लिये बुद्धि ठंमार नहीं होती थी। रूपके नाते चाहे अुसमें सत्य हो। अिसके अतिरिक्त श्रीसाभियोंका यह विश्वास है कि मनुष्यक ही आत्मा है, दूसरे जीवोंके नहीं और देहके नाशके साथ अुसका संपूर्ण नाश हो जाता है, जब कि मेरा विश्वास अिसके विरुद्ध था। मैं श्रीसाको श्रेक त्यागी महारामा दैवी शिक्षकके रूपमें स्वीकार कर सकता था पर अुन्हें अद्वितीय पुरुषके रूपमें स्वीकार करना मेरे लिये संभव न था। श्रीसाकी मृत्युसे संसारको श्रेक महान अुवाहरण प्राप्त हुआ। पर अुनकी मृत्युमें कोयी गूढ़ अमत्कारपूर्ण प्रभाव था अिसे मेरा हृदय स्वीकार नहीं कर सकता था। श्रीसाभियोंके पवित्र जीवनमें मुझे अैसी कोयी चीज नहीं मिली जो अन्य धर्मावलम्बियोंके जीवनमें न मिली हो। अुनमें होनेवाले परिवर्तनों अैसे ही परिवर्तन मैंने दूसरोंके जीवनमें भी होते देखे थे। सिद्धान्तकी दृष्टिसे श्रीसात्री सिद्धास्तोंमें मुझे कामी अलौकिकता नहीं दिखायी पड़ी। त्यागकी दृष्टिसे हिन्दू धर्मावलम्बियोंका त्याग मुझे अधिष्ठ अुंशा मान्म हुआ। मैं श्रीसात्री धर्मको संपूर्ण अथवा सर्वोपरि धर्मके रूपमें स्वीकार न कर सका।

अपना यह हृदय-संघन मैंने अबसर आने पर श्रीसात्री मित्रोंके सामन रखा। अुसका कोयी संतोषजनक अुत्तर वे मुझ नहीं दे सक।

पर अिस तरह मैं श्रीसात्री धर्मको स्वीकार न कर सका अुसी तरह हिन्दू धर्मकी संपूर्णताके विषयमें अथवा अुसकी सर्वोपरिताके विषयमें

हिन्दू धर्मकी छाया और मुसका प्रभाव तो काफी है ही। अतः अवेद भिन्न भावियोंने मान लिया कि मैं खुदकी सहायता कर सकूंगा। मैंने खुदने समझाया कि संस्कृतका मेरा अध्ययन नहींके बराबर है। मैंने मुसके प्राचीन धर्मग्रंथ संस्कृतमें नहीं पढ़े हैं। अनुवादके द्वारा भी मेरी पढ़ाई कम ही हुयी है। फिर भी चूकि वे संस्कार और पुनर्जन्मको मानते थे, जिसलिये खुदोंने समझा कि मुझसे बोड़ी-बहुत सहायता तो मिलेगी ही और मैं निरस्तपादपे ऐसे अेरच्छोऽपि दुमायते * जैसी स्थितिमें आ पड़ा। किसीने साय मैंने स्वामी दिवेकानन्दका तो किसीके साथ मणिलाल मनुभाभीका 'राजयोग' पढ़ना शुरू किया। अेक मित्रके साथ 'पारतन्त्र-योगदर्शन' पढ़ना पड़ा। बहुतोंके साथ गीताका अभ्यास शुरू हुआ। जिज्ञासु-मण्डल के नामसे अेक छोटासा मण्डल भी स्थापित किया और नियमित अभ्यास होने लगा। गीताकी पर मुझे प्रेम और श्रद्धा तो थी ही। अब मुसकी गहराईमें अुतरनेकी आवश्यकता प्रतीत हुयी। मेरे पास अेक-दो अनुवाद थे। खुदकी सहायतासे मैंने मूळ संस्कृत समझ लेनेका प्रयत्न किया, और भित्त अेक-दो स्लोक कण्ठ करनेका निश्चय किया।

सुबह दातुन और स्नानके समयका अुपयोग मैंने गीताके स्लोक कण्ठ करनेमें किया। दातुनमें पन्द्रह और स्नानमें बीस मिनट लगते थे। दातुन अंग्रेजी ढंगसे मैं सड़े-अड़े करता था। सामनेकी दीवार पर गीताके स्लोक क्लिपकर चिपका देता था और आवश्यकताक अनुसार खुदने बेलता तथा पोसता जाता था। ये दोन्हे हुमे एलाक स्नान करने तक पक्क हो जाते थे। जिस बीच पिछले कण्ठ किये हुमे स्लोकोंका भी मैं अेक बार दोहराता जाता था। जिस प्रकार ठेरह अभ्यास तक कण्ठ करनेकी बात मुझे याद है।

जिस गीतापाठका प्रभाव मेरे सहाभ्यासियों पर गया पढ़ा मुझे ब जानें परन्तु मेरे लिभे तो वह पुस्तक आभारकी अेक प्रौढ़ मार्गदर्शिका बन गयी। वह मेरे लिभे धार्मिक कोयका काम देने लगी। जिस प्रकार नये अंग्रेजी राजोंके हिज्जों या मुसके अर्पके लिभे मैं अंग्रेजी सम्प्रकोय

* वहाँ कोमी बूदा न हो वहाँ अेरब ही बूदा बन जाता है।

देखता था मुझे प्रकृत आचार-सम्बन्धी कठिनाधियों और मुसकी अटपटी समस्यार्थोंको गीताजीसे हल करता था। मुसके अपरिग्रह, समभाव आदि शब्दोंने मुझे पकड़ लिया। समभावका विकास कैसे हो, मुसकी रक्षा किस प्रकार की जाय? अपमान करनेवाले अधिकारी रिश्वत सेमेवासे अधिकारी व्यर्थ विरोध करनेवाले कसके साथी खिरियादि और जिन्होंने बड़े-बड़े भुपकार किये हैं जैसे सज्जनोंके बीच भेद न करनेका क्या अर्थ है? अपरिग्रह किस प्रकार पाला जाता होगा? देहका होना ही कौन कम परिग्रह है? स्त्री-पुत्रादि परिग्रह नहीं तो और क्या है? डेरो पुस्तकें मरी खिन आत्ममारियोंको क्या जल्मा डालूं? घरको जलाकर तीर्थ करने जाऊं? तुरन्त ही मुत्तर भिन्ना कि घर जलाये बिना तीर्थ किया ही नहीं जा सकता। यहाँ अंग्रेजी कानूनने मेरी मदद की। स्नेहकी कानूनी सिद्धांतोंकी पर्चा याद आयी। गीताजीके अध्यायनके फलस्वरूप 'द्रुस्ती' शब्दका अर्थ विशेष रूपसे समझमें आया। कानून-शास्त्रके प्रति मेरा आदर बढ़ा। मुझे मुसमें भी अर्थके दर्शन हुये। द्रुस्तीके पास करोड़ों रुपये रखे हुये भी मुनमेंकी अेक भी पायी मुसकी नहीं होती। मुमुक्षुको अैसा ही बरताव करना चाहिये यह बात मैंने गीताजीसे समझी। मुझे यह पीपककी तरह स्पष्ट विज्ञायी दिया कि अपरिग्रही बननेमें समभावी होनेमें हेतुका हृदयका परिवर्तन आवश्यक है। मैंने रेवासंकरभायीको जिस आक्षयका पत्र लिख भेजा कि मेरे बीमेकी पॉसिबि बन्द कर दें। कुछ रकम वापस मिले तो से से न मिले तो भरे हुये पैसोंको गया समझ लें। बन्धोंकी और स्त्रीकी रक्षा मुझें और हमें पैदा करनेवाला करेगा। पितृसुख्य भायीकी लिखा आज तक तो मेरे पास जो बचा वह मैंने आपको अर्पण किया। अब मेरी आशा आप छोड़ दीजिये। अब जो बचेगा सो नहीं हिन्दुस्तानी समाजके हितमें खर्च होगा।”

आत्मकथा पृ० २२७-२८ १९५७

मैं नेटासके छिजे खाना हुआ। पोलाक तो मेरी सब बातें जानने लगे ही थे। वे मुझे छोड़ने स्टेशन तक आये और यह कहकर कि यह पुस्तक पढ़ने योग्य है जिसे पढ़ जाजिये, आपको पसन्द आयेगी। मुन्होंने रक्तिनकी 'अष्टु' दिस सास्ट पुस्तक मेरे हाथमें रख दी।

मुझे पुस्तकको हाथमें लेनेके बाद मैं छोड़ ही न सका। मुझे मुझे पकड़ लिया। जोहानिसबर्गस मेटासका रास्ता समझम चौबीस घंटेका था। ट्रेन सामकी डरबन पहुचती थी। पहुचनेके बाद मुझे घाटी रात नींद नहीं आयी। मैंने पुस्तकमें सूचित विचारोंको अमलमें लानेका अिारावा किया। बादमें मैंने उसका गुजरती अनुवाद किया और वह 'सर्वोदय' के नामसे छपा।

मेरा यह विस्वास है कि जो बीज मेरे अन्दर गहरामीमें छिपी पड़ी थी, रस्किनके प्रयत्नमें मैंने उसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब देखा। और, अिस कारण मुझे मुझ पर अपना साम्राज्य जमाया और मुझसे मुझमें दिये गये विचारों पर अमल करवाया। जो मनुष्य हममें सोयी हुमी मुत्तम भावनाओंको जाग्रत करनेकी शक्ति रखता है वह कवि है। सब कवियोंका सब लोगों पर समान प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि सबके अन्दर घाटी सद्भावनायें समान मापामें नहीं होतीं।

मैं 'सर्वोदय' के सिद्धान्तोंको अिस प्रकार समझा हूँ

१ सबकी भलाहीमें हमारी भलाही निहित है।

२ बकील और नाभी दोनोंके कामकी कीमत बेकसी होनी चाहिये क्योंकि आजीविकाका अधिकार सबको बेक-सा है।

३ सादा मेहनत-मजदूरीका, किसानका जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली बीजको मैं जागता था। दूसरीको मैं पुष्पके रूपमें देखता था। तीसरीका मैंने कभी विचार ही नहीं किया था। सर्वोदय ने मुझे दीयेकी तरह दिखा दिया कि पहली बीजमें दूसरी दोनों बीजें समायी हुयी हैं। सबेरा हुवा और मैं अिन सिद्धान्तोंका अमल करनेके प्रयत्नमें जुट गया।

आरम्भका पृ० २५९-६०, १९५७

तीसरा विभाग सब धर्मोंका सम्मान

८

सब धर्म बीश्वर तक ले जाते हैं

मेरी हिन्दू प्रकृति मुझे बताती है कि छोड़े या बहुत, सब धर्म सच्चे हैं। सबका स्रोत एक ही बीश्वर है। परन्तु सब अपूर्ण हैं, क्योंकि वे हमारे पास मानवके अपूर्ण माध्यम द्वारा आये हैं।

यंग विडिया २९-५-२४, पृ० १८०

विविध धर्म एक ही जगह पहुंचनेवाले अलग अलग रास्ते हैं। एक ही जगह पहुंचनेके लिये हम अलग अलग रास्ते लें तो जिसमें कुछका कोमी कारण नहीं है। सब पूछो तो जितने मनुष्य हैं अतने ही धर्म भी हैं।

हिन्द स्वराज्य, पृ० ४२ और ४१ १९५९

सिद्धान्तके रूपमें चूंकि बीश्वर एक है जिसलिये धर्म भी एक ही हो सकता है। परन्तु व्यवहारमें मने कोमी दो भावमी जैसे नहीं देखे, जिनकी बीश्वरके बारेमें बिलकुल अक-सी ही कल्पना हो। जिसलिये सायब मनुष्योंकी भिन्न भिन्न प्रकृति और भू-प्रदेशकी भिन्न भिन्न जरूरतोंके अनुसार अलग अलग धर्म हमेशा ही रहेंगे।

हरिजन २-२-३४ पृ० ८

मैं जिस विद्वानसे सहमत नहीं हूँ कि पृथ्वी पर एक धर्म हो सकता है या होया। जिसलिये मैं विविध धर्मोंमें पाया जानेवाला सामान्य तत्व सोजनेकी और विविध धर्मावलम्बी एक-दूसरेके प्रति सहिष्णुताका भाव रखें, जिस बातको पैदा करनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

यंग विडिया, ३१-७-२४ पृ० २५४

अपने धर्मोंमें हम जिस धर्मको सहिष्णुताके नामसे पहचानते हैं उसे यह नया नाम (सर्वधर्म-समभाव) दिया है। सहिष्णुता अर्थात् टॉलरेंस का अनुवाद है। वह मुझे पसंद नहीं आया था, लेकिन कोभी दूसरा नाम सूझता नहीं था। कानासाहबको भी वह पसंद नहीं आया था। मुझमें सर्वधर्म-आदर शब्द सुझाया। मुझे यह भी पसन्द नहीं आया। दूसरे धर्मोंको सहन करनेमें यह मान लिया जाता है कि व हमारे धर्मसे कुछ घटिया है। और आदरमें मेहरबानीका नाव है। अहिंसा हमें दूसरे धर्मोंके प्रति समभाव सिखाती है। आदर और सहिष्णुता अहिंसाकी दृष्टिसे पर्याप्त नहीं है। दूसरे धर्मोंके प्रति समभाव रखनेके मूलमें अपने धर्मकी अपूर्णताका स्वीकार आ ही जाता है। और सत्यकी आराधना तथा अहिंसाकी कसौटी यही सिखाती है। यदि हमने सम्पूर्ण सत्यका दर्शन कर लिया होता, तो फिर सत्यके आग्रहका प्रपन ही न रह जाता। तब तो हम स्वयं परमेश्वर हो गये होते क्योंकि हम मानते हैं कि सत्य ही परमेश्वर है। हम पूर्ण सत्यको नहीं पहचानते, जिसीलिमें अज्ञानका आग्रह रहते है और जिसीलिमें पुण्यायको अवकाश है। जिसमें अपनी अपूर्णताका स्वीकार आ जाता है। और यदि हम अपूर्ण हैं तो हमारे द्वारा जिसकी कल्पना की गयी है वह धर्म भी अपूर्ण है। स्वतंत्र धर्म सम्पूर्ण है। लेकिन हमें अज्ञानका दर्शन नहीं हुआ है, जिस प्रकार कि हमें भीश्वरका दर्शन नहीं हुआ है। तो हमारा माना हुआ धर्म अपूर्ण है और अज्ञानमें हमेशा परिवर्तन होते रहते हैं, आगे भी होने रहेंगे। हों तो ही हम अज्ञानको प्रगति कर सकते हैं, सत्यकी ओर, भीश्वरकी ओर, प्रतिदिन आगे बढ़ते रह सकते हैं। और यदि मनुष्य द्वारा कल्पित सभी धर्मोंको अपूर्ण मानें तो फिर किसी धर्मको भूषा या भीषा माननेका कारण नहीं रह जाता। सभी धर्म सच्चे हैं परन्तु साप ही सभी अपूर्ण हैं और जिसलिमें अज्ञानमें दोषके सिद्धे अवकाश है। अज्ञान सबके प्रति समभाव रखते हुये भी हम अज्ञानमें दोष दिख सकते हैं। हमें अपने धर्मके दोष भी देराना चाहिये। अज्ञान दोषोंके कारण हम अज्ञानका त्याग नहीं करेंगे, लेकिन दोष अवश्य दूर करेंगे। अतएव यदि हम सब धर्मोंके प्रति समभाव रखें तो दूसरे धर्मोंमें हमें जो पाह्य मालूम होया अज्ञान मानने

धर्ममें स्वान देते हुये हमें न बेवकूफ सकोष नहीं होगा, बल्कि असा करना हमें कर्तव्य मालूम होगा।

सभी धर्म श्रीश्वर-दत्त हैं, परन्तु भूकिके वे मनुष्य-कल्पित हैं और मनुष्य मनुका प्रचार करता है जिसलिये वे अपूर्ण हैं। श्रीश्वर-दत्त धर्म अगम्य हैं। जैसे मनुष्य अपनी अपूर्ण भाषामें वांछता है फिर मुसका मर्य भी मनुष्य ही करते हैं। किसके अर्थका हम सब कहें? अपनी अपनी दृष्टिके अनुसार—मुसकी दृष्टि जहां तक जाती है वहां तक—सभी सही हैं लेकिन सब गलत हों यह असंभव नहीं है। जिसलिये हमें सब धर्मोंके प्रति समभाव रखना चाहिये। जिसमें अपने धर्मके प्रति जुदासीनता जाती हो असी बात नहीं परन्तु अपने धर्म पर हमारा जो प्रेम है उसकी अंधता मिटती है। जिस तरह वह जानमय बनता है और जिसलिये ज्ञाया सात्त्विक और निर्मल बनता है। हम सब धर्मोंके प्रति समभावका विकास करें तो ही हमारा दिव्यचक्षु खुलेगा। धर्मान्धता और दिव्य वर्धनमें अज्ञान ही अंतर है जितना मुसल और दक्षिण ध्रुवमें। सच्चा धर्मज्ञान होने पर विविध धर्मोंमें व्यवधान पैदा करनेवाले अंतराय मिट जाते हैं और समभाव पैदा होता है। जिस समभावका विकास करके हम अपने धर्मका ज्ञाया अच्छी तरह पहचान सकेंगे।

मंगल-प्रभात (गु) पृ २९-३० १९५४

मेरा यह अनुभव रहा है कि मैं अपनी दृष्टिसे तो हमेशा सही होता हूँ और मेरे अमानवार आलोचकोंकी दृष्टिसे अकसर गलती पर होता हूँ। मैं जानता हूँ कि अपने अपने दृष्टिकोणसे हम दोनों सही हैं। और यह ज्ञान मुझे अपने विरोधियों अथवा आलोचकोंके हेतुओं पर संका करनेसे बचा देता है। जिन सात अंधोंने हाथीका अलग अलग सात तरहसे वर्णन किया वे अपनी अपनी दृष्टिसे सब ठीक थे, भेक-भूसरेकी दृष्टिसे सब गलत थे और जो बादमी हाथीको जानता था मुसकी दृष्टिसे सही भी थे और गलत भी थे। सत्यके अनेक रूप होते हैं, जिस सिद्धान्तको मैं बहुत पसन्द करता हूँ। इसी सिद्धान्तने मुझे एक मुसलमानको मुसके अपने दृष्टिकोणसे और एक भीसाजीको मुसके दृष्टिकोणसे समझना सिखाया है। पहले मैं अपने विरोधियोंके अज्ञान पर

झुंझलाता था। खास मैं मुनसे प्रेम कर सकता हूँ क्योंकि मुझे वह भाव प्राप्त है जिससे मैं अपनेको किसी दृष्टिसे देख सकता हूँ जिससे दूसरे मुझे देखते हैं और दूसरोंको किसी दृष्टिसे देख सकता हूँ जिससे मैं स्वयं अपनेको देख सकता हूँ। मैं सारे संसारको अपने प्रेमके आभिमनमें बांध लेना चाहता हूँ।

योग विद्या, २१-१-२६, पृ० ३०

९

दूसरोंके धर्मग्रन्थोंके प्रति मेरा रवैया

दूसरोंके धर्मग्रन्थोंकी आलोचना करना या मुनके दोष बताना मेरा काम नहीं है। परंतु मुनमें जो सत्य है मुझे घोषित और कार्यान्वित करना मेरा सौभाग्य है और हुना चाहिये। जिससिद्धि कुरानकी या पैगम्बरके जीवनकी जिन बातोंको मैं समझ नहीं सकता मुनकी मैं आलोचना या निन्दा नहीं कर सकता। परंतु मुनके जीवनके जिन पहलुओंको मैं जान और समझ सका हूँ मुनके सिद्धि अपनी प्रशंसा व्यक्त करनेके हर मौकका मैं स्वागत करता हूँ। जिन बातोंको समझनेमें कठिनाभियाँ सामने आती हैं मुन्हें मैं मरुत मुसलमानोंकी दृष्टिसे देखकर सतोष कर लेता हूँ और जिस्लामके प्रमुख मुसलमान व्याख्याकारोंकी रचनाआकी सहायतासे मुन्हें समझनेकी काशिश करता हूँ। अपने धर्मसे भिन्न धर्मोंके प्रति भैसी आदरकी दृष्टि रखकर ही मैं सब धर्मोंकी समागताका नियम सिद्ध कर सकता हूँ। परंतु हिन्दू धर्मको दृष्ट करके और दृष्ट रखनेके भिन्न मुनके दोष बताना मेरा अधिकार भी है और कर्तव्य भी है। परंतु जब अहिन्दू आलोचक हिन्दू धर्मकी टीका-टिप्पणी करते और मुनके दापोंकी सूची बनाने समते हैं तब वे हिन्दू धर्मके विषयमें अपना ही अज्ञान और मुझे हिन्दू दृष्टिकोणसे देखनेकी अपनी असमयता ही घोषित करते हैं। जिससे मुनकी दृष्टि दूषित और निर्णय-शक्ति बिगड़ हो जाती है। भिन्न प्रकार हिन्दू धर्मके गैर हिन्दू आलोचकोंका मुन स्वयं जो अनुभव है वह मुझे मेरी मर्यादाओंका

मान करता है और यह सिखाता है कि अिस्लाम या अीसायी धर्म और मुसके प्रवर्तकोंकी आलोचना करनेमें मुझे सावधान रहना चाहिये।

हरिजन १३-३-३७ पृ० ३४

हमारे यहाँ (आश्रममें) भगवद्गीताका नियमित पाठ होता है और अब हम अीसी स्थितिमें पहुँच गये हैं कि रोज सुबह कुछ निश्चित अध्यायोंका पाठ करके हम हर सप्ताह गीताका एक पूरा पाठ कर लेते हैं। फिर हम भारतके विभिन्न सन्तोंके भजन गाते हैं और मुनमें हम अीसायी भजन-मालाके भजन भी सामिल करते हैं। चूकि ज्ञानसाहब हमारे साथ हैं, अिसलिये हम कुरानका पाठ भी करते हैं। मुझे सुलसीबासकी रामायणके पाठसे अत्यंत संतोष होता है। मुझे न्यू टेस्टामेण्ट और कुरानसे भी सान्त्वना मिलती है। मैं अुर्हें आलोचककी भिगाहसे नहीं देखता। वे मेरे लिये अुतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितनी भगवद्गीता भस्से अुनकी सब बातें मुझे न खँसे—जैसे पॉलके पत्रोंका प्रकरण। अिसी तरह सुलसीबासकी भी हरएक बात मुझे पसन्द नहीं आती।

मैं प्रत्येक धर्मग्रन्थके बारेमें—और गीता अुनमें सामिल है—अपनी निर्णायक बुद्धिका अुपयोग करता हूँ। मैं किसी धर्मग्रन्थके वचनोंको अपनी बुद्धि पर हावी नहीं होने देता। मैं यह तो मानता हूँ कि प्रधान धर्मग्रन्थ अीश्वर-प्रेरित हैं लेकिन साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि वे दो माध्यमोंसे छनकर आते हैं अिसलिये पूरे बुद्ध नहीं होते। एक तो वे किसी मानव पैगम्बरके द्वारा आते हैं और दूसरे अुम पर भाष्यकारोंकी टीका होती है। अुनकी कोमी बात अीश्वरकी ओरसे सीधी नहीं आती। एक ही वचनको मैंभ्यू एक रूपमें पेश करता हूँ अॉन किसी दूसरे रूपमें। मैं अीश्वरीय प्रेरणाको तो मानता हूँ मगर बुद्धिका त्याग नहीं कर सकता। सबसे बड़ी बात यह याद रखनी चाहिये कि हम भापाके पीछे रहे अर्थ और भावको पहचानना सीखें। परन्तु आपको मेरी स्थितिके बारेमें गलतफहमी नहीं होनी चाहिये। अहाँ बुद्धिकी पहुँच नहीं होती वहाँ मैं अज्ञाको भी मानता हूँ।

हरिजन ५-१२-३६, पृ० ३३९ ३४५

मैं अदरबारी नहीं हूँ। जिसमिझे मैं संसारके विभिन्न धर्मग्रंथोंका भाव समझनेकी कोशिश करता हूँ। अर्थ सगानेके किये मैं बिन दास्त्रोंने सत्य और अहिंसाकी जो कसौटी बतानी है खुसीका उपयोग करता हूँ। मुझे कसौटी पर जो चीज खरी नहीं खुतरती मुझे मैं अस्वीकार कर देता हूँ और जो खरी खुतरती है खुसीकी कद्र करता हूँ।

ज्ञान पर किसी धर्म या समुदायका विशेषाधिकार नहीं हो सकता। लेकिन मैं यह मान सकता हूँ जब तक लोगोंकी प्रारंभिक तारीख न मिल जाय तब तक ये खूबे या सूक्ष्म सत्योंका आकलन नहीं कर सकते, जैसे कि प्रारंभिक तैयारी न करनेवाले लोग बहुत खूबाजी पर उल्लेखाले सूक्ष्म वायुमंडलमें साँस नहीं ले सकते या सामान्य गणितकी प्रारंभिक तारीख न पानेवाले भ्रूण्य मूमिति या बीजगणितको समझने या हल करनेकी शक्ति नहीं रखते।

यंग विडिया, २७-८-२५, पृ० २९३

मेरी राय है कि संसारके धर्मग्रंथोंको सहानुभूतिपूर्वक पढ़ना प्रत्येक सम्य पुरुष या स्त्रीका कर्तव्य है। अगर हमें दूसरोंके धर्मका वैसा ही आदर करना है वैसा हम खुनसे हमारे अपने धर्मका कराना चाहत है तो संसारके धर्मोंका आदरपूर्वक अध्ययन करना हमारा धर्म पवित्र कर्तव्य है। दूसरे धर्मोंके आदरपूर्वक अध्ययनसे हिन्दू धर्मग्रंथोंके प्रति मेरा आदर या खुनमें मेरी श्रद्धा कम नहीं हुयी है। सच तो यह है कि हिन्दू दास्त्रोंकी मेरी समझ पर खुनकी गहरी छाप पड़ी है। खुन्होंने मेरी जीवन-दृष्टिको विराल बनाया है। खुनकी सहायतासे मैं हिन्दू दास्त्रोंके अनेक न समझमें जानेवाले अर्थ अधिक स्पष्ट समझ सकता हूँ।

मैं थोके बात स्वीकार कर हूँ। अगर मैं वाश्विबल मा कुरानने अपने ही धर्मके आधार पर अपनेको भीसाभी या मुसलमान कह सकता हूँ तो मुझे अपनेको भीसाभी या मुसलमान दोनों ही बहनेमें गंभीर नहीं होगा। क्योंकि फिर तो हिन्दू, भीसाभी और मुसलमान समानार्थक शब्द हो जायेंगे। यह तो मैं मानता ही हूँ कि परसोकमें न हिन्दू है न भीसाभी या मुसलमान। वहाँ खुन एक ही मूलका मूलका नाम था है या वे क्या कहते हैं जिसने अनुसार नहीं होता, केवल खुनक धर्मके अनुसार

ही होता है। जब तक हम जिस पृष्ठी पर हैं तब तक जरूर ये विविध धर्मबाधक नाम हमेशा रहेंगे। जिसलिये मैं भुस समय तक अपने बाप बादाशोंका नाम रखना ही अधिक पसन्द करता हूं, बघाते कि भुससे मेरा विकास कुंठित न होता हो और दूसरी जगह जो भी भकाजी है भुस स्वीकार करनेमें भुसके कारण कोजी टकावट न आती हो।

यंग जिन्दिया २-९-२६, पृ० ३०८

१०

स्वधर्म

धर्मकी ज्यादासे ज्यादा निकटकी यद्यपि फिर भी बहुत अपूर्ण भुपमा मुझे कोजी मिल सकती है तो वह विवाहकी है। विवाह भेक अकाट्य बपन है या माना जाता था। धर्मका बन्यन भुससे भी अधिक अकाट्य है। और जिस प्रकार कोजी पति अपनी पत्नीके प्रति या पत्नी अपने पतिके प्रति वफादार रहती है तो भुसका कारण यह नहीं होता है कि भुसकी पत्नी स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ है या भुसका पति पुरुषोंमें सर्व श्रेष्ठ है वस्तुतः भुसका कारण खुतमें रहा कोजी अनिर्बचनीय किन्तु अनिर्बाय आकर्षण होता है। ठीक भुसी तरह मनुष्य अपने ही धर्मके प्रति अनिर्बाय रूपमें वफादार रहता है और भुस वफादारीमें पूरा सन्तोष प्राप्त करता है। और जैसे भेक वफादार पतिको अपनी वफादारी कायम रखनेके लिये दूसरी स्त्रियोंको अपनी पत्नीसे घटिया समझनेकी जरूरत नहीं होती ठीक भुसी तरह किसी धर्मके अनुयायीको यह जरूरत नहीं रहती कि वह दूसरे धर्मोंको अपने धर्मसे घटिया समझे। जिस भुपमाको और भी आगे बढ़ायें तो जैसे अपनी पत्नीके प्रति वफादारीका यह अर्थ नहीं होता कि हम भुसकी भुटियोंकी तरफसे आँसू मूँद लें किसी तरह अपने धर्मके प्रति वफादारीका यह अर्थ नहीं होता कि भुस धर्मकी भुटियोंकी तरफ हम भभे हो जायं। वास्तवमें वफादारी अगर अंधी नहीं है तो भुसका यह तकाजा होता है कि भुटियोंका अधिक तीव्र ज्ञान हो

और मुझे परिणामस्वरूप मुझे दूर करनेके लुब्धक बुपायोंकी ज्यादा सही सूझ हो। धर्मकी मेरी जो दृष्टि है मुझे देखते हुये मेरे लिये हिन्दू धर्मकी लुब्धकोंकी जांच करना गैर-जरूरी है। पाठक यह समझ लें कि मगर मुझे हिन्दू धर्मकी अनेक लुब्धकोंका भोग न होता तो मैं हिन्दू रह ही नहीं सकता था। बेशक मैं यह नहीं मानता कि ये लुब्धियां केवल हिन्दू धर्ममें ही हैं। जिसलिये दूसरे धर्मोंके प्रति मेरी दृष्टि दोषदर्शी आलोचककी कमी नहीं होती। परन्तु मेक जैसे भक्तकी होती है जो दूसरे धर्मोंमें अपने धर्मके जैसा ही लुब्धियां पानेकी आशा रखता है और जो लुब्धियां अपने धर्ममें पाता है और अपने धर्ममें नहीं पाता उन्हें अपने धर्ममें शामिल कर लेना चाहता है।

हरिजन, १२-८-१३, पृ० ४

पक्का हिन्दू होने पर भी मुझे अपने धर्ममें खीसायी अस्सामी और पारसी धर्मकी शिक्षाओंके लिये गुजाबिग नामूम होती है और जिसलिये मेरा हिन्दुत्व कुछ लोगोंको लिचडी-सा दिखायी देता है और कुछ लोगोंके तो मुझे भ्रमरवृत्तिवाला (eclectic) तक करार दिया है। किसी आत्मीको भ्रमरवृत्तिवाला कहनेका तो यह अर्थ हुआ कि उसका कौन्सी धर्म ही नहीं है परन्तु मेरा तो अितना व्यापक धर्म है कि वह खीसाबियाका—'प्लीमायुष-भ्रातृसथ के सदस्य तकका—और कट्टरसे कट्टर मुसलमानका भी विरोध नहीं करता। जिस धर्मका आधार अत्यन्त व्यापक सहिष्णुता है। मैं किसीका मुसकी कट्टरताके लिये बुरा-भला नहीं कहता, क्योंकि मैं मुझे अपने अपने दृष्टिकोणसे देखनेकी कोशिश करता हूँ। यह व्यापक धर्म ही मेरे जीवनका आधार है। मैं जानता हूँ कि जिससे कुछ परेमाती होती है—लेकिन मुझे नहीं, दूसरोंको।

योग विद्विधा, ३२-१२-१७ पृ० ४२५

बीसाजी धर्म

'यू टेस्टामेण्ट' से मुझे शान्ति मिली और अपार हर्ष हुआ क्योंकि वह मोल्ड टेस्टामेण्ट के कुछ हिस्सोंसे भूतपन्न हुआ। मरुधिके बाद मेरे पढ़नेमें आया। मान लीजिये आज मुझसे गीता छीन ली जाय और मुझकी सब बातें मैं भूल जाऊँ परन्तु मुझे (पार्वतीय) भूपदेश (दि सर्वेन ऑन दि माथ्रुष्ट) की पुस्तिका मिल जाय तो मुझे मुझसे वही आनन्द प्राप्त होगा जो गीतासे होता है।

यग अिडिया २२-१२-२७ पृ० ४२६

बीसाने बीश्वरीय भावना और बिच्छाको भिन्न तरह प्रगट किया खुस तरह और कोमी नहीं कर सका। अिसी अर्षमें मैं मुहें बीश्वर-पुत्रके रूपमें देखता और मानता हूँ। और चूँकि बीसाके जीवनमें यह महत्त्व और अलौकिकता है भिन्नछिजे मेरा विश्वास है कि वे केवल बीसाजी धर्मके ही नहीं परन्तु सारे ससारके हैं, सभी जातियों और लोगोंके हैं—भले वे किसी भी झंडे नाम या सिद्धांतके मातहत काम करें किसी भी अैसे धर्मको मानें या अैसे बीश्वरकी पूजा करें जो खुहें बापदादोंसे विरासतमें मिला हो।

दि मॉठर्न रिब्यू, अक्तूबर १९४१ पृ० ४०६

रोममें सुली पर चढ़े हुअे बीसाका अेक पित्र देखकर गांधीजी बोले पोपके महत्त्वमें सुली पर चढ़े हुअे बीसाकी सजीव मूर्तिक सामने सिर झुका सकनेके छिजे मैं क्या नहीं दे डालता? बीसी-जागती कल्याणके अिस वृक्षसे अलग होते हुअे मुझे बड़ी पीड़ा हुआ। अिस वृक्षको देखते हुअे मैंने मुहूर्तमात्रमें समझ लिया कि ब्यक्तियोंकी भांति राष्ट्र भी सुलीकी यातना सहकर ही बनाये जा सकते हैं और किसी तरह नहीं। आनन्द वृक्षोंको पीड़ा पहुंचानेसे नहीं मिलता परन्तु सुलीसे स्वयं कष्ट भोगनेसे मिलता है।

दिस वारु बापू से० — आर० के० प्रभु पृ० २९ १९५४

बौद्ध धर्म

मैंने अनेक बार लोगोंको यह कहते हुये सुना है और बौद्ध धर्मका मर्म प्रमट करनेका दावा करनेवाली पुस्तकोंमें पढ़ा भी है कि बुद्ध भीश्वरको नहीं मानते थे। मेरी नज़्म रायमें जिस प्रकारकी मान्यता बुद्धकी शिक्षाके केन्द्रीय तत्त्वके ही विरुद्ध है। यह गड़बड़ जित्तिलिमे पैदा हुयी कि बुद्धने अपने जमानेमें भीश्वरके नाम पर चलनेवाली सामान्य बुरादियोंको अस्वीकार कर दिया था और वह ठीक ही था। बुद्धोंने वेदाक जिस लयासूत्रो माननेसे बिनकार कर दिया था कि भीश्वर नामधारी प्राणी द्वेषसे काम करता है, अपने कर्मों पर परचात्ताप कर सकता है और सांसारिक राजाओंकी भांति प्रलोभनोंमें फंस सकता है और बुद्धके कामी विशेष कृपापात्र भी हो सकते हैं। बुद्धोंने जिस मान्यताका प्रबल विरोध किया कि भीश्वर नामधारी प्राणीको अपने संतोपके लिये पशुआका ताजा रक्त चाहिये ताकि वह युद्ध हो सके—बुद्ध पशुआका या अुसकी अपनी ही सृष्टि ह। जित्तिलिमे बुद्धोंने भीश्वरको फिरसे ठीक स्थान पर आसीन किया और अुस दुःख सिहासनका हड़प करके बैठे हुये अनधिकारीका वहांसे प्युत कर दिया। बुद्धोंने जिस विद्वकके नैतिक शासनके चिरस्थायी और अटल अस्तित्व पर जोर दिया और भुमकी फिरसे घोषणा की। बुद्धोंने निस्संकाष कहा कि धर्म ही भीश्वर है।

भीश्वरके नियम शासक और नित्य होते हैं। बुद्धोंने भीश्वरसे अलग नहीं किया जा सकता। भीश्वरकी पूर्णताकी यह अनिर्वाय बातें हैं। त्रिगील्लिमे यह भांति हुयी है कि बुद्धका भीश्वरमें विश्वास नहीं था और वे वेबल नैतिक धर्मको मानते थे। और स्वयं भीश्वरके मध्यममें जिस गड़बड़के कारण निर्वाण जैसे महान धर्मको ठीक तरह समझनेके बारेमें भी गड़बड़ हुयी। अवश्य ही 'निर्वाण' का अर्थ सर्वथा नाश नहीं है। जहां तक

मैं बुद्धके जीवनके केन्द्रीय तथ्यको समझ सका हूँ निर्वाण हमारे भीतरकी सारी नीचता सारी घुराजी और सारी अधमताका ही सर्वनाश है। निर्वाण कब्रकी काली और मृत शांति नहीं है, परन्तु ऐसी आत्माकी सजीव शांति और सजीव सुख है जिसे स्वयं अपना मान है और जिसे अविनाशी परम सत्ताके हृदयमें अपना स्थान प्राप्त कर लेनेका भी मान है।

यंग विडिया २४-११-२७, पृ० ३९३

१३

विस्लाम

मैं जिस अर्थमें भीसायी धर्म बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्मको शांतिके धर्म मानता हूँ मुसी अर्थमें विस्लामको भी शांतिका धर्म मानता हूँ। बेधक, मात्रामें कुछ अन्तर है परन्तु जिन सब धर्मोंका बुद्देश्य शांति ही है। मैं यह राय दे चुका हूँ कि विस्लामके अनुयायी तस्वारका अुपयोग बहुत खुले हाथों करते हैं। परन्तु यह कुरानकी शिक्षाका फल नहीं है। मेरी रायमें अिसका कारण वह वातावरण है जिसमें विस्लाम पैदा हुआ। भीसायी धर्मका भी अेक रक्तरजित इतिहास है और वह अुसकी शिक्षाके खिलाफ है तथा अुसके गौरवको घटाता है। लेकिन अुसका कारण यह नहीं है कि भीसा कसौटी पर पूरे नहीं अुतरे। कारण यह है कि जिस वातावरणमें अुस धर्मका प्रसार हुआ वह अुनकी अुन्न शिक्षाके अनुकूल नहीं था।

यंग विडिया २०-१-२७ पृ० २१

बौद्ध धर्म

मैंने अनेक बार लोगोंको यह कहते हुये सुना है और बौद्ध धर्मका मर्म प्रगट करनेका दावा करनेवाली पुस्तकोंमें पढ़ा भी है कि बुद्ध जीस्वरको नहीं मानते थे। मेरी मन्त्र राममें जिस प्रकारकी मान्यता बुद्धकी सिंहाके केन्द्रीय तत्त्वके ही विरुद्ध है। यह गड़बड़ जिसलिये पैदा हुआ कि बुद्धने अपने जमानेमें भीस्वरके नाम पर चलनेवाली समस्त पुराधियाको अस्वीकार कर दिया था और वह ठीक ही था। मुन्होंने बेशक जिस खयालको माननेसे विनकार कर दिया था कि भीस्वर नामधारी प्राणी द्वेषसे काम लेता है, अपने कर्मों पर पश्चात्ताप कर सकता है और सांसारिक राजाओंकी भांति प्रसन्नोन्नतोंमें फंस सकता है और मुसके कोभी विशेष कृपापात्र भी हो सकते हैं। मुन्होंने जिस मान्यताका प्रबल विरोध किया कि भीस्वर नामधारी प्राणीको अपने संतोपक्ष लिये पशुओंका राजा रख चाहिये ताकि वह सुख हो सके—युग पशुओंका जो मुसकी अपनी ही सृष्टि है। जिसलिये मुन्होंने भीस्वरको फिरसे ठीक स्थान पर आसीन किया और युग शुभ्र सिंहासनको हड़प करके बैठे हुये अनधिकारीको बहासे श्युत कर दिया। मुन्होंने जिस विश्वक नैतिक शासनके विरुद्धापी और अटक अस्तित्व पर जोर दिया और मुसकी फिरसे शोषणा की। मुन्होंने निस्तकोच कहा कि धर्म ही भीस्वर है।

भीस्वरके नियम शाश्वत और निरप्य होते हैं। मुन्हें जीस्वरसे अलग नहीं किया जा सकता। भीस्वरकी पूर्णताकी यह अनिवार्य शर्त है। जिसलिये यह भ्रांति हुआ कि बुद्धका जीस्वरमें विश्वास नहीं था और वे केवल नैतिक धर्मको मानते थे। और स्वयं जीस्वरके सम्बन्धमें जिस गड़बड़के कारण 'निर्वाण' जैसे महान शब्दको ठीक तरह समझनेके बारेमें भी गड़बड़ हुआ। अचर्य ही निर्वाण का अर्थ सर्वथा नारा नहीं है। जहां तक

मैं बुढ़के जीवनके केन्द्रीय तथ्यको समझ सका हूँ निर्वाण हमारे भीतरकी सारी नीचता सारी बुराभी और सारी अक्षमताका ही सर्वनाश है। निर्वाण कबकी काली और मृत छाति नहीं है परन्तु ऐसी आत्माकी सजीव छाति और सजीव सुख है जिसे स्वयं अपना मान है, और जिसे अविनाशी परम सत्ताके हृदयमें अपना स्थान प्राप्त कर लेनेका भी मान है।

योग जिज्ञिया २४-११-२७ पृ० ३९३

१३

अिस्लाम

मैं जिस अर्थमें खीसाभी धर्म, बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्मको छातिके धर्म मानता हूँ उसी अर्थमें अिस्लामको भी छातिका धर्म मानता हूँ। वेशक, मात्रामें कुछ अन्तर है परन्तु बिन सब धर्मोंका अुद्देश्य छाति ही है। मैं यह राय दे चुका हूँ कि अिस्लामके अनुयायी तलवारका अुपयोग बहुत खुले हाथों करते हैं। परन्तु यह कुरानकी शिक्षाका फल नहीं है। मेरी रायमें अिसका कारण यह बातावरण है जिसमें अिस्लाम पैदा हुआ। खीसाभी धर्मका भी अेक रक्तरजित अितिहास है और वह उसकी शिक्षाके अिच्छाफ है तथा अुसके गौरवको घटाटा है। अेकिन अुसका कारण यह नहीं है कि खीसा कसौटी पर पूरे नहीं अुठरे। कारण यह है कि जिस बातावरणमें अुस धर्मका प्रसार हुआ वह अुनकी अुष्ण शिक्षाके अनुकूल नहीं था।

योग जिज्ञिया २ -१-२७ पृ० २१

बियोसॉफी

गांधीजीसे पूछा गया, क्या आप कभी बियोसॉफिकल सोसायटीके सदस्य रहे हैं? गांधीजीने कहा कि सदस्य तो मैं कभी नहीं रहा मगर मुझे उसके विस्वबन्धुत्वके सन्देश और मुससे पैदा होनेवाली सहिष्णुताके साथ सदा सहानुभूति रही है।

बुन्होंने यह भी कहा “ मैं बियोसॉफिकल सोसायटीवाले मित्रोंका बहुत भूषी हूँ। खुनमें मेरे अनेक मित्र हैं। थीमती ब्लेबेद्स्की कर्नस ऑस-कॉट या डॉक्टर बेसेन्टके लिन्नाफ आलोचक कुछ भी कहें, मानव सम्प्रदायी प्रगतिमें बिनका योग सदा अंधे दरेंबेंका मामा आयया। बिस समाजमें मेरे धारीक होनेमें खुसका गुप्त, पहलू भी बाधक हुमा है। खुसकी गुप्त बिद्या (occultism) मुझे कभी नहीं जंभी। ”

बिस वाच बापू, छे० - बार के० प्रमु, पृ० ११ १९५४

प्रेतविद्या

मुझे प्रेतारमाअसि कभी सन्देश नहीं मिलते। बिस प्रकार सन्देश मिलनेकी संभावनामें अविश्वास रखनेके छिमे मेरे पास कोभी प्रमाण नहीं है। परन्तु बिस प्रकारका सम्पर्क रखने अपना खुसकी कोशिश करनेके अभ्यासको मैं बहुत नापसन्द करता हूँ। ये सम्पर्क अक्सर भ्रामक और फाल्गुनिक होसे हैं। जैसे सम्पर्क संभव भी मान लें तो यह अभ्यास माध्यम और प्रेतारमा बोनकि छिमे हानिकारक है। खुससे बुझाभी हुभी आरमा पृथ्वीकी ओर आकर्षित और मोहबद्ध होती है, जब कि प्रयत्न यह होना चाहिये कि यह ससारसे अनासक्त होकर ऊपर बुठे। कोभी आत्मा शरीरसे मुक्त हो जानेसे ही धुद नहीं हो जाती। वह अपने साथ के सारी कमजोरियां से जाती है बिनकी कि वह पृथ्वी पर टिकार थी। बिसछिमे

बकरी नहीं कि भुसकी दी हुमी जानकारी या सछाह सही या ठीक ही हो। किसी प्रेतात्माका सधारवासियोंसे सम्पर्क चाहना खुशीकी बात नहीं है अरुटे भुसे असी अनुचित आसक्तिसे छुड़ाना चाहिये। यह तो भी प्रेतात्माओंको होनेवाले मुकसानकी घात।

रही बात भाष्यमकी तो मेरे लिखे यह निश्चित ज्ञानकी घात है कि जिन जिनका मुझे अनुभव है जैसे सब लोगोंका विभाग या तो असंतुलित होता है या कमजोर होता है और जिस समय वे ये सम्पर्क साध रहे होते हैं या यह समझते हैं कि साध रहे हैं उस समय वे ब्याबहारिक कार्यके लिखे असमर्थ हो जाते हैं। मुझे याद नहीं कि मेरे किसी भी मित्रको जिसने जैसे सम्पर्क साधनेकी कोशिश की है भुनसे किसी प्रकार लाभ हुआ हो।

योग विडिया १२-९-२९ पृ० ३०२

१६

धर्मोंकी सुलना

जब तक अलग-अलग धर्म मौजूद हैं तब तक प्रत्येक धर्मको किसी विशेष बाह्य चिह्नकी आवश्यकता हो सकती है। लेकिन जब बाह्य संज्ञा केवल आढम्बर बन जाती है अथवा अपने धर्मको दूसरे धर्मसे अलग बतानेके काम आती है तब वह त्याग्य हो जाती है।

आरमकथा पृ० ३४२ १९५७

जैसे भीषवरने अलग अलग धर्मोंके माननेवाले पैदा किये हैं, ठीक खुशी तरह अलग अलग धर्म भी पैदा किये हैं। मैं गुप्त रूपमें भी अपने मनमें यह विचार कैसे रख सकता हूँ कि मेरे पड़ोसीका धर्म मुझसे भटिया है और यह कैसे चाह सकता हूँ कि वह अपना धर्म छोड़कर मेरा धर्म अपना ले? अंक सच्चे और वफादार मित्रके माते मैं तो यही विच्छा और प्रार्थना कर सकता हूँ कि वह अपने ही धर्मके अनुसार चले और

बुद्धिपूर्वक वने। भगवानके महात्म्यमें अनेक बख्त हैं और वे सब भेरुसे पवित्र हैं।

हरिजन २०-४-३४ पृ० ७३

मुझे डर यह है कि भले ही बीसाथी मित्र आजकल यह न कहें या स्वीकार न करें कि हिन्दू धर्म झूठा है परन्तु उनके बिलोंमें यह विश्वास भरकर है कि हिन्दू धर्म सत्य है और बीसाथी धर्म ही, जैसा वे बुझे मानते हैं सच्चा धर्म है। बीसी कोभी बात हुमे बिना धर्म मिसनरी सोसायटी द्वारा प्रकाशित की गयी अपील^{*}का आशय समझना सम्भव नहीं। मिस अपीलके कुछ महत्वपूर्ण हिस्से जिस पत्रमें मैंने कुछ दिन बहुत किये थे। सुभासूत और दूसरी बरावियां जो हिन्दू धीयनमें बुझ गयी हैं, उन पर हमला ही तो हम समझ सकते हैं। और अगर वे लोग जित मानी हुमी बुराजियोंको छुड़ानेमें और हमारे धर्मकी शुद्धि करनेमें हमारी मदद करें तो वह एक सहायतापूर्ण और रचनात्मक काम होगा और हम उसे कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करेंगे। परन्तु जहां तक मौजूदा प्रयत्न हमारी समझमें आता है उसका बुद्ध्यम तो हिन्दू धर्मकी बड़ ही मुलाह देनेका और उसकी जगह दूसरे धर्मकी स्थापना करनेका मासूम होता है। यह तो किसी भीसे धरको नष्ट कर देनेकी कोशिश है जिसे मरम्मतकी तो निहायत जरूरत है परन्तु जिसे रूनेवाला बिलकुल अच्छा और रूने लायक समझता है। कोभी आश्चर्य नहीं यदि वह उन लोगोंका स्वागत करे जो उसे मरम्मतका तरीका बतायें और खुद ही मरम्मत कर देनेकी भी तैयारी विचारें। परन्तु वह निश्चित रूपमें उन लोगोंका विरोध करेगा जो उस धरको जिसने उसे और उसके बापदायोंको युग युग तक अच्छा काम दिया है नष्ट करना चाहेंगे। यह दूसरी बात है कि रूनेवालेको ही यह पक्का विश्वास हो जाय कि बरकी मरम्मत नहीं हो सकती और वह बिम्सानके रूने लायक नहीं रह गया है। अगर बीसाथी-जगत हिन्दू धर्मके बारेमें जैसी राय रखता है तो सर्व-धर्म

* मिसनरी धर्म मिसनरी सोसायटीकी अपील, जिसके कुछ अंश २९-१२-३३ के 'हरिजन' में उद्धृत किये गये थे।

संसद् और 'आन्तर राष्ट्रीय भ्रातृत्व भादि शब्दोंका कोमी अर्थ नहीं क्योंकि बिन शब्दोंका आशय तो यह है कि विभिन्न धर्मोंका दर्जा समान है और बिन संर्षोंके द्वारा वे एक मज पर बराबरीके आधार पर मिल रहे हैं। निकृष्ट और मुस्कृष्टमें ज्ञानवान और अज्ञानीमें धुन्नत और अवनतमें धुन्न कृष्णवाले और नीच कृष्णवालेमें जातिवाले और जाति-बहिष्कृतमें कोमी सामान्य मिरुनन्मज नहीं हो सकता। मेरी तुलना दोषपूर्ण हो सकती है शायद अत्यंतक भी मासूम हो। मेरा तर्क ठीक न दिखामी वे परन्तु मेरा कथन तो ठीक है।

हरिजन १३-३-३७ पृ० ३६

धर्मोंके भ्रातृ-मंडलका अर्थस्य यह होना चाहिये कि वह एक हिन्दूका अधिक अच्छा हिन्दू, एक मुसलमानको अधिक अच्छा मुसलमान और एक खीसात्रीको अधिक अच्छा खीसात्री बननेमें मदद करे। कृपापूर्ण सहिष्णुताका रबीया आंतर-राष्ट्रीय भ्रातृत्वकी भावनाके विपरीत है। अगर मेरे मनमें यह हो कि मेरा धर्म तो बड़ा-बहुत सच्चा है और दूसरोंके धर्म छोटे या बहुत सूठे हैं तो मुझे मुनके प्रति बड़ासा भ्रातृत्व चाहे हो लेकिन वह खुस भ्रातृत्वसे बिल्कुल भिन्न प्रकारका होता है जिसकी हमें आन्तर राष्ट्रीय भ्रातृ-मंडलमें जरूरत है। दूसरोंके लिये हमारी प्रार्थना यह नहीं होनी चाहिये हे श्रीस्वर, मुझे वही प्रकाश दे जो तूने मुझे दिया है, परन्तु यह होनी चाहिये कि मुझे वह सारा प्रकाश और सत्य दे जिसकी मुझे अपने सर्वोच्च विकासके लिये आवश्यकता है। प्रार्थना अितनी ही कीजिये कि आपके मित्र अधिक अच्छे मनुष्य बन जायं चाहे मुनके धर्मका स्वरूप कुछ भी हो।

फिर भी आपके जाने बिना ही आपका अनुभव मुनके अनुभवका एक भग बन सकता है।

साबरमती (फेडरेशन ऑफ अिन्टरनेशनल फेसोसिपिअकी पहली वार्षिक बैठककी रिपोर्ट) पृ० १७-१९ १९२८

धर्म-परिवर्तन

सी० अफ० अेन्ड्रूज आप अुस मनुष्यसे क्या कहेंगे जो बहुत विचार और प्रार्थनाके बाद यह कहे कि मुझे तो बीसाबी बने बिना शांति और मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती ?

गांधीजी मैं कहूँगा कि अगर अेक गैर-बीसाबी (हिन्दू कह सीजिये) किसी बीसाबीके पास आये और यह बात कहे, तो बीसाबीका कहना चाहिये कि धर्म बदलनेमें कल्याण खोजनेकी अपेक्षा वह अेक अच्छा हिन्दू बननेका प्रयत्न करे।

अेन्ड्रूज आप मेरी अपनी स्थितिकी जानते हैं, परन्तु मैं जिस मामलेमें आपके साथ अन्त तक नहीं जा सकता। मैंने यह स्थिति तो बहुत पहले ही त्याग दी थी कि बीसाके बिना बुद्धार ही नहीं हो सकता। परन्तु मान सीजिये ऑक्सफोर्ड ग्रूप मूवमेन्टवाले आपके पुत्रका जीवन बदल दें और मुसकी मिच्छा धर्म-परिवर्तन की हो जाय तो आप क्या कहेंगे ?

गांधीजी मैं यह कहूँगा कि ऑक्सफोर्ड ग्रूपवाले जितने कामोंके चाहें मुतने लोगोंके जीवन बदल दें परन्तु अुनका धर्म न बदलें। वे अुनके अपने धर्मोंकी अुत्तम बातोंकी तरफ अुनकध ध्यान बिना सकते हैं और अुनके अुनुसार जीवन बितानेका अुनुरोध करके अुनके जीवनमें परिवर्तन कर सकते हैं। मेरे पास अेक आदमी आया था। वह बाह्य रूप माता पिताका पुत्र था। मुसने कहा कि आपकी किताब पढ़कर वह बीसाबी बन गया। मैंने अुससे पूछा कि क्या अुसके अुपदेशोंसे अुसके पूर्वजोंका धर्म गलत है ? अुसने कहा नहीं। सब मैंने कहा क्या जिस बातमें फौजी कठिनायी है कि तुम बाइबलको संसारके महान धर्मग्रन्थोंमें से अेक ग्रंथ और बीसाको महान गुरुओंमें से अेक गुरु मान लो ? मैंने अुससे कहा कि आपने अपनी पुस्तकोंके द्वारा भारतीयोंसे यह कभी नहीं कहा कि वे बाइबलको अपनाकर बीसाबी धर्म स्वीकार कर लें। मैंने अुसे बताया कि अुसने आपकी पुस्तकका गलत अर्थ किया

है। बेशक आपकी स्थिति स्वर्गीय मौलाना मुहम्मदअली जैसी हो अर्थात् अुनकी तरह आप भी यह मानते हो कि अिस्लामको माननेवाला मुसलमान चाहे मुसका जीवन कितना ही क्षराब हो अच्छे हिन्दूसे बेहतर है तो बात दूसरी है।

अेन्द्रूब मुझे मौलाना मुहम्मदअलीका विचार बिलकुल मंजूर नहीं है। परंतु मैं यह बकर कहता हूं कि अगर किसी व्यक्तिको सच मुच धर्म-परिवर्तनकी आवश्यकता हो ता मुझे मुसके रास्तेमें बाधक नहीं बनना चाहिये।

गांधीजी परंतु आप यह नहीं देखते कि आप तो मुसे मौका ही नहीं देते? आप मुससे बिरह तक नहीं करते। मान लीजिये कि कोभी अीसाअी मेरे पास जाता है और कहता है कि मागवत पढ़कर वह मुग्ध हो गया है और अिसलिये अपनेको हिन्दू घोषित करना चाहता है तो मुझे मुससे कहना चाहिये नहीं जो भीष मागवत देती है वह बाबिबल भी देती है। तुमने अभी तक मुसका पता लगानेकी कोशिश नहीं की है। कोशिश करो और अच्छे अीसाअी बनो।

अेन्द्रूब मुझे मालूम नहीं कि सही भीष क्या है। अगर कोभी आप्रह पूर्वक कहता है कि वह अच्छा अिसाअी बनेया तो मैं मुससे कहूंगा कि तुम्हें बनना हो तो बनो - यद्यपि आप जानते हैं कि मैंने स्वयं अपने जीवनमें मेरे पास मानेवाले मुत्कट मुस्वाहियोंका जोर देकर रोका है। मैंने अुनसे यही कहा कि मेरे कारण तो तुम्हें अैसी कोभी भीष हरगिअ नहीं करनी चाहिये। परंतु मानव-स्वभाव अकर कोभी ठोस धर्म चाहता है।

गांधीजी अगर कोभी आपदी बाबिबलमें विस्वास रखना चाहता है तो वह अैसा कहे, परंतु मुसे स्वयं अपना धम क्यों छोड़ देना चाहिये? अिस धर्म-परिवर्तन करानेकी प्रवृत्तिसे ससारमें शान्ति नहीं होगी। धर्म अत्यंत व्यक्तिगत वस्तु है। हमें अपने अपने ज्ञानके अनुसार जीवन व्यतीत करके अेक-दूसरेको मुत्तम बातोंमें साक्षीधार बनाना चाहिये और अिस प्रकार अीश्वर तक पहुंचानेके समूचे मानव-प्रयत्नमें वृद्धि करनी चाहिये।

गांधीजीने अपना कथन जारी रखते हुये कहा विचार कीजिये कि आप परस्पर-सहिष्णुताकी स्थिति स्वीकार करने जा रहे हैं या सब

धर्मोंकी समानताकी। मेरी स्थिति यह है कि मूलमें सब बड़े बड़े धर्म समान हैं। हमको अपने धर्मकी तरह दूसरे धर्मोंके लिये भी जन्मजात आदर होना चाहिये। ध्यान रहे कि मैं परस्पर-सहिष्णुता नहीं परंतु सब धर्मोंके लिये समान आदर चाहता हूँ।”

हरिजन २८-११-३६, पृ० ३३०

अन्तःकरण सबके लिये एक ही वस्तु नहीं है। जिसलिये यद्यपि व्यक्तिगत आचरणके निर्णयके लिये वह अच्छा मार्गदर्शक है लेकिन सब पर वही आचरण लागू करना सबके अन्तःकरणकी स्वतंत्रतामें असह्य हस्तक्षेप करना होगा।

योग सिद्धिया २३-९-२६, पृ० ३३४

१८

बेहतर तरीका -

सत्य और अहिंसाका प्रचार पुस्तकों द्वारा जुतना नहीं हो सकता जितना कि सिद्धांतोंके अनुसार सचमुच जीवन बिताकर किया जा सकता है। सही तरीके पर बिताया हुआ जीवन पुस्तकोंसे कहीं ज्यादा अच्छा है।

हरिजन १३-५-३९ पृ० १२३

दीर्घ अध्ययन और अनुभवके बाद मैं जिस तरीके पर पहुंचा हूँ कि (१) सब धर्म सच्चे हैं (२) सब धर्मोंमें कुछ-न-कुछ भूल है, (३) सब धर्म मुझे लगभग अतने ही प्रिय हैं जितना मेरा अपना हिन्दू धर्म है, क्योंकि सारे मानव प्राणी मेरे लिये अपने निकट सम्बंधियोंके जैसे ही प्रिय होने चाहिये। दूसरे धर्मोंके लिये मुझे वैसा ही पूज्य भाव है जैसा मेरे अपने धर्मके लिये है।

साबरमती पृ० १७ १९२८

श्रीश्वर है

अगर हमारा अस्तित्व है अगर हमारे माता पिता और मुझे माता-पिताका अस्तित्व रहा है तो सारी सृष्टिके पितामें बिश्वास रखना अहित ही है। अगर वह नहीं है तो हमारा कोई ठिकाना नहीं। वह भेक होते हुमे भी अनेक है। वह अणुसे भी छोटा और हिमालयसे भी बड़ा है। वह सागरकी एक बूदमें भी समा जाता है और सार्ते समुद्रमें भी नहीं समा सकता। बुद्धि अुसको जाननेमें असमर्थ है। वह बुद्धिकी पहुंच या पकड़के परे है। लेकिन जिस बातका प्यादा बिस्तार करनेकी जरूरत नहीं। जिस बिषयमें अज्ञा अत्यावश्यक है। मेरा सर्व असंभ्य अनुमान बना और बिगाड़ सकता है। कोई नास्तिक मुझे बाद विवाहमें पछाड़ सकता है। परन्तु मेरी अज्ञा मेरी बुद्धिकी अपेक्षा अितनी सेज दीड़ती है कि मैं सारी दुनियाको चुनौती देकर कह सकता हूं कि श्रीश्वर है, या और सबा रहेगा।

परन्तु जो अुसकी हस्तीसे बिनकार करना चाहें, अुहें बीसा करनेकी स्वतंत्रता है। वह समा और कवणाका धाम है। वह कोई सांसारिक राजा नहीं जिसे अपनी सत्ता मनवानेको सेना चाहिये। वह हमें स्वतंत्रता देता है और फिर भी अुसकी कवणा बीसी है कि हम नतमस्तक हो जाते हैं और बाध्य होकर अुसकी बिच्छाका पाछम करते हैं। परन्तु हममें से कासी अुसकी मरबीके आगे अुजनेको तैयार न हो तो वह कहता है अच्छा! मेरा सूर्य तो तेरे लिये फिर भी बीसा ही बन फटा रहेगा मेरे बादर तेरे लिये बीसे ही बरसते रहेंगे। मुझे अपना शासन मनवानेको तुम पर बलना प्रयोग करनेकी जरूरत नहीं। बीसे श्रीश्वरकी हस्तीमें अज्ञानी भसे ही शंका करें। मैं अुम करोड़ों सयानोंमें

हूँ जो खुसे मानते हैं और मुझे मुसके जागे मुकने और मुसका पीरव गानेमें कभी थकावट नहीं लगती।

यंग जिन्दिया २१-१-२६, पृ० ३०-३१

एक असी अनिबंधनीय रहस्यमयी शक्ति है जो सर्वत्र व्याप्त है। मैं खुसे अनुभव करता हूँ यद्यपि देखाता नहीं हूँ। यह अदृश्य शक्ति अपना अनुभव तो कराती है परंतु खुसका कोभी प्रमाण नहीं दिया जा सकता क्योंकि जिन वस्तुओंका मुझे अपनी अद्रियों द्वारा ज्ञान होता है मुन सबसे वह बहुत भिन्न है। वह अन्द्रियोंकी पहुंचके बाहर है।

परंतु एक सास हव तक श्रीस्वरके अस्तित्वका बुद्धिके द्वारा भी साबित किया जा सकता है। साधारण मामलोंमें भी हम जानते हैं कि लोगोंको यह पता नहीं होता कि कौन अून पर शासन करता है या क्यों करता है और कैसे करता है। फिर भी वे जानते हैं कि कोभी असी शक्ति अवश्य है जो अून पर शासन करती है। अपने पिछसे सालके मीसूरके दौरेमें मैं कभी गरीब देहातियोंसे मिला और अूनसे पूछने पर मुझे पता चला कि मुझे यह भासूम नहीं है कि मीसूरमें किसका राज्य है। मुन्हाने केवल भितना कहा कि किसी देवताका राज्य है। अमर अून गरीब लोगोंका ज्ञान अपने राजाके बारेमें भितना सीमित है, तो मुझे — मैं ये गरीब लोग अपने राजासे जितने छोटे हैं खुसकी अपेक्षा श्रीस्वरसे अनेक गुना छोटा हूँ — भादस्य न होना चाहिये अमर मैं राजाके राजा श्रीस्वरकी हस्तीको अनुभव न करूं। फिर भी जैसा अून गरीब देहातियोंको मीसूरके बारेमें अनुभव होता था वैसा ही मुझे भी अवश्य अनुभव होता है कि विश्वमें व्यवस्था है हरलोक प्राणी और प्रत्येक वस्तु पर शासन करनेवाला एक अटक नियम है। और वह कोभी अन्धा नियम नहीं है। क्योंकि सजीव प्राणियोंके आचरणको नियंत्रित करनेवाला कोभी नियम अन्धा नहीं हो सकता, और सर अपसीदा चन्द्र बसुकी अद्भुत लोजसि अब तो यह भी साबित किया जा सकता है कि जड़ पदार्थोंमें भी जीवन है। प्राणियोंका शासन करनेवाला यह नियम ही श्रीस्वर है। नियम और नियामक एक ही हैं। मुझे नियम या नियामकके बारेमें बहुत थोड़ा ज्ञान है, केवल जिज्ञासिमें

मैं मुझे अस्तित्वसे विनकार नहीं कर सकता। वैसे किसी पापिव शक्तिके अस्तित्वका विनकार करनेसे या मुझे अज्ञानसे मेरा कोई लाभ नहीं होगा किसी तरह भीश्वर और मुझे नियमको न माननेसे मैं मुझे अमरसे मुक्त नहीं हो जाऊंगा, जब कि जिस तरह किसी सांसारिक रामको स्वीकार कर लेनेसे मुझे अश्लील जीवन आसान हो जाता है मुझे प्रकृतिकी सत्ताको मज्र होकर गुपचाप स्वीकार कर लेनेसे जीवनकी यात्रा सरल हो जाती है।

मैं अस्पष्ट तौर पर यह जरूर अनुभव करता हूँ कि जब मेरे चारों ओर हर चीज हमेशा बदल रही है मरत हो रही है, तब जिस सारे परिवर्तनके पीछे कोई चेतन शक्ति अती जरूर है जो बदलती नहीं है जो सबको धारण किये हुबे है, जो सर्वन करती है संहार करती है और फिर नया सर्वन करती है। यह जीवनदायी शक्ति या सत्ता ही भीश्वर है। और चूंकि केवल विद्विबा द्वारा विज्ञानी देनेवाली अन्य कोई भी चीज न हो स्यायी है और न हो सकती है, अतःकिमे अकेला भीश्वरका ही अस्तित्व है।

यह शक्ति कस्याणकारी है या अकस्याणकारी? मैं देखता हूँ कि यह सर्वथा कल्याणकारी है क्योंकि मुझे दिखायी देता है कि मृत्युके बीच जीवन कामम रहता है अस्त्यके बीच सत्य टिका रहता है और अंधकारके बीच प्रकाश स्थिर रहता है। अतःसे मुझे पता चलता है कि भीश्वर जीवन है, सत्य है और प्रकाश है। वही प्रेम है। वही परम मंगल है।

परंतु जो भीश्वर केवल बुद्धिको संशोप देता है वह भीश्वर नहीं है। भीश्वर तभी भीश्वर है जब वह हृदय पर शासन करता हो और मुझे क्पान्तर करता हो। मुझे अपने भक्तके छोटेसे छोटे काममें प्रगट होना चाहिये। यह तभी हो सकता है जब पापों विद्वियोंसे होनेवाले ज्ञानसे भी अधिक वास्तविक रूपमें मुझे निश्चित साक्षात्कार सिद्ध किया जाय। विद्वियोंसे होनेवाला ज्ञान हमें कितना ही वास्तविक विज्ञानी दे तो भी वह झूठा और भ्रमपूर्ण हो सकता है और अकसर होता है। लेकिन अतीन्द्रिय ज्ञान अचूक होता है। अतःका प्रमाण बाहरी प्रमाणसे नहीं मिलता परंतु अिन छोड़ने भीश्वरके वास्तविक अस्तित्वको अपने

भीतर अनुभव किया है अतःके आचरण और चरित्रमें होनेवासे परिवर्तनसे मिरता है।

जैसा प्रमाण सब देशोंमें होनेवासे पैगम्बरों और अपुपिमेंकी अदृष्ट परंपराके अनुभवोंमें पाया जाता है। जिस प्रमाणको अस्वीकार करना अपने आपको न माननेके बराबर है।

जिस तरहके साक्षात्कारकी पूर्वसर्त है — बटल भद्रा। जो व्यक्ति अपने अन्दर जीवन्तकी अपुपिमेंके सत्यकी जांच करना चाहता है, उसे पहले अपने भीतर जीवित श्रद्धाका विकास करना चाहिये। श्रद्धाके द्वारा ही वह जैसा कर सकता है। और चूकि स्वयं श्रद्धा किसी बाह्य प्रमाणसे साबित नहीं की जा सकती जिसलिसे सबसे सुरक्षित मार्ग यह है कि संसारके नैतिक शासनमें और जिसलिसे नैतिक कानूनमें सत्य और प्रेमके नियमकी सर्वोपरितामें, विश्वास किया जाय। जहाँ सत्य और प्रेमके विपरीत जानेवाली सब बातोंका सर्वथा त्याग करनेका स्पष्ट संकल्प है वहाँ श्रद्धा रखना सबसे सुरक्षित उपाय है।

किसी बौद्धिक उपायसे मैं दुनियामें बुराभीके अस्तित्वका कारण नहीं समझा सकता। जैसा करनेकी भिच्छा रखना मानो जीवन्तकी बराबरी करना है। जिसलिसे मैं मन्त्रणापूर्वक यह मान लेता हूँ कि बुराभीका अस्तित्व है। और मैं जीवन्तकी अत्यन्त सहनशील और धैर्य छात्री जिसलिसे कहता हूँ कि वह संसारमें बुराभी होने देता है। मैं जानता हूँ कि कुछमें बुराभी नहीं है। उसने बुराभी पैदा तो की है, परंतु वह मुझे अछूता है।

मैं यह भी जानता हूँ कि अगर मैं प्राणोंकी बाजी लगाकर भी बुराभीके खिलाफ युद्ध नहीं करूँगा तो मुझे जीवन्तका ज्ञान कभी नहीं होगा। मेरा यह विश्वास मेरे अपने ही मन्त्र और सीमित अनुभवोंसे दृढ़ हुआ है। मैं जितना युद्ध बननेकी कोशिश करता हूँ जितनी ही जीवन्तके साथ निकटता अनुभव करता हूँ। जब मेरी श्रद्धा जाबकी तरह मानमानकी न रहकर हिमालयकी भाँति अचल और उसके भित्तर पर चमकनेवाली चर्चकी तरह धबधब और सेजस्वी ही जायगी तब मैं मुझे साथ कितनी अधिक निकटता अनुभव करूँगा? तब तक मैं अपने पबलेसकसे कहूँगा

कि वह काबिलरु न्यूमैनके साथ भुसका यह अनुभवसे निकला हुआ मन्त्र गाये

हे प्रेमल ज्योति चारो ओर घिरे हुमे अधकारमें
तू मुझे रास्ता बता ।

रात अंधेरी है और मैं घरसे दूर हूँ ।

तू मुझे रास्ता बता ।

तू मेरे पैरोंको घामे रूह मैं दूरका दृश्य देखना नहीं चाहता
मेरे सिधे तो भेक कदम ही काफी है ।”

मंग जिडिया ११-१०-२८ पृ० ३४०-४१

बुद्धिवादी बड़े अच्छे जादमी होते हैं। परंतु बुद्धिवाद जब सर्व-शक्तिमान होनेका दावा करता है, तब भेक भयंकर राक्षस हो जाता है। बुद्धिको सर्व-शक्तिमान मान लेना अतनी ही बुरी मूर्तिपूजा है जितनी पेड़-पत्थरको श्रीश्वर मानकर पूजना। मैं बुद्धिके दमनका प्रतिपादन नहीं कर रहा हूँ परंतु हमारे भीतर जो वस्तु बुद्धिको पवित्र बनाती है उसे अर्पित रूपमें स्वीकार कर लेनेकी हिमायत करता हूँ।

मंग जिडिया १४-१०-२६, पृ० ३५९

यह कहना बहुत आसान है कि मेरा श्रीश्वरमें विश्वास नहीं है, क्योंकि श्रीश्वर अपने धारेमें बेपड़क होकर सब-कुछ कहने देता है। वह हमारे कर्मोंको देखता है। भुसका कानून भंग करनेके साथ भिस भंगका अभिचार्य दंड लगा हुआ है, लेकिन यह दंड बवसा लेनेवासा नहीं परंतु शुद्ध करनेवासा होता है।

मंग जिडिया २३-९-२६ पृ० ३३३

श्रीश्वरका स्वरूप

मैं श्रीश्वरको कोभी व्यक्ति नहीं मानता। मेरे किये सत्य ही श्रीश्वर है। और श्रीश्वरका कानून तथा श्रीश्वर ब्रह्म अर्थमें निम्न वस्तुओं या तथ्य नहीं हैं, जिस अर्थमें कोभी पुनियाबी राजा और ब्रह्मका कानून असंग असंग होते हैं। चूंकि श्रीश्वर स्वयं कानून है, जिसकिये यह कल्पना नहीं की जा सकती कि वह कानूनको ठोड़ता होगा। जिस किये वह हमारे कार्योंका नियंत्रण नहीं करता और स्वयं हट नहीं जाता। जब हम कहते हैं कि वह हमारे कार्योंका नियंत्रण करता है तब हम केवल मानव-आपाका व्यवहार करते हैं और ब्रह्मसे सीमित बना देते हैं। अन्यथा वह और ब्रह्मका कानून सब जगह विद्यमान है और सबका शासन करता है। जिसकिये मैं शैसा नहीं समझता कि वह हमारी हर प्रार्थनाका हर तफ्तीकमें उत्तर देता है। परंतु जिसमें एक नहीं कि वह हमारे कार्योंका नियंत्रण करता है और मैं अक्षरशः मानता हू कि आसका एक पत्ता भी ब्रह्मकी मरजीके बिना न ठोड़ता है और न हिस्रता है। हमें जो विच्छा-स्वातंत्र्य प्राप्त है, वह खयालब भरे जहाजके मूसाफिरके विच्छा-स्वातंत्र्यसे भी कम है।

“श्रीश्वरसे ली सयानेमें क्या आपको स्वतंत्रताकी भावना अनुभव होती है?”

हां होती है। तब मुझे वह पराधीनता अनुभव नहीं होती जो यामियॉसि मरी नाब पर बैठे हुये मानीकी होती है। यद्यपि मैं जानता हूँ कि मरी स्वतंत्रता एक मूसाफिरकी स्वतंत्रतासे भी कम है, फिर भी मैं ब्रह्मकी कबर करता हूँ, क्योंकि गीताका यह भुषदेश मेरी रण रणमें समा गया है कि मनुष्य स्वयं ही जिस अर्थमें अपने माप्यका निष्ठा है कि ब्रह्मसे जिस स्वतंत्रताका अपनी विच्छानुसार उपयोग करनेकी स्वतंत्रता है। परंतु परिणामोंका नियंत्रण वह नहीं है। जहां वह अपनेको नियंत्रित मानता है वहीं वह ठोकर खाता है।

परमेश्वर पूर्ण है और सर्व-शक्तिमान है फिर भी वह लोकतामका कितना बड़ा हिमायती है। हमारा कितना छल-कपट और कितना अन्याय वह सहता है। हमारे अन्दर और बाहर प्रत्येक अणुमें वह व्याप्त है फिर भी उसके ही रखे हुये हम तुच्छ प्राणी उसके अस्तित्वमें धंका मुठते हैं और वह हमें बीसा करने देता है—बैसी मुसकी सहनशक्ति है। लेकिन उसने जिसे वह चाहे उसे अपना दर्शन देनेका अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा है। उसके हाथ पांव या कोमी बूझरी अिन्द्रियां नहीं हैं किन्तु जिसे वह अपना दर्शन देना चाहे वह मनुष्य उसे देख सकता है।

हरिजन १४-११-३६, पृ० ३१६

पूख शास्त्रीय दृष्टिसे दुनियामें हम जो मलामी और बुरामी देखते हैं उन दोनोंकी जड़में भीष्मर ही है। डॉक्टरका चाकू और कातिलका छुरा दोनों वही शरणावा है। परन्तु जिसके भावबोध मानवकी दृष्टिसे तो मलामी और बुरामी अेक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न और भेद न जाने वाली वस्तुमें हैं। वे प्रकाश और अंधकारकी बुदा और घेतानकी प्रतीक हैं।

हरिजन २०-२-३७ पृ० ९

प्रकृतिके नियम अटल हैं अपरिवर्तनीय हैं और प्रकृतिके नियमोंके भंग या अवरोधके अर्थमें कोमी शमत्कार नहीं होता। परन्तु हम तुच्छ प्राणी ठहरे। हम तरह तरहकी कल्पनायें करते हैं और अपनी सीमाओंको भीष्मर पर थोपते हैं।

हरिजन १७-४-१७, पृ० ८७

मेरी दृष्टिमें भीष्मर सत्य और प्रेम है भीष्मर नीति और सवाचार है भीष्मर अमम है। भीष्मर प्रकाश और जीवनका स्रोत है, फिर भी मिन सबसे ऊपर और परे है। भीष्मर अन्तरात्मा है। वह नास्तिककी नास्तिकता भी है क्योंकि अपने निस्वीम प्रेमके कारण वह मुस भी रहने

कहना काफी है कि बिना छोड़ते ये प्रयोग किये हैं जे जानते हैं कि हरमेकका अन्तरात्माकी आवाज सुननेका बाधा करना खूबिष्ठ नहीं है। लेकिन आजकल हरमेक आदमी यम-नियमकी कोखी भी ठाण्ठीम सिमे बिना अपने अन्तःकरणकी आवाजके अधिकारका दावा करता है। इसके फलस्वरूप ससारको जितना असत्य प्रदान किया जा रहा है कि वह हैरान है। जिससिमे म आपसे सच्ची नज़रताके साथ बिसना ही निवेदन कर सकता हूँ कि सत्यकी प्राप्ति जैसे किसी ब्यक्तिको नहीं हो सकती जिसमें नज़रताकी विपुल भावना न हो। अगर आप सत्यके महासागरके तल पर तैरना चाहते हैं तो आपको धूम्य बन जाना होगा। जिससे आगे मैं बिस मोहक मार्ग पर बिस समय नहीं बढ़ सकूँगा।

यंग बिबिया, ११-१२-३१, पृ० ४२७-२८

परमेश्वरकी ब्याख्यायें अनगिनत हैं क्योंकि अुसकी विभूतियाँ भी अनगिनत हैं। ये विभूतियाँ मुझे आश्चर्यचकित करती हैं। अणभरके सिमे ये मुझे मुग्ध भी करती हैं। किन्तु मैं पुजारी तो सत्यरूपी परमेश्वरका ही हूँ। यह सत्य मुझे भिसा नहीं है, लेकिन मैं बिसका शोभक हूँ। बिस शोभके सिमे मैं अपनी प्रियसे प्रिय वस्तुका त्याग करनेको तैयार हूँ, और मुझे यह विश्वास है कि बिस शोभरूपी यज्ञमें बिस क्षरीरको भी होमनेकी मेरी तैयारी है और शक्ति है। लेकिन जब तक मैं बिस सत्यका साक्षात्कार न कर सँूँ तक तक मेरी अन्तरात्मा बिससे सत्य समझती है, अुस कात्यनिक सत्यको अपना आधार मानकर, अपना दीपस्वप्न समझकर, अुसके सहारे मैं अपना जीवन ब्यतीत करता हूँ।

यद्यपि यह मार्ग तसवारकी धार पर चलने जैसा है, तो भी मुझे यह सरलसे सरल लगा है। बिस मार्ग पर चलते हुये अपनी भयंकर मूर्खी भी मुझे नगण्य-सी लगी है, क्योंकि वैसी भूखें करने पर भी मैं बध गया हूँ और अपनी समझके अनुसार आगे बढ़ा हूँ। दूर-दूरसे विपुल सत्यकी — भीश्वरकी — शांकी भी मैं कर रहा हूँ। मेरा यह विश्वास दिन-प्रति-दिन बढ़ता जाता है कि अेक सत्य ही है, अुसके सिवा दूसरा कुछ भी बिस जगतमें नहीं है।

साथ ही, मैं यह भी अधिकाधिक मानने लगा हूँ कि जितना कुछ मेरे लिये सम्भव है, उतना श्रेष्ठ बालकके लिये भी सम्भव है और जिसके लिये मेरे पास सबल कारण हैं। सत्यकी घोषके साधन जितने कठिन हैं, उतने ही सरल भी हैं। वे अभिमानीको असम्भव मालूम होंगे और श्रेष्ठ निर्दोष बालकको विलकुल सम्भव लगेंगे। सत्यके घोषकको रजकणसे भी नीचे रूढ़ना पड़ता है। सारा ससार रजकणोंको कुचलता है। पर सत्यका पुजारी तो जब तक जितना अल्प नहीं समझता कि रजकण भी उसे कुचल सकें, सब तक मुझके लिये स्वतन्त्र सत्यकी शांति भी दुर्लभ है।

मेरे समान अनेकोंका क्षय चाहे हो पर सत्यकी जय हो।

आत्मकथाकी प्रस्तावना पृ० ८-९ १९५७

२१

श्रीश्वरमें मेरी निष्ठा

मुझे जितना विश्वास जिस भावका है कि आप और मैं जिस कमरेमें बैठे हैं, उससे कहीं उभावा विश्वास श्रीश्वरके अस्तित्वका है। मैं यह भी कह सकता हूँ कि मैं हवा और पानीके बिना रह सकता हूँ, लेकिन श्रीश्वरके बिना नहीं रह सकता। आप मेरी आँखें निकाल लें, परन्तु मुझसे मैं मरूँगा नहीं, मेरी नाक काट लीजिये, मुझसे भी मैं नहीं मरूँगा। लेकिन आप श्रीश्वरमें मेरा विश्वास मिटा लीजिये तो मैं मर जाऊँगा—मेरा प्राण तो जायगा। आप जिसे अश्विश्वास कह सकते हैं, परन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि यह अश्विश्वास मेरा अदृष्ट सहारा है। अश्विश्वासमें अतरे या डरका कारण होने पर मैं रामका नाम लेता था, उस समय मुझे जो बल रामनामसे मिलता था, वही अब जिस विश्वाससे मिलता है।

यंत्रकी तरह बन जाना सबसे कठिन होता है। फिर भी किसीको दृढ बनना हो, तो पूर्णताकी विश्वा रक्षनेवालेको ठीक वैसा ही बनना होगा। यत्र और मनुष्यमें बड़ा भारी भेद यह है कि यंत्र जब है और मनुष्य पूरी तरह चेतन है और खुद महान शिल्पकारके हाथमें जान-बूझकर यत्र बनता है। श्रीकृष्ण तो साफ शब्दोंमें कहते हैं कि सब प्राणी यंत्रके पुर्जोंकी तरह भीस्वरके चलाये चलते हैं।

बापूके पत्र मीराके नाम पृ० २४७ १९५१

मैं जिस अत्यन्त कठोर स्वामीका बापी सताब्दीसे अधिक स्वेच्छ-प्रेरित दास रहा हूँ। जैसे जैसे समय बीतता गया है वैसे वैसे खुदकी आबाध मुझे अधिकाधिक स्पष्ट सुनायी पड़ती गयी है। मेरी अत्यन्त अंधकारपूर्ण शक्तियोंमें भी खुसने कमी मेरा साथ नहीं छोड़ा। खुसने अकसर स्वयं मुझसे मेरी रक्षा की है और मेरे पास जरा भी स्वामीमत्ता नहीं रहने दी। मैंने खुसके प्रति जितना अधिक समर्पण किया भुतना ही अधिक आनंद मुझे प्राप्त हुआ है।

हरिजन ६-५-६३, पृ० ४

भीस्वर हमारे साथ है और वह हमारी संमाल जिस तरह करता है मानो खुसे और किसीकी चिन्ता करनी ही नहीं है। यह कैसे होता है तो मैं नहीं जानता। यह जरूर जानता हूँ कि वैसा निश्चित रूपसे होता ही है। जिनमें यह शक्य है खुसके कर्णोंसे सारी चिन्ताओंका भार खुठ जाता है।

बापूके पत्र मीराके नाम, पृ० २७३-७४, १९५१

हारसे मेरा दिम नहीं टूट सकता। जब मुझे दुःख ही कर सकती है। मैं जानता हूँ कि भीस्वर मुझे रास्ता दिखायेगा।

यंग मित्रिया ३-७-१४ पृ० २१८

जैक क्षण भी वैसा नहीं जाता जब मुझे यह महसूस न होता हो कि भयवान साक्षीकी तरह सामने मौजूब है और खुसकी आँसुसे

कोभी चीज बच नहीं सकती। जिस सर्वदा वर्तमान साक्षीके साथ मैं सतत सौ सगाये रहनेकी कोशिश करता हूँ।

मेरे जीवनमें कोभी परल भी वैसे याद नहीं आता जब मुझे यह महसूस हुआ हो कि बीश्वरने मेरा साथ छोड़ दिया है।

हरिजन २४-१२-३८ पृ० ३९५

अगर मुझे अपने भीतर बीश्वरके अस्तित्वका भान न हो तो मैं रोझ अितना दुःख और निराश्व देखता हूँ कि मैं पागल बन जाऊँ और मुझे हुगलीकी शरण लेना पड़े।

मग बिडिया ६-८-२५, पृ० २७२

जैसे-जैसे समय बीतता है वैसे-वैसे मैं रोम-रोममें अुसका सजीव अस्तित्व अनुभव करता हूँ। यह अनुभव न हो तो मैं पागल हो जाऊँ। मेरे मनकी शान्तिको भंग करनेवासी कितनी ही बातें होती हैं। कितनी ही घटनायें मँसी होती हैं जो बीश्वरके अस्तित्वका भान न हो तो मुझे अड़से हिला डालें। परन्तु वे हो जाती हैं और मुझ पर लगभग अुनका कोभी असर नहीं पड़ता।

भापूके पत्र मीराके नाम पृ० २७५ १९५१

मैं हर मामल प्राणीके सिधे यह संभव मानता हूँ कि वह अुस सुखद और अवर्णनीय स्थितिको प्राप्त कर सकता है जिसमें अुसे अपने भीतर बीश्वरके सिवा और किसी चीजका अस्तित्व महसूस ही न हो।

मग बिडिया १७-११-२१, पृ० ३९८

अन्तर्भाव

श्रीस्वरकी आवाज सुननेका मेरा बाबा कोभी क्या था नहीं है। दुर्भाग्यसे मुझे परिणामोंके सिवा यह बाबा साबित करनेका और कोभी तरीका मालूम नहीं है।

हरिश्चन्द्र, ६-५-१९३१, पृ० ४

पहला प्रश्न, जिसने बहुतांकी चक्करमें डाल दिया है श्रीस्वरकी आवाजके बारेमें है। यह क्या थी? मैंने क्या सुना? क्या मैंने किसी व्यक्तिको देखा? अगर नहीं तो वह आवाज मुझ तक कैसे पहुंची? ये ठीक सवाल हैं।

मेरे मित्र श्रीस्वरकी अन्तःकरणकी या सत्यकी आवाज या जिसे मैं अन्तर्भाव कहता हूँ—सब भेद ही वर्षके सूक्ष्म शब्द हैं। मैंने श्रीस्वरकी काभी आकृति नहीं देखी। अक्सकी मैंने कभी कोशिश नहीं की क्योंकि मैंने हमेशा श्रीस्वरकी निराकार माना है। मैंने जो आवाज सुनी वह दूरसे आ रही मालूम होती थी पर साथ ही बिचकुछ समीप भी आन पड़ती थी। यह आवाज भीसी अर्धदिग्भ थी जैसे कोभी मनुष्य प्रत्यक्ष हमसे कुछ कह रहा हो। मुझे किसी तरह टासा नहीं जा सकता था। जिस समय मैंने मुझे सुना, मैं कोभी सपना नहीं देख रहा था। मैं बिचकुछ आश्चर्य था। आवाज सुननेके पहले मेरे हृदयमें सारी कल्पन चल रहा था। भेकामेक यह आवाज सुननेमें आयी। मैंने मुझे ध्यानसे सुना। मुझे निश्चय हो गया कि यह अंतरात्माकी ही आवाज है और मेरा ब्याकुरुष चित्त घातः हो गया। मैंने निश्चय कर लिया अनशनका दिन और अक्षय्य के आरम्भका समय ठग हो गया। मेरा हृदय अस्माससे भर गया। यह सब रातके ११ और १२ के बीचमें हुआ। मेरा मन ताजा हो गया और मुझे बारेमें मैं यह टिप्पणी लिखने लगा जो कि पाठकोंने बेली ही होगी।

क्या मैं जिस बातका और कोभी प्रमाण दे सकता हूँ कि यह अन्तर्भावकी आवाज ही थी और मेरे मुत्तप्य मस्तिष्ककी कोभी कल्पना-तरंग नहीं थी? जो विस्वाय नहीं करता जैसे संकाशीछके छिन्ने मेरे पास

और कोसी प्रमाण नहीं है। खुसकी भिच्छा हो तो वह कह सकता है कि यह सब भ्रम है और मैं आत्म-बंधनाका शिकार हुआ हूँ। मुमकिन है जैसा ही हुआ हो। मैं खुसके विरुद्ध कोसी प्रमाण नहीं दे सकता। लेकिन यह मैं अवश्य कह सकता हूँ कि मेरे शिकाफ सारी बुनिया अकमतसे अमिप्राय वे तो भी मुझे जिस विश्वाससे नहीं हटा सकती कि मैंने जो आवाज सुनी वह श्रीस्वरकी ही आवाज थी।

लेकिन कुछ लोग तो जैसा मानते हैं कि श्रीस्वर स्वयं हमारी कल्पनाकी अप्रभ है। अगर यह विचार मान लिया जाय तब तो कुछ भी सत्य नहीं है, सब-कुछ हमारी कल्पनाकी ही अप्रभ है। मगर तब भी जब तक मेरे अपर मेरी कल्पनाकी सत्ता है तब तक तो मैं खुसके अपीन रहकर ही अप्वहार कर सकता हूँ। अत्यन्त वास्तविक वस्तुओं भी सापेक्ष-रूपमें ही वास्तविक हैं। मेरे लिये तो मैंने जो आवाज सुनी वह मेरी हस्तैसे भी ज्यादा वास्तविक थी। खुसने मुझे कभी भोजा नहीं दिया है और दूसरोंका भी यही अनुभव है।

और जिस आवाजको जो जाहे सुन सकता है। वह हरभेकके अन्दर है। लेकिन दूसरी चीजोंकी तरह खुसके लिये भी निश्चित पूब-तैयारीकी आवश्यकता है।

हरिजन ८-७-३३ पृ० ४

जिस क्षण मैं अपने अन्दर ध्वनित होनेवाली भगवानकी जिस शान्त आवाजको—अपने अमृतनाद को वजा दूंगा खुसी क्षणसे मेरी अप योगिता मिट जायगी।

रंग अिडिया, ३-१२-२५ पृ० ४२२

जहां तक मुझे मासूम है किसीने जिस बात पर शंका नहीं की है कि अमृतनाद कुछ लोगोंको सुनायी पड़ सकता है। और यदि अमृतनादके नाम पर बोझनेका किसी भेक भी अप्विस्तका बाबा सच्चा ठहरे तो जिसमें जगतका मान ही है। यह दावा बहुतसे करेंगे किन्तु वे सब खुसे सत्य सिद्ध नहीं कर सकेंगे। लेकिन झूठा दावा करनेवालोंको रोझनेके लिये खुस दावेको दबाया नहीं जा सकता और दबाना नहीं चाहिये। अमृतनादका बाबा यदि कभी लोग सचमुच कर सकें तो

मिसमें कोखी आपत्ति नहीं है। लेकिन दुर्भाग्यवश दम्भका कोखी बिसाज नहीं है। बहुतसे लोग सद्गुणोंका डोंग और दिखावा कर सकते हैं, बिसलिसे मुन्हें दबाकर रखना ठीक नहीं हो सकता। अन्तर्नादके नाम पर बोझनेका दावा करनेवाले लोग सारी दुनियामें हमेशा रहे हैं। लेकिन मुनकी स्वल्पकालिक प्रवृत्तियोंसे दुनियाका कोखी मुकसान नहीं हुआ है। कोखी मनुष्य अन्तर्नाद सुन सके, मुसके पहले मुसे संबी और कठोर साधना करनी पड़ती है। और जो चीज सुनायी पड़ती है वह सचमुच अन्तर्नाद ही होती है तब उसे पहचाननेमें मूछ हो ही नहीं सकती। कोखी दुनियाको चिरकाल तक भोसा नहीं दे सकता। बिसलिसे मेरे बीसा अल्प मनुष्य अपनी प्रामाणिक बात कहनेमें संकोष नहीं करता और जब उसे विश्वासपूर्वक समता है कि मुसने अन्तर्नाद सुना है तब उसके नाम पर बोझनेकी हिम्मत करता है, बिस कारणसे दुनियामें अघाघुभी भवनेका कोखी मय नहीं है।

हरिजन १८-३-३३, पृ० ८

मनुष्य भूल करनेवाला प्राणी है। वह कभी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि जो कुछ वह करता है सब ठीक ही है। बिसे वह अपनी प्रार्थनाका उत्तर समझ सकता है वह मुसके अहंकारकी प्रतिध्वनि भी हो सकती है। अचूक पत्रप्रवर्तनके लिसे मनुष्यका हृदय पूरी तरह पबिब होना चाहिये जो सुरामीकी बात सोच ही न सकता हो। मैं बीसा कोखी दावा नहीं कर सकता। मैं तो भूसे करनेवाला पर साथ ही सबर्ष और प्रयत्न करनेवाला एक अपूर्ण जादमी हूँ।

यंग लिब्रिया २५-९-२४ पृ० ३१३

चूँकि मैंने आत्मसुद्धि प्राप्त करनेके लिसे अचक प्रयत्न किया है, बिसलिसे मुझमें अन्तर्नादको ठीक ठीक और साफ साफ सुननेकी घोड़ीनी पाकि या पबी है।

वि अपिक फास्ट से०- प्यारेलास पृ० ३४ १९११

मेरा बूझ विश्वास है कि वह हमें रोज जगाता है परंतु हम अंतर्नादके प्रति अपने कान बन्द कर लेते हैं।

यंग लिब्रिया, २५-५-२१ पृ० १९२

२३

प्रेमधर्म

यहाँ प्रेम है यहाँ भीश्वर भी है।

सत्याग्रह विन साधुष भफ्रीका पृष्ठ ३६० १९५०

अहिंसा अस्यन्त अंधी कोटिका सक्रिय बल है। वह आत्मबल अपवा हमारे भीतर रहनेवाला भीश्वरका बल है। हम अहिंसाकी साधना बितनी अधिक कर लेंगे अतने ही अधिक भीश्वरके निकट पहुँच पायेंगे।

हरिजन १२-११-३८, पृ० ३२६

वैज्ञानिक हमें बताते हैं कि हमारी यह पृथ्वी विन परमाणुअसि बनी है अन्में अन्में अके-दूसरेके साथ बांध रखनेवाली शक्ति न हो तो यह धूर धूर हा जाय और हमारा अस्तित्व मिट जाय। यह शक्ति जिस तरह एक पदार्थमें है असी तरह सारे चेतन प्राणियोंमें भी होनी चाहिये। चेतन प्राणियोंको अके-दूसरेसे बांध रखनेवाली अन्में जोड़ने और अके करनेवाली जिस शक्तिना नाम है—प्रेम। असे हम पिता पुत्रमें भावी-बहनमें और मित्र-मित्रमें देखते हैं। परन्तु हमें प्राणिमात्रमें अुसका अुपयोग करना सीखना है और अुसके अुपयोगमें ही भीश्वरका हमारा ज्ञान समया हुआ है।

यग अिडिया ५-५-२० पृ० ७

गांधीजीने कहा मनुष्यका सर्वोच्च प्रयत्न भीश्वरकी प्राप्तिके लिये होना चाहिये। वह मनुष्यके हावासे बनये हुवे मन्विरों या मूर्तियों या पूजाके स्थानमें नहीं मिल सकता और न वह अत-अुपवासासे ही मिल सकता है। भीश्वर प्रेमके द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। वह प्रेम सांसारिक नहीं देवी होना चाहिये।

हरिजन २३-११-४७ पृ० ४२५

मेरा दावा है कि जब भी, यद्यपि समाज रचना अहिंसाकी सशान स्वीकृति पर आधारित नहीं है, सारी दुनियामें मानव-जातिका बान-मास भेद-दूसरेकी अप्रकट सम्मति पर ही कायम है। अगर बीसा न होता या कमसे कम आरमी और सबसे ज्यादा क्रूर आरमी ही बचे होते। मगर बात बीसी नहीं है। परिवार प्रेमके बंधनमें बंधे रहते हैं और यही बात कथित सम्य समाजमें राष्ट्र कहलानेवाले समूहोंकी है। अतना ही है कि वे अहिंसा-धर्मकी प्रभुताको स्वीकार नहीं करते, जिसलिये यह निष्कर्ष निकलता है कि मुन्होंने जिसकी विचार संभावनाओंका अनुसन्धान नहीं किया है। यह कहना गलत न होगा कि अब तक हमने निरी जड़तावस ही यह मान रखा है कि सम्पूर्ण अहिंसा केवल मुन्हीं षोबेसे लोगोंके लिये सम्भव है, जो अपरिग्रह और मुसके साथके दूसरे धर्मोंको ग्रहण करें। यह सही है कि निष्ठावान मन्त्र ही षोबका काम जारी रख सकते हैं और समय समय पर मनुष्य जीवनके भिन्न महान साम्प्रदायिक धर्मकी नयी नयी संभावनायें बताते रह सकते हैं। परंतु यदि यह सच्चा धर्म है तो वह सन्नके लिये कस्याणकारक होमा। हम जो अनेक असफलतायें देखते हैं, वे अुस धर्मकी नहीं परंतु मुसके अनुयायियोंकी हैं जिनमें से बहुतेसे यह भी नहीं जानते कि वे— मुनकी भिच्छा हो या न हो— भिन्न धर्मके अधीन हैं। जब बोयी माता अपने बालकके लिये मरती है तब वह अज्ञात रूपमें अुस धर्मका पासन करती है। मैं पिछले ५० वर्षसे यह प्रतिपादन कर रहा हूँ कि भिन्न धर्मको ज्ञानपूर्वक स्वीकार करना चाहिये और असफलताओंके बावजूद मुस्साह पूर्वक अुस पर अमल करना चाहिये। ५० वर्षके कार्यने अव्युत् परिणाम दिखाये हैं और मेरे विश्वासको बृद्ध किया है।

हरिजन, २२-२-४२ पृ० ४८

मैंने भिन्न पत्रमें अपने लेखोंमें यह कहा है कि स्त्री अहिंसाका अवतार है। अहिंसाका अर्थ है असीम प्रेम और असीम प्रेमका अर्थ है कष्ट सहनेकी असीम क्षमता। मनुष्यकी पत्नी स्त्रीके सिवा अधिकसे अधिक मात्रामें भिन्न क्षमताका परिचय कौन देता है? जब वह ९ महीने मुसे पेटमें रखकर अपने रक्तसे मुसका पासन करती है और भिन्नसे होनेवाले

कष्टमें धामन्द अनुभव करती है तब वह अपनी किसी क्षमताका परिचय देती है। प्रसव-पीड़ासे अधिक और कौनसा कष्ट हो सकता है? परंतु सुजनके आनन्दमें वह उस कष्टको भूल जाती है। और दिन-दिन अपने बच्चेको बढ़ता हुआ देखनेके लिये कौम कष्ट मुठाटा है? यह प्रेम स्त्री सारी मानव-जातिको क्यों न प्रदान करे? वह क्यों न भिसे मूल धाय कि वह पुष्टकी वासनाका साधन कमी थी या हो सकती है? क्यों ही वह असा करेगी क्यों ही मुझे पुष्टकी माताका गौरवदायी स्थान मिला जायगा और वह उसकी निर्माता और मूल मार्गदर्शक बन जायगी। यह उसीका काम है कि वह युद्ध-वर्जित सभारको जो शान्तिके अनुसूके लिये तड़प रहा है, शान्तिकी कला सिखाये।

हरिजन २४-२-४०, पृ० १३

२४

त्यागमयी सेवा द्वारा प्रगट होनेवाला प्रेम

(क) सेवा

श्रीस्वरकी प्राप्तिका एक ही अुपाय है हम उसे उसकी सृष्टिमें देखें और उसके साय अपनी भेकता सार्ने। यह सबकी सेवाके द्वारा ही हो सकता है। मैं समष्टिका ही एक अविभाज्य अंग हूँ और मानव-जातिसे अलग और कहीं मैं उसे नहीं पा सकता। मेरे वैशवासी मेरे निकटतम पड़ोसी है। वे भित्तने असहाय भित्तने साधनहीन और भित्तने अड़ हो गये हैं कि मुझे उनकी सेवामें धारी सक्ति सगा देनी चाहिये। अगर मुझे यह भरोसा हो धाय कि श्रीस्वर मुझे हिमास्यकी किसी गुफामें मिलेगा तो मैं सुरत वहाँके लिये पक्ष पड़ूगा। परंतु मैं जानता हूँ कि मनुष्य-समाजके सिवा वह और कहीं नहीं मिल सकता।

हरिजन २९-८-३६, पृ० २२६

श्रीस्वरने मेरा भाग्य भारतके लोगोंके साय जोड़ दिया है। यत-यदि मैं अनुकी सेवा न करूँ तो अपने विधासासे श्रोह करूँगा। और

अगर मैं खुनकी सेवा करना न जानूँ, तो मनुष्य-जातिकी सेवा करना मुझे कभी न आयेगा।

यंग विडिया १८-६-२५, पृ० २११

और चूंकि मैं जानता हूँ कि बीरबर बड़ों और बरवानोंकी अपेक्षा दलितों और दुर्बलोंमें ही अधिक पाया जाता है विसिद्धि मैं वित्तके बराबर होनेकी कोशिश कर रहा हूँ। खुनकी सेवा किये बिना यह सम्भव नहीं है। विसिद्धि वसिष्ठ वर्गोंकी सेवाके लिये मेरी वित्तनी ब्याकुलता है। और चूंकि राजनीतिमें पढ़े बिना मैं यह सेवा नहीं कर सकता, विसिद्धि मैं राजनीतिमें पढ़ा हूँ।

यंग विडिया ११-९-२४, पृ० २९८

अगर मुझे भारतके छोटेसे छोटे लोगोंके — और यदि मुझमें ताकत हो तो दुनियाके छोटेसे छोटे लोगोंके — दुःखके साथ अकस्म होना है तो जो बालक मेरी बैसभासमें हों उनके पापोंके साथ मुझे अकस्म बनना चाहिये, मुझे आशा है कि अत्यन्त तन्नतापूर्वक ऐसा करते हुये मुझे किसी दिन बीरबरके — सत्यके — प्रत्यक्ष दर्शन हो जायेंगे।

यंग विडिया ३-१२-२५, पृ० ४२२

मैं आपको अकेले सिद्ध कन्वच पू। जब कभी आपको शंका हो या जब स्वार्थ आप पर छा जाय तब आप यह अनुपाय आजमायिये जो गरीबसे गरीब और असहायसे असहाय मनुष्य आपने देखा है। खुसका बेहतर याद करके अपने मनमें पूछिये कि आप जो कदम मुठानेका विचार कर रहे हैं क्या वह खुस आदमीके किसी कामका होगा? क्या खुससे खुसे कोखी लाभ हो सकेगा? क्या विस कदमसे खुसे अपने जीवन और भाग्य पर फिरसे नियंत्रण प्राप्त हो सकेगा? दूसरे शब्दोंमें क्या विससे हमारे खुसे और आध्यात्मिक भोजनसं बन्धित राजा देसवासिधियोंको स्वराज्य मिल जायगा?

फिर आप देखेंगे कि आपकी शंकायें और आपका स्वार्थ काफूर हो जायगा।

विस बाबू बापू, ले० - भार के० प्रमु, पृ० ४८, १९५४

महात्माजीसे बातें करते समय एक नौजवान अमरीकन मिशनरीने मुझसे पूछा 'भाप कौनसा धर्म मानते हैं और भारतके नावी धर्मका क्या स्वरूप होगा?'

मुझका उत्तर बहुत संक्षिप्त था। अपने कमरेके दो बीमारोंकी तरफ विशारा करते हुये वे बोले 'सेवा करना मेरा धर्म है। मैं आगेकी चिन्ता नहीं करता।'

विस वाच्य वापू, छे० - मार० के० प्रमु, पृ० ४, १९५४

असहायोंकी सेवा ही धर्म है। भीस्वर हमारे सामने असहायों और दुस्त्रियोंके रूपमें प्रगट होता है।

वैशक मीने नामधारी धर्मोंका पालन करनेसे कलामीको श्रेष्ठ समझा है। परंतु जिसका यह मतलब नहीं कि ये धर्म छोड़ दिये जाय। मेरा अग्रिम विश्वास ही है कि जो धर्म सब धर्मोंके अनुयायियोंको पालन करना है वह मुन धर्मोंसे परे है। और जिसीकिये मैं कहता हूँ कि एक ब्राह्मण ज्यादा अच्छा ब्राह्मण है, मुसलमान ज्यादा अच्छा मुसलमान है और वैष्णव ज्यादा अच्छा वैष्णव है, यदि वह सेवाकी भावनासे चरता चलाता है।

अगर मेरे लिये सेटे सेटे चरता चलाना समझ हो और मुझे लगे कि जिससे जीस्वर पर मेरा विश्वास होनेमें मदद मिलेगी तो मैं जरूर मात्ता छोडकर चरता चलाने लगूंगा। चरता चलानेकी शक्ति मुझमें हो और मुझे यह अनुभव करना हो कि मात्ता फेरू या चरता चलाऊँ तो जब तक देशमें गरीबी और भूख मुह फाड़े लगी हैं तब तक मेरा निर्णय निश्चित रूपसे चरत्के पक्षमें होगा और खुसीकी मैं अपनी मात्ता बना लूंगा। मैं जैसे समयके अतिचारमें हूँ जब रामनाम जपना नी एक बाधा बन जायगा। जब मुझे अनुभव हो जायगा कि राम वाणीसे भी परे है, तब नाम जपनेकी मुझे जरूरत नहीं होगी। चरता मात्ता और रामनाम सब मेरे लिये एक ही हैं। वे एक ही बुद्देश्य पूरा करते हैं। वे मुझे सेवाधर्म सिखाते हैं। मैं सेवाधर्मका पालन किये बिना अहिंसाका पालन नहीं कर सकता और अहिंसा-

धर्मका पालन किये बिना मैं सत्यको प्राप्त नहीं कर सकता। और सत्यके सिवा दूसरा कोई धर्म ही नहीं है।

यंग विडिया, १४-८-२४, पृ० २६७

हाथ-कटाखी किसी मीठूवा मुद्योगको मिटानेके सिधे खुससे स्वर्ण नहीं करती और न मैसा करनेका खुसका कोखी बिरादा है। खुसका मुखेख यह नहीं कि किसी भी सद्यक्त मनुष्यको जो अपनी जीविका देनेवाला कोखी दूसरा मुद्योग बूँड़ सकता है, खुसके खुस कामसे हटाया जाय। कटाखीके पक्षमें बेकमान्न वाबा यही किया थाता है कि भारतके सामने जो सबसे बड़ी समस्या है खुसका बेकमान्न तात्कालिक ब्यावहारिक और स्थायी हल कटाखी ही है। यह समस्या है भारतकी अधिकांश जाबावीकी साखभरमें लगभग छह महीनेकी। अधिवार्य बेकारी। बिछ बेकारीका कारण यह है कि खेतीका कोखी अध्या सहायक पंथा नहीं है और बिछका परिणाम यह है कि बाम जनताको सदा मूषसे पीडित रहता पड़ता है।

यंग विडिया २१-१०-२६ पृ० ३६८

जब तक बेक भी समर्ब पुष्य या स्त्री काम या भोजनके बिना रहता है, तब तक हमें आराम लेने या पेटभर खानेमें धर्म आनी चाहिये।

यंग विडिया, ५-२-२५, पृ० ४८

बिचल्लिमे कल्पना कीजिये कि ३० करोड़ बेकाराका होना बेकारीके कारण जिन सासों-करोड़ों कोषोंका रोज अपनी मानवतास गिरना खुनका स्वाभिमान नष्ट हो जाता और बीद्वरमें थडा न रहता कितनी बड़ी बिपत्ति है? जिन करोड़ों मूषोंके सामने जिनकी भाँखोंमें ज्योति नहीं है और जिनका बेकमान्न बीद्वर रोटी है। बीद्वरका सन्देश रबना बैसा ही है। बीसा कि सामने बैठे खुस कुत्तेके आगे बीद्वरका संदेश रबना है। मैं खुनके सामने बीद्वरका सन्देश पवित्र कामका सन्देश ले जावर ही रख सकता हूँ। हम यहाँ बड़िया नास्ता करके और खुससे भी बड़िया भोजनकी आथा रखकर मजेसे बीद्वरकी चर्चा कर सकते हैं,

लेकिन बिन करोड़ों आवसियोंको दो जून खानेको भी नहीं मिलता अतसे मैं श्रीश्वरकी क्या बात करूँ? अतः तो श्रीश्वरके दर्शन दास-रोटीके रूपमें ही हो सकते हैं।

यग भिडिया १५-१०-३१, पृ० ३१०

गरीबसे गरीब लोगोंकी सेवा किये बिना और अतः साध अकेले हुअे बिना आत्म-साक्षात्कारको मैं असम्भव मानता हूँ।

यग भिडिया २१-१०-२६ पृ० ३६४

(ख) त्याग

मानव-शरीर सेवाके लिये ही बनाया गया है भोगके लिये हरगिज नहीं। सुखी जीवनका रहस्य त्यागमें है। त्याग ही जीवन है। भोग मृत्यु है। जिसलिये हरअेकका हक है और अुसकी विच्छा होनी चाहिये कि वह निष्काम भावसे सेवा करते हुअे सदा सौ वर्ष किये। अैसा जीवन पूरी तरह और अेकमात्र सेवाके लिये ही समर्पित होना चाहिये।

अैसी सेवाके सातिर किया हुआ त्याग अवर्णनीय आनन्द देता है। अुसे कोअी छीम नहीं सकता क्योंकि अिस अमृतका स्रोत भीतर होता है। वही जीवनको पोषण देता है। अुसमें अिन्ता या अधीरताकी गुनाअिस नहीं हो सकती। अिस आनन्दके बिना अीर्ष जीवन असम्भव है, और संभव भी हो तो अुसका कोअी भुस्य नहीं है।

हरिजन २४-२-४६, पृ० १९

तो यह शरीर हमें जिसलिये दिया गया है कि हम अुसके द्वारा सारी सृष्टिकी सेवा कर सकें।

और जिस तरह कोअी क्रीतवास अपने मासिकसे अन्न-वस्त्र आदि पाता है अुसी तरह अिस विद्वका स्वामी दमापूर्वक हमें जो कुछ वे दे रही हैं हमें कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करना चाहिये। हमें जो कुछ मिलता है अुसे सधमुअ अुसकी दयाका दान ही कहना चाहिये क्योंकि हम तो अुसके अुपी हैं और अिस तरह अुनी मनुष्य अपना कर्तव्य करता है तो अुसे अपने कर्तव्य-पालनका कोअी बदला पानेका अधिकार नहीं

होता, खुसी तरह हमें भी अपने कर्तव्य-पालनका बरसा पानेका अधिकार नहीं है। जिससिद्धे यदि हमें वह न मिले तो अपने स्वामीको हम दोष नहीं दे सकते। हमारा शरीर खुसका है वह अपनी दिव्यछाके अनुसार चाहे खुसका पालन करे चाहे खुसे फेंक दे। यह कौमी भैसी बात नहीं जिसकी शिकायत की जाय या जिसे दयनीय माना जाय भुसटे यदि हम स्रष्टाके विधानमें अपनी भुचित जगहको ठीक ठीक समझ लें तो हम महसूस करेंगे कि यह न केवल भैक स्वामाविक बल्कि मुसल्य और अभीष्ट स्थिति भी है। असम्भत्ता, यदि हम जिस शर्बोच्च आमन्दका अनुभव करना चाहते हा तो हममें वैसी प्रबल मत्ता अवश्य होना चाहिये। यह आदेश सभी धर्मोंमें दिमा गया है कि अपने विषयमें बिरकुल भी चिन्ता मत करो सारी चिन्ता भीद्वर पर छोड़ दो।”

जिस घातसे किसीको डरनेकी आवश्यकता नहीं। जिस मनुष्यमे अपने-आपको सेवाकार्यमें हृदयसे समर्पित कर दिया है वह खुसकी आवश्यकता दिन प्रतिदिन अभिकाधिक अनुभव करेगा और खुसकी मत्ता निरन्तर समृद्ध होगी। जो मनुष्य अपने स्वार्थका त्याग करनेके सिद्धे तैयार नहीं है और अपने जन्मकी मर्यादायें स्वीकार करनेके सिद्धे तैयार नहीं है वह सेवाके मार्ग पर नहीं चल सकता। जाने-अनजाने हममें से हरभैक कुछ-न-कुछ सेवा करता ही है। अगर हम यह सेवा समझ वृक्षकर करनेकी आवत डाल लें तो सेवा करनेकी हमारी दिव्यता बलवान बनेगी और वह न केवल हमारे सिद्धे बल्कि सारी दुनियाके सिद्धे मुसल्यका निर्माण करेगी।

*

जिसक सिद्धा न सिर्फ सज्जनोका बल्कि हम सब सांगोंको अपने समस्त साधन मानव-जातिकी सेवाके सिद्धे समर्पित कर देना चाहिये। और यदि विषय भैसा ही हा तो जाहिर है कि भोगच्छाको जीवनमें स्थान नहीं हो सकता और खुसकी अपह त्यागको मिलनी चाहिये। यह त्यागका कर्तव्य ही मनुष्य-जातिका पशु-जगतसे अलग करता है और खुसे वेच्छता प्रदान करता है।

कुछ लोग आरोप करते हैं कि जीवनकी जिस कल्पनामें आनन्द और कलाको कोयी स्थान नहीं रहता और यह गृहस्थका विचार नहीं करती। लेकिन त्यागका हमारा अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य दुनियाको छोड़ दे और जंगलमें जाकर रहे। हम तो अितना ही कहते हैं कि जीवनकी हमारी सारी प्रवृत्तियाँ त्यागकी भावनासे प्रेरित होनी चाहिये। वैसे तो कोयी नहीं कहेगा कि यदि गृहस्थ व्यक्ति जीवनको कर्तव्य रूप समझे तो वह गृहस्थ नहीं रहता। जो व्यापारी अपना काम यज्ञकी भावनासे करता है उसके हाथोंसे करोड़ों रुपयोंका छेन-दन होगा किन्तु यदि वह यज्ञके कानूनको पारुता है तो वह अपनी योग्यताओंका सुपयोग सेवाके लिये ही करेगा। जिसलिये वह न तो किसीको ठगेगा और न अनुचित लाभ झूठानेके लिये सट्टा करेगा। वह साधा जीवन बितायेगा किसी सजीव प्राणीको किसी भी प्रकारकी क्षति नहीं पहुंचायेगा और खुद छासाका नुकसान सह लेगा लेकिन किसी दूसरेका हानि नहीं पहुंचायेगा। कोयी वैसे खयाल न करे जिस किस्मका व्यापारी केवल मेरी कल्पनाकी ही दुनियामें है। दुनियाके सौभाग्यसे वैसे व्यापारी परिश्रममें भी है और पूर्वमें भी है। यह सच है कि वैसे व्यापारी श्रुगभियों पर गिने जा सकते हैं। लेकिन यदि जिस आदर्शको सही सिद्ध करनेवाला ब्रेक भी खुदाहरण मिल जाता है तो फिर उसे कास्पनिक नहीं कहा जा सकता। जिसमें सदेह नहीं कि यज्ञकी भावनासे कर्म करनेवाले ये लोग अपनी जीविषा अपने कर्मसे ही प्राप्त करते हैं। लेकिन जीविका मुनका अहोहस्य नहीं होता मुनकी प्रवृत्तिका मात्र आनुपंगिक फल होता है। यज्ञमय जीवन कलाका शिक्षर है और वह सच्चे आनन्दसे परिपूर्ण होता है।

जो मनुष्य सेवाकी विच्छा रखता है वह अपनी सुविधाआकी तनिक भी चिन्ता नहीं करेगा। मुनका विचार वह भगवान पर छोड़ देता है वह चाहे तो मुनकी व्यवस्था करे और न चाहे तो न करे। जिसलिये वह उसे मिलनेवाली सारी वस्तुओंका संग्रह करके अपना बोझ नहीं बढ़ायेगा और अन्तमें से कवक झुठनी ही वस्तुओं लेया जिनकी उसे अतिवार्य आवश्यकता है और बाकीको छोड़ देया। असुविधाकी स्थितिमें भी वह शान्त क्रोधरहित और प्रसन्न रहेगा। जिस तरह

सदाचारका पुरस्कार सदाचार ही है। वृत्ती तरह सेवकके सिद्धे खुसकी सेवा ही खुसका पुरस्कार होगी और खुसमें ही वह सतोप मानेगा।

दूसरोंकी स्वेच्छापूर्वक की गयी सेवामें सेवकको अपनी सर्वोच्च क्षमताका व्युपयोग करना चाहिये और अपनी सेवाकी तुलनामें दूसरोंकी सेवाको तरजीह देना चाहिये। सच ता यह है कि सच्चा भवत मानव-आत्मिकी सेवामें अपनेको पूरा-नूत समर्पित कर दता है।

फॉर्म यरवडा मन्दिर, पृ० ५४-६०, १९४५

यस कभी प्रकारसे हो सकते हैं। धम-यज्ञ या मेहनत करके पाना यसका ही भेक प्रकार है। अगर सब लोग अपनी रोटीके सिद्धे मेहनत करें और खुससे अथिब कुछ न चाहें तो सबको काफी भोजन और काफी अवकाश मिल जाये। फिर न तो अत्यधिक आवादीकी चिन्ताहट होगी और न आजकलकी तरह रोग और दुःख होगा। जिस प्रकारका परिश्रम खुससे खुससे दर्जेका यज्ञ होगा। भग बेदाक और बहुतसी बातें भी अपने शरीर या मनके द्वारा करेंगे, परतु वह सबकी मलाजीके सिद्धे किया गया प्रेमपूर्व परिश्रम होगा। खुस हास्तमें न कोभी क्षमीर होया, न कोभी गरीब, न कोभी भूखा होगा न नीचा, और न कोभी स्पृश्य या अस्पृश्य होगा।

यह भेक अप्राप्य भावर्ष ही सकता है। लेकिन जिस कारण हम खुसके सिद्धे प्रयत्न न करें और नहीं पाना चाहिये। जिस यज्ञका जो हमारे जीवनका धर्म है, हम सम्पूर्ण पासन चाहे न करें, लेकिन अगर हम अपने रोजके गुजारके सिद्धे ही पर्याप्त शरीर-श्रम करें तो खुससे भी खुस आवर्ष तक पहुंचनेमें काफी सहायता मिलेगी।

अगर हम भसा करें तो हमारी आवश्यकतायें बहुत कम हो जायंगी, हमारा भोजन सादा होगा। फिर तो हम जीनेके सिद्धे लायेंगे रामके सिद्धे नहीं जियेंगे। जिस किसीको जिस बातके ठीक होनेमें संका हो वह अपनी रोजीके सिद्धे पसीना बहाकर देल ले। अपनी मेहनतकी कमाजीमें खुसे कुछ और ही स्वाद मिलेगा खुसका स्वास्थ्य सुपर जायगा और खुसे मामूम हो जायगा कि बीसी अनेक चीजें जिनका वह मुपयोग करता रहा है खुसके सिद्धे सचमुच आवश्यक नहीं है।

तो क्या लोग बौद्धिक भ्रमसे अपना गुबारा न करें? नहीं, शरीरकी जरूरत शरीरसे ही पूरी होनी चाहिये। 'राजाकी चीज राजाको ही मिलनी चाहिये यह कहावत शायद यहां अच्छी चखू लागू होती है।

केवल मानसिक अर्थात् बौद्धिक भ्रम आरम्भके लिये है और वह स्वयं सन्तोपक्य है। अक्समें पारिवर्तिक मिलनेकी मिच्छा कदापि न करनी चाहिये। आदर्श स्थितिमें डॉक्टर, वकील और जैसे ही दूसरे लोग अपने लिये नहीं, केवल समाजके हितके लिये काम करेंगे। भ्रम द्वारा रोजी कमानेके धर्मका पालन करनेसे समाजकी रचनामें एक घातकान्ति हो जायगी। मनुष्यकी विजय जिस बातमें होगी कि जीवन-सधामके बजाय परस्पर सेवाकी स्पर्धा स्थापित हो। तब पशुधर्मके स्थान पर मानव-धर्म स्थापित हो जायगा।

हरिजन २९-६-३५, पृ० १५६

भारतमें लोगोंका एक बीसा बल पाया जाता है जिसे कमसे कम आवश्यकतायें रखनेमें आनन्द आता है। ये लोग अपने साथ थोड़ासा आटा और चुटकीभर नमक और मिर्च अंगोछेमें बांधकर निकल पड़ते हैं। कुर्से पानी सेनेके लिये खुलने पास ब्रेक लोटा और डोर होती है। मुहें और कुछ नहीं चाहिये। वे रोज बस आरह भील पैदल चल सेते हैं। अंगोछेमें ही आटा गूंध सेते हैं, यहाँ-वहाँसे थोड़ीसी सूखी टह्नियां जमा करके भाग बसा सेते हैं और अक्स पर अपनी बाटियां सेंक सेते हैं। स्वाद ज्ञायी जानेवाली चीजमें नहीं होता स्वाद अक्स भूखमें होता है जो भीमानदारीकी मेहनत और ममके सन्तोपसे लगती है। जैसे मनुष्यका साथी और मित्र श्रीश्वर है। और वह अपनेको किसी भी राजा या सम्राटसे ज्यादा शमीर समझता है। श्रीश्वर अक्सका मित्र नहीं होता जो मम ही मन दूसरोंके घनका छोग करते हैं। जिस अुदाहरणका सभी अनुकरण कर सकते हैं और खुद अवर्णनीय घान्ति और आनन्दका भुग भोग करते हुये दूसरोंको भी वह शान्ति और आनन्द प्रदान कर सकते हैं। जिसके विपरीत अगर धनकी छान्छा बनी रहे सो शोषणका आश्रय सेना पड़ेगा भये ही नाम अुसका कुछ भी रक्त लिया जाय। सब भी

करोड़ों लोग करोड़पति नहीं बन सकते। सच्चा सुख सन्तोष और श्रीस्वरके साक्षिधर्म ही है।

हरिजन २१-७-४६, पृ० २३२

मन्नताका संपूर्ण अर्थ तो शून्यता है। शून्यता मोलकी स्थिति है। मुमुक्षु अथवा सेवकके प्रत्येक कार्यमें मन्नता—अथवा निरभिमानता—न हो, तो वह मुमुक्षु नहीं है सेवक नहीं है। वह स्वार्थी है अहंकारी है।

आत्मकथा पृ० ३४४ १९५७

जब मनुष्य पर आत्म-सन्तोष छा जाता है तो अुसका विकास बंद हो जाता है और अिससिद्धे वह स्वतंत्रताके योग्य नहीं रह जाता है। परन्तु जो मनुष्य मन्नतापूर्वक और धार्मिक भावनासे बाढ़ासा त्याग करता है वह अुसकी अस्पताकी तुरंत अनुभव कर लेता है। अेक बार त्यागके मार्ग पर अग्रसर हुअे कि हमें अपनी स्वार्थ-परायणताकी मायाका पता लग जाता है और लगातार अधिकाधिक देनेकी भिच्छा अनुभव होने लगती है। और जब तक सम्पूर्ण आत्म-समर्पण नहीं हो जाता तब तक हमें संतोष नहीं होता।

यग बिडिया २९-९-२१ पृ० ३०६

जब तक हम शून्य नहीं बन जाते तब तक हम अपने भीतर रहनेवासी बुराअीका जीत नहीं सकते। जो अेकमात्र प्राप्त करन योग्य सच्ची आजादी है अुसकी कीमतके तौर पर श्रीस्वरके सम्पूर्ण आत्म-समर्पणसे कम कुछ नहीं चाहिये। और जब मनुष्य अिस तरह अपने आपको सो बेता है तो वह तुरंत अपनेको सभी प्राणियोंकी सेवामें तत्पर पाठा है। वही अुसका सुख और वही अुसका मनोरंजन बन जाती है। वह नया मनुष्य हो जाता है जो श्रीस्वरकी सृष्टिमें सभी प्राणियोंकी सेवामें अपनेको सपा देनेमें बनी धकटा नहीं।

यग बिडिया २०-१२-२८, पृ० ४२०

अध्यायके विरोधमें प्रेम

(क) द्वेषके विरुद्ध प्रेमधर्म

तत्कवारको फेंक देनेके बाद मेरे पास प्रेमके प्यालेके अलावा रह ही क्या जाता है जो मैं अपने विरोधियोंके सामने पेश कर सकता हूँ? यही प्याला पेश करके मैं मुझे अपने नजदीक छानेकी भाशा रखता हूँ।

यंग विडिया २-४-३१ पृ० ५४

अपने मित्रोंके प्रति मित्रभाव रखना आसान है। मगर जो अपनेको आपका शत्रु समझता है उसे मित्र बनाना सम्भवे धर्मका सार है।

हरिजन ११-५-४७, पृ० १४६

जो हमसे प्रेम रखते हैं खुन्हीसे प्रेम रखना अहिंसा नहीं है। अहिंसा तो तब है जब हम अपनेसे द्वेष रखनेवालोंसे भी प्रेम करें।

(ता० ३१-१२-३४ के अंक निजी पत्रसे)

विधायक रूपमें अहिंसाका अर्थ है अधिकसे अधिक प्रेम अधिकसे अधिक भुंदाकरता। अगर मैं अहिंसाको माननेवाला हूँ तो मुझे अपने शत्रुसँ प्रेम करना ही चाहिये। जो नियम मैं अपने बुरा करनेवाले पिता या पुत्र पर लागू करूँ, वही नियम मुझे खुस बुरा करनेवाले पर लागू करने चाहिये जो मेरा शत्रु है या पराया है।

स्पीचेर अेण्ड राइटिन्ग् ऑफ महारमा गांधी जी० अे० मन्सन
मद्रास पृ० ३४६ १९६३

मेरा निवेदन आपसे यह है कि आप अपने हृदय धुंढ करे और खुंदाकरते रहें। अपने हृदयका महासागरकी तरह विस्तार बनायिये।

दूसरोंके बाजी मत बनो नहीं तो सुन्हार भी भिन्दाफ हागा। यह

सर्वोच्च न्यायाधीश आपको फाँसी पर सटका सकता है, परन्तु वह आपको भीषित रहने देता है। आपके भीतर और आसपास मिठने घनु हैं परन्तु वह आपकी रक्षा करता है और आप पर दयावृष्टि रखता है।

यंग विडिया, १-१-'२५, पृ० ८

कमजोर कमी क्षमा नहीं कर सकते। क्षमा तो बलवानोंका गुण है।

यंग विडिया २-४-३१ पृ० ५९

सोग कहते हैं साधन तो आखिर साधन ही है। मैं कहूँगा 'आखिर तो साधन ही सब-कुछ है'। जैसे साधन वैसे साध्य। साधन और साध्यके बीच कोमी जुबाबीकी रीवार नहीं है। सब तो यह है कि विभाताने हमें साधनोंका नियंत्रण करनेकी ताकत तो वी है (वह भी बहुत सीमित) परन्तु साध्य पर हमारा कोबी नियंत्रण नहीं है। साधनोंके ठीक अनुपातमें ही साध्यकी प्राप्ति हागी। जिस नियममें किसी अपवादकी गुजाबिष नहीं है।

यंग विडिया १७-७-'२४ पृ० २३६

जिसलिये मैंने मुख्यतः साधनोंकी रक्षा और खुतके प्रगतिशील खुपयोगसे ही बास्ता रखा है। मैं जानता हूँ कि अगर हम खुतका ध्यान रख सकें तो ध्येयकी प्राप्ति निश्चित है। मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि ध्येयकी ओर हमारी प्रगति खुतनी ही होगी बिठनी हमारे साधनोंकी शुद्धता होगी।

यह मार्ग सम्बा शायद बहुत सम्बा मासूम हो परन्तु मुझे यकीन है कि यह सबसे छोटा है।

वि अमृतयात्रार पत्रिका, १७-९-'३३

आपको यह डर नहीं होना चाहिये कि सरयासहका तरीका कोबी धीमी और सम्बी प्रक्रिया है। संसारमें जिससे जस्टीका और कोबी मार्ग नहीं है क्योंकि जिसमें सफसटा निश्चित होती है।

धर्म विडिया ३०-४-२५, पृ० १५३

यह (प्रेम द्वारा अन्यायका प्रतिकार) बीसी ताकत है जिसका व्यक्ति और समाज दोनों उपयोग कर सकते हैं। अुसका प्रयोग बितनी सफलताके साथ भरेलू मामलोंमें किया जा सकता है, मुदनी ही सफलताके साथ राजनीतिक मामलोंमें भी किया जा सकता है। अुसकी सार्वत्रिक उपयुक्तता अुसके स्थायी और अजेय होनेका प्रत्यक्ष प्रमाण है। स्त्री पुरुष और बच्चे सभी अुसका उपयोग कर सकते हैं। यह कहना बिलकुल झूठ है कि यह शक्ति केवल कमजोरोंके द्वारा तभी तक भिस्तेमाल करनेकी है जब तक कि वे हिंसाका मुकाबला हिंसासे करनेमें समर्थ न हों। हिंसाके खिलाे और अिसखिलाे सब प्रकारके अन्याय और अत्याचारके खिलाे यह बल वैसा ही है वैसा अन्धकारके खिलाे प्रकाश।

यंग अिडिया, ३-११-२७ पृ० ३६९

अहिंसाके तरीकेका प्रमाण करते हुवे हमें यह विश्वास होना चाहिये कि हरखेक आदमी चाहे वह कितना ही गिरा हुआ हो मानवता पूर्ण और कुशल व्यवहारसे सुधार जा सकता है।

हरिजन २२-२-४२ पृ० ४९

किसी हत्यारे, चोर या डाकू तकको सजा देना मेरे अहिंसा-धर्मके विरुद्ध है।

यंग अिडिया २-४-३१ पृ० ५५

जब कोजी व्यक्ति अहिंसक होनेका दावा करता है तब अुससे यह आशा रखी जाती है कि अिसने अुसे हानि पहुंचाजी हो अुस पर वह क्रोध नहीं करेगा। वह अुसका बुरा नहीं चाहेगा वह अुसका भला चाहेगा, वह अुसे गालियां नहीं देगा वह अुसे कोजी शारीरिक चोट नहीं पहुंचायेगा। बुरा करनेवाला अुसे जो भी हानि पहुंचायेगा अुसे वह सहन कर लेगा। अिस प्रकार अहिंसाका अर्थ है सम्पूर्ण निष्पापता। सम्पूर्ण अहिंसाका अर्थ है सभी प्राणियोंके प्रति दुर्भावका पूरा अभाव। अिसखिलाे यह तो मनुष्यसे नीची धेपीके बीवों यहां तक कि विरैसे सर्पों और

हिंस्र पशुओं तकको गले छगाठी है। वे हमारी विमासकारी प्रवृत्तियोंके पोषणके लिये पैदा नहीं किये गये हैं। अगर हमें बिबाटाके मनका ज्ञान होता तो हमारी समझमें आ जाता कि सुसकी दृष्टिमें भिन जानवरोंका अचित्त स्थान क्या है। भिसलिये सक्रिय रूपमें अहिंसा सब प्राणियोंके प्रति सद्भाव है। वह शुद्ध प्रेम है। हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें वायिबकमें और कुराममें भी अहिंसाकी ही शिक्षा पायी है।

अहिंसा पूर्णावस्था है। किसी छद्मकी ओर सारी मानव-जाति, अनजाने ही सही परंतु स्वाभाविक रूपमें जा रही है। मनुष्यके हृदयमें जब द्वेषका छेद नहीं रहता जब वह निर्दोषताकी मूर्ति बन जाता है तब वह वेदता नहीं बन जाता। तब वह केवल सच्चा मनुष्य बनता है। आशकी बधामें तो हम कुछ अशोंमें मनुष्य है और कुछ अशोंमें पशु। अपने अज्ञान और अहंकारवश हम यह कहते हैं कि जब हम अहंकारका जबाब परस्परसे देते हैं और भिसके लिये आवश्यक कोषकी माथा अपनेमें पैदा कर लेते हैं तो हम सचमुच मनुष्य-जातिके हेतुको पूरा करते हैं। हम यह माननेका बहाना करते हैं कि प्रतिशोध हमारे जीवनका धर्म है, जब कि प्रत्येक धर्मशास्त्रमें हम देखते हैं कि प्रतिशोधको कहीं कर्तव्य नहीं माना गया उसे केवल दण्डव्य माना गया है। अनिर्धार्य सा संयम ही माना गया है। प्रतिशोध असा भोग है जिसमें बड़ी रीयारीकी जरूरत होती है। संयम हमारे जीवनका धर्म है क्योंकि सर्वोच्च संयमके बिना सर्वोच्च सम्पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। जिस प्रकार कष्ट सहन करना मानव-जातिका विशेष लक्षण है।

सत्य हमसे सदा दूर हटता रहता है। जितनी अधिक हमारी प्रगति होती है अज्ञान ही अधिक हमें अपनी अयोग्यताका भान होता है। संतोष प्रमत्तमें है प्राप्तिमें नहीं। पूर्ण प्रयत्न ही पूर्ण विजय है।

योग सिद्धिया ९-१-२२ पृ० १४१

सिद्धित्त भित्तिहासके आदिकालसे हमारे अपने समय तक हम दृष्टि प्राप्त करें तो पता चलेगा कि मनुष्य धरावर अहिंसाकी ओर बढ़ रहा है। हमारे आदि पूर्वज मानव मछी थे। फिर एक समय बीसा आया जब ये मानव मछलसे बिरक्त हो गये और चिकार पर गुजर करने लगे।

फिर भेक स्थिति आमी जब मनुष्यको आधारा शिकारीका जीवन व्यतीत करनेमें लग्ना अनुभव हुआ। भिसरिजे खुसने सेतीको अपनाया और अपने आहारके लिये मुख्यत वह घरतीमाता पर निर्भर करने लगा। भिस प्रकार भेक खाना-बबोदासे आगे बढ़कर वह सम्य और स्वायी जीवन व्यतीत करने लगा खुसने गांभ और नगर बसाये और वह भेक पारिवारिक ब्यक्तिसे आगे बढ़कर समाज और राष्ट्रका सदस्य बन गया। ये सब बढ़ती हुआ अहिंसा और घटती हुआ हिंसाके चिह्न हैं। असा न होता तो मानव-जाति अब तक सतम हो जाती जैसा कि पशुओंकी अनेक जातियोंके बारेमें हुआ भी है।

पैगम्बरों और अवतारोंने भी कम या ज्यादा अहिंसाका ही पाठ पढ़ाया है। किसीने भी हिंसाकी शिक्षा देनेका दावा नहीं किया। करते भी कैसे? हिंसा सिखानी नहीं पढ़ती। प्राणीकी हैसियतसे मनुष्य हिंसक है परंतु आरमाके रूपमें अहिंसक है। ज्यों ही खुसे आत्माका भाग होता है त्यों ही खुसके लिये हिंसक रहना अशक्य हो जाता है। मनुष्य या तो अहिंसाकी सरफ बढ़ता है या बिनाशकी ओर दौड़ता है। अिसी-लिये पैगम्बरा और अवतारोंने सत्य भेक-भिलाप भाभीचारा ग्याय आदिना पाठ पढ़ाया है। ये सब अहिंसाके लक्षण हैं।

फिर भी हिंसा टिकी हुआ है यहाँ तक कि पद-सेसक जैसे विचार-लील छोग भी खुसे आसिरी हृदियार मामते हैं। परंतु जैसा मैंने सिद्ध किया अिसिद्दास और अनुभव खुनकी अिस बातका समर्थन नहीं करत।

अगर हम मामते हैं कि मानव-जाति बराबर अहिंसाकी ओर बढ़ रही है तो खुससे यह निष्कर्ष निकलता है कि खुसे अिस दिशामें और भी प्रगति करनी है। ससारमें कोभी भीज स्थिर नहीं है प्रत्येक वस्तु प्रगतिशील है। अगर हम आगे नहीं बढ़त हैं तो हमें पीछे हटना पड़ेगा। भीस्वरकी बात असंग है, अन्य कोभी भी कारणसे बच नहीं सकता।

हरिजन ११-८-४० पृ० २४५

मैंने देखा कि बिनाशके बीचमें भी जीवन कायम रहता है। और भिसरिजे बिनाशके कानूनसे बड़ा भी कोभी कानून अवदय है। खुस कानूनकी अधीनता स्वीकार की जाय तो ही मुख्यस्थित समाजकी

रचना हो सकती है और जीवन जीने योग्य हो सकता है। अगर वह कानून ही जीवनका सच्चा कानून है तो हमें उस पर दैनिक जीवनमें अमल करना होगा। जहाँ कहीं भी बिसंवाद पैदा हो जहाँ भी आपको किसी विरोधीका सामना करना पड़े जहाँ आप उसे प्रेमसे जीतिये। मैंने अक्सर नियमको अपने जीवनमें किसी सारे ढंगसे कार्यान्वित किया है। जिसका यह मतलब नहीं कि मेरी सब मुश्किलें हल हो गयी हैं। मतलब अितना ही है कि मैंने पाया है कि जो काम बिनाकिसी नियमसे नहीं निकला वह जिस प्रेमधर्मसे बना है। जिस धर्मका मैं अितना अधिक आश्रय करता हूँ खुदना ही मुझे जीवनमें जिस बिस्वकी योजनामें आनन्द अनुभव होता है। मुझे वह धान्ति मिलती है और प्रकृतिके रहस्योंका वह दर्पें दिखायी देता है जिसका वर्णन करनेकी मुझमें ताकत नहीं है।

यंग अिडिया, १-१०-३१, पृ० २८६-८७

मैं जानता हूँ कि जीवनके जिस महान धर्मका पालन करना कितना कठिन है। परन्तु क्या सभी बड़ी और अच्छी चीजोंका करना कठिन नहीं होता? द्वेष करनेबाछेसे प्रेम करना सबसे कठिन होता है। परन्तु श्रीधरकी दयासे यह अत्यन्त कठिन कार्य करना भी सरल हो जाता है, अगर हम उसे करना चाहें।

(ता० ३१-१२-३४ के अेक निजी पत्रसे)

मिस आश्चर्यकी युगमें कोजी यह नहीं कहेया कि अमूक बिचार नया है जिसलिअे निकम्मा है। किसी तरह, अमूक कार्य कठिन है जिस लिअे असंभव है अैसा कहना भी युगधर्मके विपरीत है। जो बातें सपनेमें भी नहीं सोयी जा सकती थीं वे बातें रोज हो रही हैं असंभव निरंतर संभव होता जा रहा है। हिंस्रके क्षेत्रमें जो आश्चर्यजनक आविष्कार भिन विनों हो रहे हैं वे हमें सगातार अंकित कर रहे हैं। परन्तु मेरी रायमें जिससे कहीं अकल्पित और असंभव विद्याभी देनेबाछे आविष्कार अहिंस्रके क्षेत्रमें किये जायें।

हरिजन २५-८-४० पृ० २६०

मैं भेक अदम्य आशावादी हूँ। मेरे आशावादका आधार यह विश्वास है कि व्यक्तिमें अहिंसाका विकास करनेकी असीम संभावनायें हैं। जिसका जितना अधिक विकास आप अपने जीवनमें करेंगे मुतनी ही वह संक्रामक होगी यहाँ तक कि वह आपके आसपासके वातावरणमें छा जायगी और धीरे धीरे संसारको भी आच्छादित कर सकती है।

हरिजम, २८-१-३९ पृ० ४४३

(ख) सीधी लड़ायी

निष्क्रियता नहीं

सीधी लड़ायीके बिना जिस पृथ्वी पर आज तक कुछ नहीं हुआ। मैं निष्क्रिय प्रतिरोध शब्दको मस्वीकार करता हूँ क्योंकि वह अपर्याप्त है और भुसका अर्ध कमजोरोंका हथियार किया जाता है।

यंग अड्डिया १२-५-२० पृ० ३

मेरा मुख्य सारे संसारके साथ मित्रता साधना है और मैं अन्यायके अधिकसे अधिक विरोधके साथ अधिकसे अधिक प्रेमका सामंजस्य कर सकता हूँ।

यंग अड्डिया १०-३-२०, पृ० ५

अहिंसा 'दुष्टताके विरुद्ध सब तरहकी सच्ची लड़ायी छोड़ देना' नहीं है। जिसके विपरीत मेरी कल्पनाकी अहिंसा प्रतिघोषकी अपेक्षा दुष्टताके विरुद्ध अधिक सक्रिय और वास्तविक युद्ध है। प्रतिघोषका स्वभाव ही दुष्टताकी वृद्धि करना है। मैं अनीतिके मानसिक और भिन्न छिन्ने नैतिक विरोधकी कल्पना करता हूँ। मैं जातिमकी उत्सवारकी धारको बिलकुल भोंबरी बना देना चाहता हूँ। मगर खुसके विरुद्ध अधिक तेज धारवाला हथियार बुढाकर नहीं वस्कि जातिमकी भिन्न आशाको विकल बनाकर कि मैं धारीरिक प्रतिरोध करूंगा। मैं तो आत्मा द्वारा प्रतिरोध करूंगा और यह प्रतिरोध खुसकी पकड़में नहीं आयेगा। पहले वह चकित होगा और अन्तमें वह भुसका महत्त्व पहचाने बिना नहीं रहेगा। और

आत्मिक प्रतिरोधके महत्त्वकी यह पहचान भुस नीचा न दिखाकर खूँचा मुठायेगी । *

यंग बिडिया ८-१०-२५ पृ० ३४६

सक्रिय रूपमें अहिंसाका अर्थ है जान-बूझकर कष्ट सहन करना । जिसका अर्थ बुरा करनेवालेकी मरजीके आगे चुपचाप झुक जाना नहीं परन्तु जातिमत्री मरजीक खिलाफ अपनी जानकी बानी लगा देना है । जीवमके मिस धर्मका पालन करते हुमे अेक अकसं ब्यक्तिके सिधे अपनी अिज्जत अपने धर्म और अपनी आत्माकी रक्षाके सिधे किसी अन्धायी साम्राज्यकी सारी साकतका सामना करना और अुस साम्राज्यके पतन या अुत्थानकी बुतियाद डालना संभव है ।

यंग बिडिया ११-८-२० पृ० ३

कायरताके सिधे कोमी स्थान नहीं

मेरा अहिंसा-धर्म अेक अत्यत सक्रिय शक्ति है । अिसमें कायरताका या कमजारीके सिधे कोमी पुंजाअिध नहीं । अेक हिंसक मनुष्यके सिधे ठा किसी दिन अहिंसक बन जानेकी आशा है, परन्तु कायरके सिधे कोमी आशा नहीं । अिसअिधे मेने मिस पत्रमें अनेक बार कहा है कि अगर हमें अपनी अपनी बहनोकी और अपने पूजा-स्थानोंकी अपनी कष्ट सहनेकी अक्तिके द्वारा अर्थात् अहिंसाके द्वारा रक्षा करना नहीं आता और अगर हम मर्दे हैं तो कमसे कम छड़कर अिन सबकी रक्षा करनेका सामर्थ्य तो हममें होना ही चाहिये ।

यंग बिडिया, १६-६-२७ पृ० १९६

अहिंसा और कायरता साध साध नहीं चल सकती । मैं अेक अैसे मनुष्यकी कल्पना कर सकता हूँ जो पूरी तरह सस्त्रसज्जित होने पर भी दिमसे नायर हो । हथियार रखनेका अर्थ कायरता न हो तो भी कुछ भय तो है ही । परन्तु बिसुद्ध निर्ममताके बिना सच्ची अहिंसा असंभव है ।

हरिजन १५-७-३९ पृ० २०१

शक्ति शारीरिक क्षमतासे नहीं आती। वह अटल संकल्पसे आती है।

यंग विडिया ११-८-२० पृ० ३

अपने ध्येयमें अटल भ्रष्टासे अनुप्राणित कुछ बृद्ध संकल्पवाले आदमी भी इतिहासकी दिशा बखल सकते हैं।

हरिजन १९-११-३८ पृ० ३४३

अहिंसाक पुजारीको मयमुक्त होनेके लिये अपनेमें अंधेसे अंधे ढंगकी त्यागशक्ति पैदा करनी पड़ती है। अंधकी जमीन अंधकी दौलत और अंधकी जान भी बली जाय तो भी वह परबाह नहीं करता। जिसने सब प्रकारके भयको जीत न लिया हो वह सम्पूर्ण अहिंसाका पालन नहीं कर सकता। अहिंसाके पुजारीको श्रेक श्रीस्वरका ही डर होता है।

हरिजन १-९-४० पृ० २१८

जहां डर है वहां धर्म नहीं होता।

यंग विडिया २-९-२६ पृ० ३०८

ससारमें हमारा कुछ भी नहीं है। हम स्वयं भी प्रभुके हैं। तब फिर हम कोबी भी डर क्यों रलें?

यंग विडिया ११-९-२० पृ० २

हम श्रीस्वरसे डरें फिर हमें मनुष्यका भय नहीं रहेगा।

स्वीडेन श्रेष्ठ राबिर्टिन्ग ऑफ महात्मा गांधी जी० श्रे० मटेसन मद्रास पृ० ३३० १९३३

आध्यात्मिकताका अर्थ शास्त्रोका ज्ञान या दार्शनिक चर्चाकी धोप्यता नहीं है। अंधका सम्बन्ध हृदयके विकाससे हृदयकी असीम शक्तिसे है। निर्मयता आध्यात्मिकताकी पहली शर्त है। कायर कभी सदाचारी नहीं हो सकते।

यंग विडिया १३-१०-२१, पृ ३२३

सत्याग्रही मयको तिलांजलि दे देता है। जिसलिये अंध अपने विरोधी पर विश्वास करनेमें कभी डर नहीं होता। विरोधी अंधे बीस बार घोसा

दे चुका हो ता भी सत्याग्रही भिस्कीसर्षी बार भुस पर भरोसा करनेको तैयार रहना है क्योंकि मानव-स्वभावमें सम्पूर्ण भिस्वास भुसके अहिंसा धर्मका सार है।

सत्याग्रह भिन सामुय अफ्रीका, पृ० २४६, १९५०

हर रोज सुबह हमारा पहला काम भुस दिनके किसे यह प्रतिज्ञा करना होना चाहिये 'मैं संसारमें किसीसे नहीं डरूंगा। केवस भीस्वरसे डरूंगा किसीके प्रति दुर्भाव नहीं रखूंगा, किसीके भी अन्यायके सामने नहीं झुकूंगा। मैं असत्यको सत्यसे जीतूंगा और असत्यका विरोध करते हुये सब प्रकारके कष्ट सहन करूंगा।'

सत्याग्रह सीफोरेट, ४-५-१९ पृ० १४

अकेसे डटे रहो

मेरे भीतरकी कोखी चीज, जो मुझे कभी भोसा नहीं देती जिस समय मुझसे कह रही है 'तुम्हें अकेसे भी खड़े रहना पड़े तो भी तुम्हें सारे संसारके सामने डटे रहना है। संसार तुम्हें भास जासोंसे भूर रहा हो तो भी भुसे सामने नजर रखकर देखते रहो। डरो नहीं। अपनी अन्तरात्माका भिस्वास करो जो तुम्हारे हृदयमें निवास करती है और जो तुम्हें यह कहती है 'भाभी-बाधु स्त्री-पुत्र सबको छोड़ दो परंतु जिस चीजके सिजे तुम जिय हो और जिसके सिजे तुम्हें मरना है भुसका प्रमाण दो।'

वि वॉम्बे कॉन्ग्रेस १-८-४२

संख्याबस कायरोंकी जातम्द देता है। बीरताकी भावनावाले सोय अकेसे छड़नेमें गौरव महसूस करते है।

यंग बिदिमा १७-६-२६, पृ० २१७

संसारके महानमम पुरुष सवा अकेसे डटे रहे है। अरबुस्त बुद्ध, खीसा, मुहम्मद आदि महान धर्मप्रवर्तकोंको देखिये। वे सब अकेसे ही डटे रहे। जैसे खीर भी कबी नाम में से सकता हूँ। परंतु मुझे अपनेमें और अपने भीस्वरमें जीती-जागती मडा थी। और भूकि मुझे यह भिस्वास

था कि श्रीस्वर अुनके पक्षमें है, जिसलिये अुन्हें अकेलापन कभी महसूस नहीं हुआ।

यंग विडिया १०-१०-२९ पृ० ३३०

श्रीस्वरका आशय

बहिष्ता तभी सफल होती है जब हमें श्रीस्वरमें सजीव अद्वा हो।

हरिजन २८-१-३९, पृ० ४४३

स्यायकी रूढ़ाजीमें श्रीस्वर सुव युद्धकी योजना बनाता है और अुसका संचालन करता है। बर्मयुद्ध श्रीस्वरके नाम पर ही रूढ़ा जा सकता है। और श्रीस्वर बचानेके लिये तभी आता है जब सत्याग्रहीको विरुद्ध सञ्चारी महसूस होती है और जब अुसे अपने चारा ओर घोर अम्भकार दिखानी देता है।

सत्याग्रह विन साजुष अफीका पृ० ५, १९५०

मैने यह अेक सवक सीखा है कि जो बात मनुष्यके लिये असम्भव है वह श्रीस्वरके लिये चांये हापका खेळ है। और यदि हमें अुस दैवी शक्ति पर अद्वा हो जो अुसकी सृष्टिके छोटेसे छोटे प्राणीकी भाव्य-विषाटा है तो मुझे कोवी शक नहीं कि सब-कुछ संभव है। और इसी अंतिम आशामें मैं जी रहा हूं अपना समय बिता रहा हूं और अुस प्रभुकी मरजी पर चलनेकी कोशिश कर रहा हूं।

यंग विडिया १९-११-३१, पृ० ३६१

मुझे रास्ता मासूम है। वह कठिन और तंग है। वह खांटेकी धार अैसा है अुस पर चलनेमें मुझे आनन्द आता है। जब गिर पड़ता हूं तो मैं रो देता हूं। श्रीस्वरका बचन है जो प्रयत्न करता है, अुसका कभी नाश नहीं होता। मुझे जिस वचनमें पूर्ण अद्वा है। जिसलिये मझे ही मैं अपनी दुर्वस्त्ताके कारण हजार बार असफल रहूं तो भी मैं अपनी अद्वा नहीं छोडूंगा।

यंग विडिया १७-६-२९ पृ० २१५

बुस (सत्याग्रहीको) जानना चाहिये कि सहायताकी जब कमसे कम आशा होती है तब वह बुस मिछ जाती है। बुस निर्वय क्यासु प्रभुकी भसी ही सीला है कि वह अपने मकतको आगमें तपाकर बुसकी परीक्षा लेता है और बुसे रजकम जैसा मझ बनानेमें बुसे ध्यानस्व आता है।

यंग विडिया ४-६-२५, पृ० १८९

कष्ट-सहन द्वारा अपील

प्रेम किसी चीजको लेनेका दावा नहीं करता वह हमेसा देता ही है। प्रेम सदा सहन करता है, कभी बदला नहीं लेता।

यंग विडिया ९-७-२५, पृ० २४०

मैं अिस बुनियादी नतीजे पर पहुंचा हूं कि अगर आप सचमुच कोमी महत्वपूर्ण काम कराना चाहते हैं तो आपको केवल बुद्धिको ही सन्तुष्ट नहीं करना चाहिये हृदयको भी प्रेरित करना चाहिये। बुद्धिका प्रभाव मस्तिष्क तक ही अधिक पहुंचता है। परंतु हृदयको तो कष्ट-सहनके द्वारा ही भेदा जा सकता है। जिससे मनुष्यके भीतरी ज्ञानके कपाट खुल जाते हैं।

यंग विडिया, ५-११-२१ पृ० १४१

मेरा यह विश्वास बढ़ता जा रहा है कि मनुष्यके सिजे मौलिक महत्वकी चीजे केवल बुद्धिसे प्राप्त नहीं होतीं बुरहें कष्ट-सहनके द्वारा प्राप्त करना पड़ता है। कष्ट सहन करना मानव प्राणियोंका धर्म है युद्ध अंपरफा कानून है। परंतु कष्ट-सहन विरोधीके हृदयका परिवर्तन करने और बुद्धिकी आबाजके प्रति बुसके कान सोसनेके सिजे जंगलके कानूनसे कहीं अधिक दक्षिणायमी है।

यंग विडिया ५-११-२१ पृ० १४१

अहिंसाका धर्म अिस बातमें है कि स्वयं अधिकसे अधिक असुविधा सहकर और आमकी बोसममें डासकर भी दूसरोंको अधिकसे अधिक सुविधा पहुंचाशी जाय।

यंग विडिया, २-१२-२६, पृ० ४२२

कठोरसे कठोर हृदय और घोरसे घोर अज्ञान भी रागद्वेष रहित कष्ट-सहनके जुगते हुये सूरजके सामने पिमल जाता तथा विलीन हो जाता है।

यंग विडिया, १९-२-२५, पृ० ६१

विरोधीका हृदय-परिवर्तन करनेका ध्येय

यह अकमर मुझा दिया जाता है कि घुरा करनेवालेको सताना सत्याग्रहीका हेतु कभी नहीं होता। सत्याग्रही मुसकी भयकी वृत्तिको नहीं हमेंघा उसके हृदयको जगाना चाहता है और हृदयको ही जगाना चाहिये। सत्याग्रहीका हेतु घुरा करनेवालेका हृदय बदलना होता है, न कि उसे अमुक कार्य करनेके क्रिमे किसी भी तरह बाध्य करना।

हरिजन १८-३-३९ पृ० ५३

सत्याग्रही महज चरित्र-बल और कष्ट-सहन द्वारा अपने विरोधीको बदलना चाहता है। वह जितना धुंढ होगा और जितना अधिक कष्ट सहन करेगा मुतनी ही प्रयति ठेक होगी।

यंग विडिया १८-९-२४ पृ० ३०६

अहिंसक कार्यकर्ताका रुच्य सदा हृदय बदलनेका होना चाहिये। परंतु वह अनन्त काल तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। जिसकिसे जब सीमा आ जाती है तब वह ओखिम जुठाता है और सक्रिय सत्याग्रहकी योजनामें बनाता है जिसके परिणाम सविनय आत्मार्ग आदि ह्ये सकते हैं।

यंग विडिया ६-२-३० पृष्ठ ४४

सत्याग्रह*

चूंकि सत्याग्रह सीधी सझाबीके अत्यन्त प्रबल अपायोंमें से एक है, जिसकिसे सत्याग्रही सत्याग्रहका आभय सेनेसे पहले और सब सुपाय कर चुकता है। जिसकिसे वह बैंव अधिकारियोंके पास हमेंसा और सगातार पहुचता रहेगा लोकमतकी राय सेता रहेगा मुसे

* सत्याग्रह यानी सीधी अहिंसक सझाबीका प्रयोग गांधीजीने कधी स्मोमें किया अुदाहरणार्थ सुपबास असहयोग सविनय आत्मार्ग आदि। आगे संक्षेपमें भिनबा विवेचन दिया जा रहा है। —संपादक

विदित बनायेगा और जो भी बुझकी बात सुनना चाहेगा मुझके सामने अपना पक्ष पान्ति और ठंडे तरीकेसे रखेगा। और जब ये जुपाव वह कर चुकेगा तभी सत्याग्रहका आरम्भ होगा। परंतु जब वह भीतरकी, अंतरात्माकी अनिर्धार्य पुकार सुनकर भेक जाए; सत्याग्रह छोड़ देगा तब वह सर्वस्वकी बाजी लगा देगा और फिर पीछे कदम नहीं हटायेगा।

यंग विडिया, २०-१०-'२७ पृ०: ३५३

जानव सड़नेमें प्रयत्नमें कष्ट-सहनमें है, न कि विजयमें।

हरिजन, २३-१२-३९, पृ० ३८६

मैं हजारोंको स्नेहसे सत्याग्रहमें प्राण गंवाते देखकर जिसकिसे सुधा नहीं होता कि मैं भीषणता मुझसे कम करवा दूं मेरी खुशीका कारण यह है कि मैं जानता हूं कि अन्तमें मुझका परिणाम कमसे कम प्राणहानि है। और जिससे भी बड़ी बात तो, यह है कि जो अपने प्राण देते हैं वे मूढे खुल्ले हैं और उनके त्यागके कारण संसारकी नैतिक समृद्धि बढ़ती है।

यंग विडिया, ८-१०-२५, पृ० ३६५

मेरे अपवास्त

मैं कह सकता हूं कि सुधारके अस्वक रूपमें बड़े पैमाने पर अपवास्तके प्रयोग मैंने १९१३ में शुरू किये। अपवास्त मैंने पहले भी बहुत किये थे परन्तु वे १९१३ के डंग पर नहीं हुये। मेरी निश्चित राय है कि मेरे अनेक अपवास्तका सामान्य परिणाम निश्चित रूपसे सामंजस्य रहा। उन अपवास्तोंके द्वारा मैं सम्बन्धित लोगोंका और जिनको मैं प्रभावित करना चाहता था उनका अन्तःकरण हमेशा प्राप्त कर सका। जिन अपवास्तोंसे कोमी अन्याय हुआ हो वैसे मुझे मालूम नहीं है। किसी भी अपवास्तसे किसी पर बर्बाद डालनेका मेरा कोभी विचार नहीं था। सब तो यह है कि आलोचित अपवास्तोंसे हानिवाले प्रभावके सिद्धे बर्बाद शब्दका प्रयोग ही मेरे विचारसे यथ्यत होगा। बर्बादके माने में हैं कि किसी मनुष्यके विशिष्ट शक्तिके प्रयोग करनेवाला अपना कोभी अभीष्ट काम करानेकी आशा रखता है, कोभी हानिकारक शक्ति काममें लायी

जाय। जो अपवाद मने किये अन्तमें शक्तिका प्रयोग मेरे अपने विरुद्ध ही किया गया था। अवश्य ही कुछ कष्ट सहता और जिसे हम प्रभावित करना चाहते हैं उसे कष्ट देना—यिन दोनाको एक ही क्षणमें नहीं रखा जा सकता। अगर मैं जैसे मित्रकी अन्तरात्माको जगानेके छिमे अपवाद करूँ जिसकी भूल असंदिग्ध है तो सध्यक साधारण अर्थमें यह मुझे दबाना नहीं है।

मत्र यात यह है कि समाम आध्यात्मिक अपवाद अन्तमें लोगोंको सदा प्रभावित करते ही हैं जो अन्तमें प्रभाव-क्षेत्रमें आते हैं। किसीनिम्ने आध्यात्मिक अपवादको तप कहा गया है। और सभी प्रकारका तप अन्तमें निम्ने किया जाता है अन्त पर सदा शुद्धिकारक प्रभाव आता है।

हां जिससे अन्तकार नहीं किया था सकता कि अपवाद सधमेष दबाव डालनेवाले हो सकते हैं। किसी स्वार्थपूर्ण हेतुकी पूर्तिके निम्ने किये जानेवाले अपवाद जैसे ही होते हैं। किसी व्यक्तिसे खया भठने या जैसे ही किसी व्यक्तिगत मुद्देस्यको पूरा करनेके निम्ने किया जानेवाला अपवाद अनुचित प्रभाव या दबाव डालने जैसा ही कहा जायगा। जैसे अनुचित प्रभावका विरोध करनेकी मैं मित्रकोब हिमायत करूँगा। जो अपवाद मेरे विरुद्ध किये गये या अन्तमें करनेकी धमकी दी गयी अन्तका मैंने कुछ सफलतापूर्वक विरोध किया है। और अगर यह तर्क किया जाय कि स्वार्थपूर्ण और स्वार्थरहित हेतुमें विभाजक रेखा अकसर बहुत बारीक होती है तो मैं जोरके साथ कहूँगा कि जो व्यक्ति किसी अपवादके हेतुको स्वार्थपूर्ण या हेय मानता है उसे अन्तमें सामने अन्तमेंसे मजदूतीके साथ अन्तकार कर देना चाहिये जैसे ही अन्तकार करनेका परिणाम अपवादकी मृत्यु ही क्यों न हो। यदि लोग यह आदत डाल लें कि जो अपवाद अन्तकी रायमें अनुचित हेतुसे किये जाते हैं अन्तकी परवाह न की जाय तो जैसे अपवादोंमें दबाव और अनुचित प्रभावका रंग नहीं रहेगा। सभी मानव-परिपाटियोंकी भाति अपवादका भी विहित और अविहित दोनों प्रकारका अपयोग हो सकता है। परन्तु दुर्दयकी संभावनाके कारण सत्याग्रहके सत्याग्रहके अन्तमें बड़े हथियारका परित्याग नहीं किया जा सकता। सत्याग्रहका अन्तमें हिंसाको पदच्युत करके अन्तका स्थान लेनेका

है। युसका प्रयोग अभी चौधव-अवस्थामें है और किसिममें अभी पूर्ण नहीं हुआ है। परन्तु अर्थात् सत्याग्रहके प्रपेठाके नाते मैं युसके अनेक सुपयोगोंमें से किसीको भी छोड़ नहीं सकता अन्यथा अेक साधककी मज्ज भावनासे युसके प्रयोग करनेका अपना दावा मुझे छोड़ देना होगा।

हरिप्रम ९-९-१३ पृ० ५

असहयोग

मेरा असहयोग मेरे धर्मका अेक अंग होते हुअे भी सहयोगकी भूमिका है। मेरा असहयोग पद्धतियों और प्रणालियोंमें है मनुष्योंसे हरगिज नहीं।

यंग विडिया, १२-९-२९ पृ० १००

मेरे असहयोगके पीछे सदा दुरेसे दुरे विरोधीसे भी जरासा बहाना मिश्रते ही सहयोग करनेकी तीव्र विच्छा रहती है।

यंग विडिया ४-३-२५, पृ० १९२

मेरे असहयोगकी बड़में द्वेष नहीं, प्रेम है। मेरा व्यक्तिगत धर्म मुझे किसीसे भी द्वेष करनेसे अेकदम रोकता है। मैंने यह सावा किन्तु महान सिद्यान्त धारह वर्षकी आयुमें अेक पाठपपुस्तक द्वारा सीखा था और वह दृढ़ विश्वास अभी तक बना हुआ है। वह दिन-दिन बड़ रहा है। युसकी मुझे तीव्र रूपन लगी हुअी है।

यंग विडिया, ६-८-२५, पृ० २७२

दुराग्रहके विच्छ सन्तिय आशार्भग

सन्तिय आशार्भग अेक नागरिकका जन्मजात अधिकार है। अिस अधिकारको वह छोड़ दे तो अपनी मानवतासे ही अ्युत हो जाय। सन्तिय आशार्भगके बाह अराजकता फनी नहीं आठी। द्वेषपूर्व आशार्भगसे अराजकता आ सकती है। प्रलोक राज्य द्वेषपूर्व आशार्भगको अकपूर्वक दवा देता है। न दवायें लीं वह मरुत हो जाय। परन्तु सन्तिय आशार्भगको बनाना अन्तःकरणका कर्द करनेकी अीशित अैसा है।

यंग विडिया, ५-१-२२ पृ० ५

कट्टर सत्याग्रही राज्यकी सत्तार्षी तो परवाह ही नहीं करता। वह ऐसा विद्रोही बन जाता है जो राज्यके प्रत्येक अनैतिक नियमकी अवहेलना करनेका दावा करता है। अिस प्रकार अुवाहरणार्थ वह कर देनेसे अिनकार कर सकता है, यह अपने रोजमरकि व्यवहारमें राज्यकी सत्ताको माननेसे अिनकार कर सकता है। वह प्रवेश-नियेध (ट्रेडपास)के कानूनको माननेसे अिनकार कर सकता है और सिपाहियोंसे बात करनेके लिये सैनिक निवासस्थानोंमें घुसनेका दावा कर सकता है। वह घरनेके तरीके पर सगाभी गभी पाबन्धियोंको माननेसे अिनकार कर सकता है और पूर्वनिश्चित क्षेत्रके भीतर घरना दे सकता है। ये सब काम करते हुये वह कमी बल-प्रयोग नहीं करता और जब अुसके विरुद्ध बल-प्रयोग किया जाता है तब वह अुसका प्रतिकार कमी नहीं करता।

यंग जिडिया, १०-११-२१, पृ० ३६२

मेरी पक्की राय है कि सविनय आज्ञामंग शुद्धसे शुद्ध बयका वैध आन्दोलन है। हां यदि अुसका सविनय अर्थात् अहिंसक स्वरूप केवल घोषाघड़ी हो तो वह पतनकारी और तिरस्करणीय हो जाता है।

यंग जिडिया १५-१२-२१ पृ० ४१९

आज्ञामंगको सविनय बननेके सिधे सच्चा आदरपूर्ण और सयत होना चाहिये अुसमें कमी भी अविनय नहीं होना चाहिये अुसका आचार किसी अच्ची तरह समझे हुये सिद्धान्त पर होना चाहिये वह मनमाना नहीं होना चाहिये और सबसे बड़ी बात तो यह है कि अुसके पीछे कोअी दुर्माक या द्वेष नहीं होना चाहिये।

यंग जिडिया २४-३-२०, पृ० ४

सत्याग्रहकी सङ्गामीमें कमसे कम सैनिक चाहिये। सच तो यह है कि अेक ही पूर्ण सत्याग्रही अन्यायके खिलाफ न्युयकी सङ्गामी जीतनेके सिधे काफी है।

यंग जिडिया १०-११-२१ पृ० ३६२

(ग) युद्धका अहिंसक साधन

रक्षाके लिये सलवार नहीं चाहिये

मैं कोभी स्वप्नद्रष्टा नहीं हूँ। मैं तो अकेले व्यावहारिक आदर्शवादी होनेका दावा करता हूँ। अहिंसा-धर्म केवल भूदियों और संतोंके लिये ही नहीं है। वह आम लोगके लिये भी है। जिस तरह हिंसा पशुओंका धर्म है वही तरह अहिंसा हमारी मानव-जातिका धर्म है। पशुमें आत्मा सोभी रहती है और वह खरीर-बखके सिवा और किसी धर्मको नहीं मानता। मानव-गौरव किसी अन्धे धर्मको — आत्माकी शक्तिको — माननेका पनाजा करता है।

जिसलिये मैंने भारतके सामने आत्मत्यागका प्राचीन धर्म रखनेका साहस किया है, क्योंकि सत्याग्रह और अहिंसाके असाधारण और सखिनय आशाभंग कष्ट-सहनके धर्मके नये नाम ही तो हैं। जिन भूपियोंने हिंसाके बीचमें अहिंसा-धर्मका आविष्कार किया है उनकी प्रतिभा न्यूटनसे बड़ी थी। वे स्वयं वैज्ञानिकसे भी बड़े मोटा थे। वे सस्म विद्या जानते थे फिर भी मुन्होंने सस्मोंकी व्यर्थता अनुभव की और हारी-यकी बुनियातको सिखाया कि मुसका मुद्दार हिंसासे नहीं परन्तु अहिंसासे होगा।

और जिसलिये मैं भारतके लिये अहिंसाके प्रयोगका समर्पन भारतकी कमबोरीके कारण नहीं कर रहा हूँ। मैं भारतकी शक्ति और बलको धानकर मुससे अहिंसाका पालन कराना चाहता हूँ। मुसकी ताकतको पहचाननेके लिये हजियारोंकी तालीमकी जरूरत नहीं। हमें जरूरत जिसलिये मालूम होती है कि हम अपनेको हाइ-मासका पुतला ही मानते हैं। मैं चाहता हूँ कि भारत यह अनुभव कर ले कि मुसकी अकेले शक्तिवाली आत्मा है जो हर शारीरिक दुर्बलताको पीतकर ऊपर उठ सकती है और शारी बुनियातकी सम्मिश्रित भौतिक शक्तिका मुकाबला कर सकती है। राम अपनी बानरोंकी सेना लेकर लंकाके चारों ओर घिरे हुमे गरबते सागरसे अपनेको सुरक्षित माननेवाले पद्मानन रावणकी मुदत शक्तिके विरुद्ध उठ गये — जिसका क्या अर्थ है? क्या मुसका धर्म

सरीर-बल पर आध्यात्मिक बलकी विजय ही नहीं है? अगर भारत तख्तवारका मुसूल अपना ले तो वह अल्पकालीन विजय प्राप्त कर सकता है। लेकिन तब भारत मेरे हृदयके गर्भकी वस्तु नहीं रह जायगा। मैं भारतस ज़िरीखिये बंधा हुआ हूँ कि मैं जो कुछ हूँ उसीके कारण हूँ। मेरा पूरा विश्वास है कि मुसके पास ससारके लिभे ब्रेक सदेश है। उसे यूरोपकी शंभी नकरा नहीं करनी है। भारत तख्तवारको अपनायेगा तब मेरी परीक्षाका समय होगा। मुझे आशा है कि मैं मुस समय अनुत्तीर्ण नहीं रहूँगा। मेरे धर्मकी कोशी भौगालिक सीमायें नहीं हैं। अगर मुझे मुसमें सजीव श्रद्धा है तो वह स्वयं भारतके प्रति भर प्रेमको भी पार कर जायगी। मेरा जीवन अहिंसा-धर्मके द्वारा भारतकी सेवाके लिभे समर्पित है क्योंकि अहिंसाको मैं हिन्दू धर्मकी अड़ मानता हूँ।

यंग जिन्दिया, ११-८-२० पृ० ३, ४

मुझमें भाग लेना

पक्का मुझ-विरोधी होनेके कारण मैंने अवसर मिलने पर भी विनाशक अस्त्रके प्रयोगकी शालीम कमी हासिल नहीं की। शायद भिती कारण मैं मनुष्य-जीवनके सीधे संहारसे बचा रहा। परन्तु जब तक मैं बल पर आधारित किसी शासन प्रणालीके अधीन रहता था और मुसके दिये हुये अनेक सुभीते और विशेषाधिकार स्वेच्छापूर्वक मोगला था, तब तक जिस समय वह सरकार रुढ़ायीमें भाग ले मुस समय मुसकी भरसक मदद करना मेरा धर्म था। हाँ मुस सरकारसे असहयोग करने उसकी दी हुयी सुविधायें यथासम्भित छोड़ देने पर मेरी स्थिति दूसरी हो जाती थी।

ब्रेक खुदाहरण रें। मैं ब्रेक जैसी सत्याका सदस्य हूँ जिसके पास कुछ ब्रेकज जमीन है और उसकी फसलको बचरोका जतरा है। मैं जीव मात्रकी पबित्रताको मानता हूँ और जिसलिभे बन्दरोंको कोभी बाट पहुंचाना अहिंसाका भंग समझता हूँ। परन्तु फसलकी रक्षाके लिभे बन्दरों पर हमला करानेमें मुझे संकोच नहीं होता। मैं जिस बुराधीसे बचमा जाहूँगा। संस्थाको तोड़कर या छोड़कर मैं मुससे बच सकता हूँ।

(ग) युद्धका अहिंसक साधन

रसास्त्रे सिद्धे तस्यवार नहीं चाहिये ।

मैं कोभी स्पन्दद्रष्टा नहीं हूँ। मैं तो एक व्यावहारिक आदर्शवाद, होनेका वाधा करता हूँ। अहिंसा-धर्म केवल अप्रियों और संतोके सिद्धे ही नहीं है। वह आम लोगोंके लिये भी है। जिस तरह हिंसा पशुओंका धर्म है, उसी तरह अहिंसा हमारी मानव-जातिका धर्म है। पशुमें आत्मा सोयी रहती है और वह शरीर-बसके सिवा और किसी धर्मको नहीं जानता। मानव-गौरव किसी मूँचे धर्मको—आत्माकी शक्तिको—माननेका लक्ष्य करता है।

असिद्धिमें मैंने भारतके धामने आत्मत्यागका प्राचीन धर्म रखनेका साहस किया है, क्योंकि सत्याग्रह और युसकी शाखामें बसहयोग और सविनय आज्ञासंग कष्ट-सहनके धर्मके नये नाम ही तो हैं। जिस अप्रियोंने हिंसाके बीधमें अहिंसा-धर्मका आविष्कार किया है युसकी प्रतिभा न्यूनतसे बड़ी थी। वे स्वयं वेल्डिंगसे भी बड़े मोटा थे। वे शस्त्र विद्या जानते थे फिर भी उन्होंने शस्त्रोंकी व्यर्थता अनुभव की और हारी बकी दुनियाको सिखाया कि युसका युद्धार हिंसासे नहीं परन्तु अहिंसासे होगा।

और असिद्धिमें मैं भारतके सिद्धे अहिंसाके प्रयोगका समर्थन भारतकी कमजोरीके कारण नहीं कर रहा हूँ। मैं भारतकी शक्ति और बलको जानकर युससे अहिंसाका पाठन कराना चाहता हूँ। युसकी ताकतको पहचाननेके सिद्धे हथियारोंकी ठालीमकी जरूरत नहीं। हमें जरूरत असिद्धिमें मालूम होती है कि हम अपनेको हाइ-नांसका पुतला ही मानते हैं। मैं चाहता हूँ कि भारत यह अनुभव कर सके कि युसकी एक अविनाशी आत्मा है जो हर शारीरिक दुर्बलताको जीतकर ऊपर जुठ सकती है और सारी दुनियाकी सम्मिश्रित भौतिक शक्तिका मुकाबला कर सकती है। राम अपनी शत्रुओंकी सेना लेकर लंकाके पारों ओर घिरे हुमे गरबसे सागरसे अपनेको सुरक्षित माननेवाले दशानन रावणकी युद्धत शक्तिके विरुद्ध डट गये—असिद्धि क्या धर्म है? क्या युसका धर्म

घरीर-बल पर आध्यात्मिक बलकी विजय ही नहीं है? अगर भारत तरुवारका खुसूल अपना ले तो वह अस्पृकाहीन विजय प्राप्त कर सकता है। लेकिन तब भारत मेरे हृदयके गर्वकी वस्तु नहीं रह जायगा। मैं भारतसे किसीछिमे वधा हुआ हूँ कि मैं जो कुछ हूँ उसीके कारण हूँ। मेरा पूर्ण विश्वास है कि उसके पास संसारके लिये एक उद्देश है। उसे यूरोपकी धंधी नकरू नहीं करनी है। भारत तरुवारको अपनायेगा तब मेरी परीक्षाका समय होगा। मुझे आशा है कि मैं उस समय अनुत्तीर्ण नहीं रहूंगा। मेरे धर्मकी कोखी मौगोलिक सीमाओं नहीं है। अगर मुझे उसमें सजीव भ्रष्टा है तो वह स्वयं भारतके प्रति मेरे प्रेमको भी पार कर जायगी। मेरा जीवन अहिंसा-धर्मके द्वारा भारतकी सेवाके लिये समर्पित है, क्योंकि अहिंसाको मैं हिन्दू धर्मकी जड़ मानता हूँ।

रंग सिद्धिया, ११-८-२० पृ० ३, ४

युद्धमें भाग लेना

पक्का युद्ध-विरोधी होनेके कारण मैंने अबसर मिलने पर भी विनाशक अस्त्रकि प्रयोगकी ताहीम जमी हासिल नहीं की। शायद किसी कारण मैं मनुष्य-जीवनके सीधे संहारसे बचा रहा। परन्तु जब तक मैं बल पर आधारित किसी शासन प्रणालीसे बधीन रहता था और उसके विये हुये अनेक सुमीते और विशेषाधिकार स्वेच्छापूर्वक मोगता था तब तक जिस समय वह सरकार लड़ायीमें भाग ले उस समय उसकी भरसक मदद करना मेरा धर्म था। हाँ उस सरकारसे असहयोग करने उसकी ही हुजी सुविधाओं यथाशक्ति छोड़ देने पर मेरी स्थिति दूसरी हो जाती थी।

एक मुदाहरण में। मैं एक बेसी संस्थाका सदस्य हूँ जिसके पास कुछ भेकड़ जमीन है और उसकी फसलको बंदरोंका जतरा है। मैं जीव मात्रकी पवित्रताको मानता हूँ और जिसलिये बन्दरोंको कोखी चाट पहुंचाना अहिंसाका भंग समझता हूँ। परन्तु फसलकी रदाके लिये बन्दरों पर हमला करानेमें मुझ संकोच नहीं होता। मैं जिस बुराभीसे बचना चाहूंगा। संस्थाको तोड़कर या छोड़कर मैं उससे बच सकता हूँ।

(ग) युद्धका अहिंसक साधन

रक्षाके लिये तसवार नहीं चाहिये

मैं कोभी स्वप्नदृष्टा नहीं हूँ। मैं तो ब्रोक व्यावहारिक आदर्शवादी होनेका दावा करता हूँ। अहिंसा-धर्म केवल अुपियों और संतोंके लिये ही नहीं है। वह आम लोगोंके लिये भी है। जिस तरह हिंसा पशुजोंका धर्म है उसी तरह अहिंसा हमारी मानव-जातिका धर्म है। पशुमें आत्मा सोभी रहती है और वह धरीर-बसके सिवा और किसी धर्मको नहीं जानता। मानव-गौरव किसी अुने धर्मको — आत्माकी शक्तिको — माननेका सकारण करता है।

अिसलिये मैंने भारतके सामने आत्मरक्षणका प्राचीन धर्म रक्षनेका साहस किया है क्योंकि सत्याग्रह और अुसकी शाखायें असहयोग और सविनय आशामग कष्ट-सहनके धर्मके नये नाम ही धो हैं। जिन अुपियोंने हिंसाके बीचमें अहिंसा-धमका आविष्कार किया है उनकी प्रतिभा न्यूनसे बड़ी थी। वे स्वयं बेसिस्टनसे भी बड़े योद्धा थे। वे शस्त्र विद्या जानते थे, फिर भी अुन्होंने शस्त्रोंकी अप्यता अनुभव की और हारी-यकी दुनियाको सिखाया कि अुसका अुदार हिंसासे नहीं परन्तु अहिंसासे होगा।

और अिसलिये मैं भारतके लिये अहिंसाके प्रयोगका समर्थन भारतकी कमजोरीके कारण नहीं कर रहा हूँ। मैं भारतकी शक्ति और बलको जानकर अुससे अहिंसाका पालन करना चाहता हूँ। अुसकी शक्तको पहचाननेके लिये अुपियारोंकी शालीमकी जरूरत नहीं। हमें जरूरत अिसलिये मालूम होती है कि हम अपनेको हाइ-मांसका पुतला ही मानते हैं। मैं चाहता हूँ कि भारत यह अनुभव कर ले कि अुसकी ब्रोक अविनाशी आत्मा है जो हर शारीरिक दुर्बलताको जीतकर अुपर अुठ सकती है और सारी दुनियाकी सम्मिश्र शैतिक शक्तिका मुकाबला कर सकती है। राम अपनी वालरोंकी सेना लेकर लंकाके चारों ओर घिरे हुए गरजते सागरसे अपनेको सुरक्षित माननेवाले दशमन रावणकी अुद्वत शक्तिके विरुद्ध डट गये — अिसका क्या अर्थ है? क्या अुसका अर्थ

सरीर-बल पर आध्यात्मिक बलकी विजय ही नहीं है? अगर भारत तत्सवारका खुसूख अपना ले तो वह अल्पकालीन विजय प्राप्त कर सकता है। लेकिन तब भारत मेरे हृदयके गर्भकी वस्तु नहीं रह पायगा। मैं भारतसे जिसीरिखे बधा हुआ हूँ कि मैं जो कुछ हूँ उसीके कारण हूँ। मेरा पूण विश्वास है कि मुसके पास ससारके लिभे अेक सदेस है। उसे यूरोपकी अभी तक नहीं करनी है। भारत तत्सवारको अपनायेगा तब मेरी परीक्षाका समय होगा। मुझे आशा है कि मैं मुस समय अनुत्तीर्ण नहीं रहूँगा। मेरे धर्मकी कोजी नौगोक्तिक सीमाओं नहीं हैं। अगर मुझे खुसमें सजीव श्रद्धा है तो वह स्वयं भारतके प्रति मेरे प्रेमको भी पार कर आयगी। मेरा जीवन अहिंसा-धर्मके द्वारा भारतकी सेवाके लिभे समर्पित है क्योंकि अहिंसाको मैं हिन्दू धर्मकी बड़ मानता हूँ।

यंग बिडिया ११-८-२० पृ० ३, ४

युद्धमें भाग लेना

पक्का युद्ध-विरोधी होनेके कारण मैंने अबसर मिलने पर भी विनाशक मस्त्रोंके प्रयोगकी तासीम कभी हासिल नहीं की। शायद जिसी कारण मैं मनुष्य-जीवनके सीधे संहारस बधा रहा। परन्तु जब तक मैं बल पर आधारित किसी दासन प्रणालीके अधीन रहता था और उसके बिये हुये अनेक सुभीते और विशेषाधिकार स्वेच्छापूर्वक भोगता था, तब तक जिस समय वह सरकार सड़ाजीमें भाग ले खुस समय खुसकी भरसक मदद करना मेरा धर्म था। हाँ खुस सरकारसे असहयोग करके खुसकी धी हुमी सुबिधाओं यथापक्ति छोड़ देने पर मेरी स्थिति दूसरी हो जाती थी।

अेक मुषाहरण लें। मैं अेक बीसी संस्थाका सदस्य हू जिसके पास कुछ अेकड़ जमीन है और खुसकी फसलका बंदरोंका शतरा है। मैं जीव मात्रकी पवित्रताको मानता हूँ और जिसलिभे बन्दरोंको कामी थोट पहुंचाना अहिंसाका भंग समझता हूँ। परन्तु फसलकी रक्षाके लिभे बन्दरों पर हमला करानेमें मुझे संकोष नहीं होता। मैं जिस बुरामीस बचना चाहूँगा। संस्थाको टाड़कर या छोड़कर मैं खुससे बच सकता हूँ।

यह मैं जिससिद्धि में नहीं करता कि मुझे कोई भी ऐसा समाज मिल सकनेकी आशा नहीं जहाँ जाती नहीं होगी और जिससिद्धि में भीलोंका नाश न होगा। जिससिद्धि में डरते-डरते मज्जता और परचात्तापके साथ बन्दरों पर किये जानेवाले आक्रमणमें मैं धरीक हाता हूँ और आशा रखता हूँ कि किसी न किसी दिन जिससे बचनेका कोई रास्ता निकल जायेगा।

जिसी प्रकार मैंने तीन युद्धोंमें भाग लिया। मैं जिस समाजका सदस्य हूँ उससे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर सकता था, ऐसा करना मेरे सिद्धि में पागलपन होता। और अतः तीनों व्यवहारों पर मैंने ब्रिटिश सरकारसे असहयोग करनेका कोई विचार नहीं किया। आज सरकारके सम्बन्धमें मेरी स्थिति बिरुद्ध भिन्न है और जिससिद्धि में मुझे मुझे युद्धोंमें स्वेच्छापूर्वक भाग नहीं लेना चाहिये और अगर मुझे हथियार भुठाने या युद्धके दूसरे कामोंमें भाग लेनेको विवश किया जाय तो मुझे कैदका और फाँसी तकका खतरा भुठाना चाहिये।

परन्तु जिससे भी पहली मुछमती नहीं। अगर राष्ट्रीय सरकार हो तो मैं लड़ाईमें कोई भी सीधा हिस्सा तो नहीं लूँगा लेकिन मैं ऐसे व्यवहारोंकी कल्पना कर सकता हूँ जब सैनिक शिक्षा चाहनेवालोंके सिद्धि में सैनिक शिक्षाकी व्यवस्था कर देनेके पक्षमें राय देना मेरा फर्ज होगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि उसके सब लोग अहिंसामें असह्य तक विश्वास नहीं रखते जिस हद तक मैं रखता हूँ। किसी व्यक्ति या समाजको जबरदस्ती अहिंसक बनाना संभव नहीं है।

अहिंसा अत्यन्त रहस्यमय ढंगसे काम करती है। अहिंसाकी दृष्टिसे अकसर अनेक मनुष्यके कार्योंका विश्लेषण नहीं किया जा सकता जिसी प्रकार मुझे कार्य अहिंसक दिशाकी वे सकते हैं जब कि वह मुझे अंधे अर्थमें सर्वथा अहिंसक हो और बादमें ऐसा ही पाया जाय। तब अपने आचरणके सिद्धि में अतिता ही दावा कर सकता हूँ कि जो अज्ञान दूर किया गया है मुझमें मेरा आचरण अहिंसाके हितको दृष्टिमें रखकर हुआ था। किसी भी राष्ट्रीय अथवा अन्य हितका मुझमें कोई साया नहीं था।

निःशस्त्रीकरण

यूरोपको आरामहत्या नहीं करनी है तो उसे किसी न किसी विनयम हथियारबन्दी करनी ही होगी। मगर उसके दूर होनेसे पहले किसी राष्ट्रको निःशस्त्र होनेका चाहस करना होगा और बड़ी जोखिम खुठानी पड़ेगी। मगर कभी सौभाग्यसे ऐसा हुआ तो उस राष्ट्रकी अहिंसाका स्तर स्वाभाविक रूपमें अतना मूंचा खुठ जायगा कि उसका सर्वत्र आवर होने लगेगा। उसके निर्णय सही उसके निश्चय दृढ़ और उसकी बीरतापूर्ण आरमत्यागकी क्षमता महाम होगी और वह अतना अपने लिये जीना चाहेगा अतना ही दूसरे राष्ट्रोंके लिये भी जीना चाहेगा।

यंग ब्रिडिया ८-१०-२५ पृ० ३५५

अफीमकी पैदावारकी तरह दुनियामें तस्कारोंके बनाने पर भी पाबन्दी लगानेकी जरूरत है। शायद अफीमकी अपेक्षा दुनियामें तस्कार अधिक दुःसके लिये बिल्मेशार है।

यंग ब्रिडिया १९-११-२५, पृ० ३९७

अगर कोयी छारुअ न हो तो शास्त्रास्त्रके लिये कोयी कारण नहीं रहेगा।

हरिजन १२-११-३८ पृ० ३२८

विद्वशाति

अगर मानव-शातिके माने हमे नेसा जिनके हाथमें बिनाशक यंत्रोंका नियंत्रण है उनका प्रयोग पूरी तरह समझकर छोड़ दें तो स्थायी शांति स्थापित हो सकती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि बुराजीबी जड़ जीते जागते श्रीस्वरमें जीती-जागती थडाका अभाव है। यह प्रथम शर्तीका मानव-दुर्भाग्य है कि ससारकी ये जातियां जो असाक सन्देशमें विद्वशास रखती हैं और जो खुर्हे शांतिका राजा बसाती है वास्तविक व्यवहारमें खुस विश्वासको बहुत कम प्रगट करती हैं। यह देखकर दुःख हाटा है कि सन्धे बीसाजी पावरी बीसाके सन्देशका क्षेत्र खुने हमे ब्यक्तियों तक ही सीमित रखते हैं। मुझे बचपनसे सिखाया गया है और मैंने अनुभवसे अिद

सत्यको आत्मता लिया है कि मानव-जातिके प्रमुख गुण छोटेसे छोटे मानव भी अपनेमें पैदा कर सकते हैं। यह अस्मिन् सार्वत्रिक संभावना ही मनुष्य-समाजको अक्षरकी दूसरी सृष्टिसे मज्जा करती है। अर्थात् एक भी राष्ट्र अस्मिन् महा सर्वोच्च कर्म बिलानर्तक कर दे तो हममें से बहुतोंको अपने जीवन-कालमें ही पृथ्वी पर प्रत्यक्ष शान्ति स्थापित हुयी दिखेगी।

हरिजन, १८-६-२८, पृ० १५३

मैं अपना बड़ा विश्वास दोहराता हूँ कि मित्रराष्ट्रोंके छिन्ने अथवा संहारके छिन्ने अथवा वक्त तक शान्ति स्थापित नहीं होगी, जब तक वे युद्धकी मृपयोगितामें अपना विश्वास छोड़ नहीं देंगे और सभी जातियों तथा राष्ट्रोंकी स्वतंत्रता और समानताके आधार पर सच्ची शान्ति स्थापित करनेका निश्चय न कर लेंगे।

दि बॉम्बे क्रॉनिकल १८-४-४५

२६

प्राणी-जगतके प्रति प्रेम

(क) प्राणियोंकी हत्या न की जाय

अहिंसा आपका वस्तु है। हम हिंसाकी होलीके बीच बिरे हुने पामर प्राणी हैं। यह वचन गलत नहीं है कि जीव जीव पर जीता है। मनुष्य अथवा एक क्षणके सिके भी बाह्य हिंसाके बिना जी नहीं सकता। जाते-पीते, बुद्धे-बैठे सभी क्रियाओंमें अहिंसा-अनिच्छासे वह कुछ-न-कुछ हिंसा तो करता ही रहता है। यदि किस हिंसासे छूटनेके सिके वह महाप्रयत्न करता है, अथवा भावनामें अनुकम्पा होती है, वह सूक्ष्म-स-सूक्ष्म अंतुका भी नाश नहीं चाहता और यथाशक्ति उसे बचानेका प्रयत्न करता है, तो वह अहिंसाका पुजारी है। अथवा कार्योंमें निरंतर संयमकी वृद्धि होगी अथवा निरंतर कठिनाई बढ़ती रहेगी। किन्तु कोभी देहपारी बाह्य हिंसासे सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता।

फिर, अहिंसाकी तहमें ही अद्वैत-भावना निहित है। और, यदि प्राणी मात्रमें अभेद हो, तो ओके पापका प्रभाव दूसरे पर पड़ता है जिस कारण भी मनुष्य हिंसासे बिल्कुल अछूता नहीं रह सकता। समाजमें रहनेवाला मनुष्य समाजकी हिंसामें, अनिच्छासे ही क्यों न हो साझेदार बनता है।

आत्मकथा पृ० ३०५ ०६ १९५७

प्राण लेना कर्तव्य हो सकता है। जिस स्थिति पर हम विचार करें। घरीरको कायम रखनेके लिये जीर्वाका जितना नाश हम जरूरी समझते हैं खुदना हम अवश्य करते हैं। जिस प्रकार हम आहारके लिये वनस्पतिमें रहनेवाले जीवनका अथवा किसी दूसरे प्रकारके जीवनका नाश करते हैं। और स्वास्थ्यके सातिर हम कृमि-नाशक दवायियां वगैरा भिस्तेमाल करके मच्छरों आदिको नष्ट करते हैं और हम यह नहीं मानते कि बीसा करके हम अधर्मके अपराधी होते हैं।

यह तो हुआ अपने ही लिये। दूसरोंके सातिर अर्थात् आदिकी भलायतीके लिये हम मांसाहारी पशुओंको मारते हैं। जब घेर और पीते खुनके गांभोंको छटाते हैं तो ग्रामीण लोग मुन्हें मारना या मरवाना अपना धर्म समझते हैं।

कुछ हासलोंमें मानव-संहार भी जरूरी हो सकता है। मान लीजिये कोभी आवमी पागल होकर सलवार हाथमें लिये आवेशकी हासलमें अिभर धुधर घूमता है और जो भी मिल जाय खुसीको मारने लगता है। कोभी भी मुसे भिन्दा पकड़नेका साहस नहीं करता। बीसी स्थितिमें जो आवमी जिस पागलका काम तमाम कर देता है वह समाजकी कृतज्ञता प्राप्त करेगा और परोपकारी मनुष्य माना जायगा।

अहिंसाकी दृष्टिसे बीस आवमीको मार डालना प्रत्येकका स्पष्ट कर्तव्य है। अपवाद कहे तो वास्तवमें ओक ही है। कोभी योगी जिस सतरनाक आवमीका क्रोध दान्त कर सबे तो वह मुसे न मारे। मगर यहां हम बीसे प्राणियोंकी बात नहीं कर रहे हैं जो लगभग पूर्णताको प्राप्त कर चुके हैं हम साधारण मूछ करनेवाले मानव प्राणियोंके समाजके कर्तव्यका विचार कर रहे हैं।

मरे दृष्टान्तोंके अप्रयुक्त होनेके बारेमें मतभेद हो सकता है। परन्तु यदि वे अपर्याप्त हैं तो दूसरे आसानीसे छोड़े जा सकते हैं। मुनका तात्पर्य जितना ही है कि प्राण लेनेसे परहेज करना किसी भी स्थितिमें निवृत्त कर्तव्य नहीं हो सकता।

बात यह है कि अहिंसाका मतलब केवल न मारना ही नहीं है। हिंसाका अर्थ है क्रोध या स्वार्थबल अथवा हानि पहुंचानेके हेतुसे किसीको पीड़ित करना या किसीके प्राण लेना। ऐसा न करना अहिंसा है।

जो वंश आपके सिधे कड़वी दवा बताता है वह आपको कष्ट देता है परन्तु हिंसा नहीं करता। अगर वह जरूरी होने पर भी कड़वी दवा नहीं बताता तो वह अपने अहिंसाके फलमें चुकता है। जो सर्वत्र बीमारको पीड़ा पहुंचानेके डरसे किसी सड़े हुए अवयवको काट देनेसे हिचकिचाता है वह हिंसाका अपराधी है। कौभी हत्यारा हमारे संरक्षित व्यक्तिको मारने जा रहा है और किसी दूसरे अपात्रसे हम मुझे रोक नहीं सकते तो धैर्य मौके पर हत्यारेको न मारनेसे पुष्प नहीं, पाप होता है। धैर्य स्थितिमें हम अहिंसा नहीं करते अहिंसाका गलत अर्थ लगाकर हिंसा करते हैं।

अब हम अहिंसाकी बड़की बेसी। वह आत्यंतिक निःस्वार्थता है। निःस्वार्थताका अर्थ है अपने शरीरकी अणु भी परवाह न होना। जब किसी अग्निने देखा कि मनुष्य असंख्य छोटे-बड़े प्राणियोंका अपने ही शरीरके खातिर संहार कर रहा है तो मुझे मुझे अज्ञानसे साबात लगा। मुझे मनुष्यके जिस प्रकार नश्वर शरीरके पिंजड़ेमें बन्द अमर आत्माको भूल जाने और आत्माके शाश्वत मानन्दकी अपेक्षा क्षणिक शरीर-सुखको अधिक महत्त्व देने पर दया आती। अग्नि जिस बाणस सम्पूर्ण आत्मोत्सर्गके धर्मका निष्कर्ष निकाला। मुन्होंने देखा कि यदि मनुष्य अपने आपको अर्थात् सत्यको पहचानना चाहता है, तो जैसा वह शरीरसे संबंध अनासक्त होकर अर्थात् दूसरे सब प्राणियोंको अपनी तरफसे सुरक्षित महसूस करा कर ही कर सकता है। यही अहिंसाका मार्ग है।

जिस सत्यको पहचानने लेने पर पता चलता है कि हिंसाका पाप केवल प्राण लेनेमें ही नहीं है परन्तु अपने गलत शरीरके खातिर प्राण लेनेमें है। जिससिधे जाने-पीने आविष्की प्रक्रियामें जो भी बिनास होता

है वह स्वार्थपूर्ण है और जिससिधे हिंसा है। परन्तु मनुष्य खुसे अनिवार्य मानकर सहन करता है। परन्तु यातना-पीड़ित जीवोंको नष्ट करना खुन्हींकी शान्तिके सिधे होनेके कारण हिंसा नहीं समझा जा सकता। अपने संरक्षितोंकी रक्षाके सिधे किया गया अनिवार्य विनाश भी हिंसा नहीं माना जा सकता।

दर्ककी जिस सरणीबा बडा दुःखयोग हो सकता है। परन्तु खुसका कारण यह नहीं कि दर्क दोषपूर्ण है। कारण यह है कि मनुष्यमें अपने स्वार्थ या अहंकारकी तुष्टिके सिधे अपनेको धोखा देनेका जो भी सहाना मिल जाय खुसे पकड़ केनेकी जमजात कमजोरी है। परन्तु जिस क्षतरेके कारण हमें अहिंसाके सन्धे स्वभावकी व्याख्या करनेसे बचना नहीं चाहिये। जिस प्रकार उपरोक्त विवेचनसे हम नीचे सिधे परिणामों पर पहुंचते हैं

(१) किसी हव तक दूसरे शरीरोंका नाश किये बिना अपने शरीरको कायम रखना असंभव है।

(२) सभीको कुछ जीवोंका नाश करना पड़ता है

(क) अपने शरीरोंको कायम रखनेके सिधे

(ख) अपने संरक्षितोंकी रक्षाके सिधे अथवा

(ग) कमी कमी जिनके प्राण सिधे जाते हैं उनके खातिर।

(३) अंश (२) के (क) और (ख) भागोंका अर्थ थोड़े या बहुत हव तक हिंसा है। (ग) में कोभी हिंसा नहीं है, जिससिधे वह अहिंसा है। (क) और (ख) में हिंसा अनिवार्य है।

(४) जिससिधे अेक प्रयतिशील अहिंसावादी (क) और (ख) में वर्णित कमसे कम हिंसा करेगा तो सही परन्तु अनिवार्य होने पर पूरे तथा परिपक्व विचारके बाद और खुससे बचनेके लमाम मुपाय कर केनेके वाद ही करेगा।

योग सिधिया ४-११-२६ पृ० ३८४-८५

किसी जीवित प्राणीको गुस्से या स्वार्थपूर्ण अिरादेसे पीड़ा पहुंचाना खुसका धुरा चाहना या खुसके प्राण लेना हिंसा है। जिसके विपरीत शान्त और स्पष्ट निर्णयके बाद किसी प्राणीको दुःख निःस्वार्थ भावसे

श्रीशिवरकी कृपा मानना यदि बहम हो तो वह बहम भी संग्रह करने जैसा है।

आत्मकथा, पृ० ३७३, १९५७

मेरी अहिंसा मेरी अपनी ही है। मैं जानवरोंको न मारनेका सिद्धान्त पूर्ण रूपसे स्वीकार करनेमें असमर्थ हूँ। जो पशु मनुष्यको हानि पहुँचाते या मारकर खा जाते हैं, उनका जान बचानेकी मुझमें कोभी भावना नहीं है। मैं उनका सन्तान-वृद्धिमें उहायक होना अनिष्ट समझता हूँ। विसृष्टिमें मैं पीटियों बन्दरों या कुत्तोंको नहीं दिखाऊँगा। मैं उनके प्राण बचानेके सातिर किसी मनुष्यकी जान कभी कुरबान नहीं करूँगा।

विस रंगसे विचार करते हुबे मैं विस मतीजे पर पहुँचा हूँ कि जहाँ बन्दर मनुष्यके सुखके लिये खतरा बन गये हों वहाँ मुन्हें समाप्त कर देना सम्म्य है, जैसा प्राणी-संहार धर्म हो जाता है। यह प्रश्न बुठ सकता है कि यह नियम मानव प्राणियों पर भी लागू क्यों नहीं होना चाहिये? वह विसलिये लागू नहीं किया जा सकता कि वे कितने ही घुरे हों तो भी बीसे ही हैं जैसे हम हैं। जावमीको समबानने बुद्धिकी वकित दी है, जो पशुको नहीं दी।

हरिजन ५-५-५६ पृ० १२३

(ख) शाकाहार

मेरे जयालमें बकरोंके जीवनका मुख्य मनुष्यके जीवनसे कम नहीं है। मनुष्य-देहको निवाहनेके लिये मैं बकरेकी देह सेनेको उपार नहीं हाऊँगा। मैं यह मानता हूँ कि जो जीव चितना अधिक अपंग है, धुठना ही धुसे मनुष्यकी कूरतासे बचनेके लिये मनुष्यका व्यायम पानेका अधिक अधिकार है।

आत्मकथा पृ० २०४-०५, १९५७

सही हो या गलत पर मैंने यह धर्म माना है कि मनुष्यको मांस-विक नहीं खाना चाहिये। जीवनके साधनोंकी भी सीमा होती है। कुछ बालें बीसी हैं जो जीनेके लिये भी हमें नहीं करनी चाहिये।

आत्मकथा पृ० २१४, १९५७

मैं नहीं मानता कि मांसाहार हमारे लिये किसी भी स्थितिमें और किसी आबोहवामें जहां मनुष्य मामूली तौर पर जिनदा रह सकता है जरूरी है। मैं मांसाहारको मानव-जातिके लिये अनुपयुक्त समझता हूँ। अगर हम पशु-जगतसे खेप्ट है तो हम खुशकी नकल करके मूल करते हैं। मनुजव सिखाता है कि जो अपने बिकारोंका दमन करना चाहते ह भुनके लिये मांसाहार अनुपयुक्त है।

परन्तु चरित्र-निर्माण या मिश्रिय-वसनमें आहारके महत्वको बहुत बढ़ा-बढ़ाकर समझना अनुचित है। आहार भेक प्रबल तत्व है और खुशकी अपेक्षा नहीं करना चाहिये। मगर जैसा भारतमें अक्सर होता है, सारा धर्म ही आहारमें मान बैठना जुतना ही गलत है जितना आहारके मामलेमें संयमकी कुछ भी परवाह न करना और अपनी रुचिको बेरुगाम छोड़ देना है। शाकाहार हिन्दू धर्मकी अनुपम देनोंमें से भेक है। खुसे यों ही नहीं छोड़ा जा सकता। जिसलिये यह भूख सुधार केना जरूरी है कि शाकाहारने हमें मन या सरीरसे कमजोर और निष्क्रिय अथवा जड़ बना दिया है। बड़ेसे बड़े हिन्दू सुधारक अपनी पीढ़ीमें सबसे सक्रिय व्यक्ति रहे हैं और वे सबके सब शाकाहारी रहे हैं। शंकर या बयानन्दके युगमें खुनसे अधिक क्रियाशीलताका परिषय कौन वे सका ?

अपने आहारका पुनाव अद्धा पर आधार रखनेवासी चीज नहीं है। यह तो जैसा सवाल है जो हरजेकको बुद्धिसे तय करना चाहिये। खास तौर पर परिषममें शाकाहार पर काफी साहित्य पैदा हो गया है, जिसका अध्ययन करके कोबी भी सत्यका शोभक लाभ भुठा सकता है। अनेक मसहूर डॉक्टरोंने जिस साहित्यमें योग दिया है। यहां भारतमें शाकाहारके लिये हमें किसी प्रोत्साहनकी जरूरत नहीं हुभी, क्योंकि खुसे आज तक अत्यंत बांछनीय और आवरणीय वस्तुने रूपमें स्वीकार किया गया है।

यंग विडिया ७-१०-२६ पृ० ३४७

यह याद रखना चाहिये कि केवल जीववयासे हम अपने भीतरी पडरिपुओं को अर्थात् काम क्रोध लोभ मोह मद और मत्सरको नहीं जीत सकते। जिसने अपने आपको पूरी तरह जीत लिया हो जो सबके

प्रति सद्भाव और प्रेमसे परिपूर्ण हो और जिसके सब काम प्रेमधर्मसे प्रेरित होते हों— वैसे आदमी मांसाहारी हो तो भी मेरा सिर मुझे सामने अत्यंत आवरपूर्वक झुका जायगा। दूसरी ओर जो आदमी रोक कीड़े-मकोड़ोंको छिछाटा हो और जीबहिंसा न करता हो, परन्तु काम और क्रोधमें डूबा हुआ हो, खुसकी पीवदयामें कोखी छार नहीं है। वह जेक यांत्रिक कर्म है जिसका कोन्मी आध्यात्मिक मूह्य नहीं। वह भिसे भी घुरी बीज मानी भीठरी अष्टाचारको छिपानेके सिमे वंभका परवा हो सकता है।

हरिजन, १५-९-४०, पृ० २८५

(ग) दूध

“जब तक आप दूध न लेनी, मैं आपके सरीरको फिरसे हूष्ट-गुष्ट न बना सकूंगा। मुझे पुष्ट बनानेके लिये आपको दूध लेना चाहिये और छोहे तथा आर्सेनिककी पिचकारियां लेनी चाहिये। यदि आप भिठना करें तो आपके सरीरको पुनः पुष्ट करनेकी गारण्टी मैं लेता हूँ।”

मैंने जवाब दिया “पिचकारी रुगाजिये लेकिन दूध मैं नहीं सूना।”

डॉक्टरने पूछा “दूधके सम्बन्धमें आपकी प्रतिज्ञा क्या है?”

“मह जानकर कि गाय-भैंस पर फूँकेकी क्रिया की जाती है मुझे दूधसे नफरत हो गयी है। और यह तो मैं सदासे मानता रहा हूँ कि दूध मनुष्यका आहार नहीं है। भिसेलिये मैंने दूध छोड़ दिया है।”

यह सुनकर कस्तूरबाजी, जो मेरी छटियाके पास खड़ी थी, बोल मुठी “तब तो बकरीका दूध आप जरूर ले सकते हैं।”

डॉक्टर बोले “आप बकरीका दूध लें तो मेरा काम बन जाय।”

मैं भिरा। सत्याग्रहकी सड़ाबीके मोहने मेरे अन्दर जीनेका सोम

पैदा कर दिया, और मैंने प्रतिज्ञाके अक्षरार्थके पाछनसे संतोष मानकर खुसकी आत्माका हनन किया। यद्यपि दूधकी प्रतिज्ञा लेते समय मेरे सामने गाय-भैंस ही थीं, फिर भी मेरी प्रतिज्ञा दूधमात्रकी मानी जानी चाहिये। और, जब तक मैं पसुके दूधमात्रको मनुष्यके आहारके रूपमें निषिद्ध मानता हूँ तब तक मुझे खुटे लेनेका अधिकार नहीं, भिसे बाठको पानते हुवे भी मैं बकरीका दूध लेनेको तैयार हो गया। सरयके पुजारीने

सत्याग्रहकी सद्गामीके लिये जीनेकी मिच्छा रखकर अपने सत्यको साक्षित किया।

अहिंसाकी दृष्टिसे आहारके मेरे प्रयोग मुझे प्रिय हैं। धुनसे मुझे मानस्य प्राप्त होता है। वह मेरा विनोद है। परन्तु बकरीका दूध मुझे आम भिस दृष्टिस नहीं अक्षरता। वह अक्षरता है सत्यकी दृष्टिसे। मुझे असा भास होता है कि मैं अहिंसाको भितना पहचान सका हूँ सत्यको मुझे अधिक पहचानता हूँ। मेरा अनुभव यह है कि अगर मैं सत्यको छोड़ दूँ, तो अहिंसाकी भारी गुत्थियाँ मैं कभी सुलझा नहीं सकूँगा। सत्यके पाठनका अर्थ है लिये हुये व्रतके शरीर और आत्माकी रक्षा धार्य और भावार्थका पालन। मुझे हर दिन यह बात सटकती रहती है कि मैंने दूधने बारेमें व्रतकी आत्माका — भावार्थका — हनन किया है। यह जानते हुये भी मैं यह नहीं जान सका कि अपने व्रतके प्रति मेरा धर्म क्या है, अथवा कहिये कि मुझमें उसे पालनेकी हिम्मत नहीं है। दोनों बातें एक ही हैं, क्योंकि शंकाके मूलमें अज्ञानका अभाव रहता है। हे जीस्वर तू मुझे अज्ञान दे।

आत्मकथा, ३९४-९५, १९५७

(घ) प्राणियोंकी धीर-फाड़

मैं जीवोंकी धीर-फाड़से सम्पूर्ण अन्तःकरणसे घृणा करता हूँ। कथित विज्ञान और मानवताके नाम पर निर्दोष प्राणियोंके अक्षम्य संहारसे मुझे नफरत है और निर्दोष रक्तसे सने हुये समान वैज्ञानिक आविष्कारोंको मैं बिसकुल निकम्मे समझता हूँ। अगर कोभी कहे कि जीवोंकी धीर-फाड़के बिना रक्त-संचारके सिद्धान्तका पता नहीं लगाया जा सकता था तो मैं कहूँगा कि उसके बिना मानव-जातिका काम अच्छी तरह चल सकता था। और मुझे वह दिन साफ ठौर पर आता दिखानी दे रहा है जब परिचमके भीमानवार वैज्ञानिक ज्ञानप्राप्तिके मौजूदा तरीकों पर पाबन्दियाँ लगायेंगे। भविष्यमें केवल मानव-परिवारका ही नहीं बल्कि सभी प्राणियोंका लिहाज रखा जायगा और जैसे हमें धीरे धीरे किन्तु निश्चित रूपमें पता लग रहा है कि यह मान बैठना भूल है कि हिन्दू अपने समाजके पाँचवें

प्रति सद्भाव और प्रेमसे परिपूर्ण हो और जिसके सब काम प्रेमधर्मसे प्रेरित होते हों—वैसा आदमी मांसाहारी हो तो भी मेरा सिर उसके सामने अत्यंत आदरपूर्वक झुक जायगा। दूसरी ओर जो आदमी रोष कीड़े-मकोड़ोंको बिछाता हो और वीरहिंसा न करता हो, परन्तु काम और क्रोधमें डूबा हुआ हो उसकी पीठवयामें कोभी सार नहीं है। वह-बेक यांत्रिक धर्म है जिसका कोभी आध्यात्मिक मूल्य नहीं। वह जिससे भी बुरी पीठ मानी भीतरी भ्रष्टाचारको छिपानेके लिये बंधका परदा हो सकता है।

हरिवन, १५-९-४०, पृ० २८५

(ग) दूध

“जब तक आप दूध न लेंगे मैं आपके शरीरको फिरसे हृष्ट-मुष्ट न बना सकूंगा। मुझे पुष्ट बनानेके लिये आपको दूध लेना चाहिये और कोहे तथा आर्सेनिककी पिचकारियां सेनी चाहिये। यदि आप जितना करें तो आपके शरीरको पुन पुष्ट करनेकी गारण्टी मैं लेता हूँ।”

मैंने जवाब दिया “पिचकारी छगाधिये लेकिन दूध मैं नहीं लूंगा।”

डॉक्टरने पूछा “दूधके सम्बन्धमें आपकी प्रतिज्ञा क्या है?”

यह जानकर कि गाय-भैंस पर फूँकेकी क्रिया की जाती है मुझे दूधसे नफरत हो गयी है। और यह तो मैं सदासे मानता रहा हूँ कि दूध मनुष्यका आहार नहीं है। जिसलिये मैंने दूध छोड़ दिया है।

यह सुनकर कन्सूरबाजी, जो मेरी सटियाके पास सड़ी थी बोल मुठी “तब तो बकरीका दूध आप जकर ले सकते हैं।”

डॉक्टर बोले “आप बकरीका दूध लें तो मेरा काम बन जाय।”

मैं गिरा। सत्याग्रहकी सझाभीके मोहने मेरे अन्दर जीनेका क्रोध पैदा कर दिया, और मैंने प्रतिज्ञाने अक्षरार्थके पाठनसे संतोष मानकर उसकी आत्माका हनन किया। यद्यपि दूधकी प्रतिज्ञा लेते समय मेरे सामने गाय-भैंस ही थीं, फिर भी मेरी प्रतिज्ञा दूधमात्रकी मानी जानी चाहिये। और, जब तक मैं पशुके दूधमात्रको मनुष्यके आहारके रूपमें निषिद्ध मानता हूँ, तब तक मुझे उसे लेनेका अधिकार नहीं, जिस बातको जानते हुये भी मैं बकरीका दूध लेनेको तैयार हो गया। उसके पुजापूजे

सत्याग्रहकी लड़ाईके लिये पीनेकी विच्छा रखकर अपने सत्यको स्थापित किया।

अहिंसाकी दृष्टिसे आहारके मेरे प्रयोग मुझे प्रिय हैं। खुनसे मुझे आनन्द प्राप्त होता है। यह मेरा विनोद है। परन्तु बकरीका दूध मुझे आज भिन्न दृष्टिसे नहीं अस्वस्वता। यह अस्वस्वता है सत्यकी दृष्टिसे। मुझे असा भास होता है कि मैं अहिंसाको भिन्नता पहचान सका हूँ सत्यको मुझसे अधिक पहचानता हूँ। मेरा अनुभव यह है कि अगर मैं सत्यको छोड़ दूँ तो अहिंसाकी भारी गुत्थियाँ मैं कभी सुलझा नहीं सकूँगा। सत्यके पालनका अर्थ है, लिये हुये व्रतके शरीर और आत्माकी रक्षा, शब्दाध्य और भावार्थका पालन। मुझे हर दिन यह बात कटकती रहती है कि मैंने दूधके बारेमें व्रतकी आत्माका — भावार्थका — हनन किया है। यह जानते हुये भी मैं यह नहीं जान सका कि अपने व्रतके प्रति मेरा धर्म क्या है, अपना कहिये कि मुझमें उसे पालनेकी हिम्मत नहीं है। दोनों बातें एक ही हैं क्योंकि बाँकाके मूलमें अज्ञानका अभाव रहता है। हे भीस्वर, तू मुझे अज्ञान दे।

आत्मकथा, ३९४-९५ १९५७

(घ) प्राणियोंकी पीर-फाड़

मैं पीरोंकी पीर-फाड़से सम्पूर्ण अन्तःकरणसे धृणा करता हूँ। कथित विज्ञान और मानवताके नाम पर निर्दोष प्राणियोंके अज्ञान्य संहारसे मुझे भ्रम है और निर्दोष स्वतःसे सने हुये तमान वैज्ञानिक आभिकारोंको मैं बिलकुल निकम्मे समझता हूँ। अगर कोई कहे कि पीरोंकी पीर-फाड़के बिना स्वतः-संचारके सिद्धान्तका पता नहीं लगाया जा सकता या तो मैं कहूँगा कि मुझसे बिना मानव-जातिका काम अच्छी तरह चल सकता था। और मुझे यह दिन साफ ठीर पर आटा दिखायी दे रहा है जब परिवर्तनके भीमानदार वैज्ञानिक ज्ञानप्राप्तिके मौजूदा तरीकों पर पावनियाँ स्थापित होंगी। भविष्यमें केवल मानव-परिवारका ही नहीं बल्कि सभी प्राणियोंका सिद्धान्त रखा जायगा और जैसे हमें धीरे धीरे किन्तु निश्चित रूपमें पता चल रहा है कि यह मान बैठना भूल है कि हिन्दू अपने समाजके पाँचों

भागको पतित रखकर फस-फूल सकते हैं या पश्चिमके भोग पूर्वी और अफीकी राष्ट्रोंके शोषण और पतन पर धुंसे खुठ सकते हैं या अपना पोषण करते रह सकते हैं, वैसे ही समय पाकर हम यह अनुभव कर लेंगे कि निम्न श्रेणीके जीवों पर हमारा जो प्रभुत्व है वह धुनके संहारके लिये नहीं, परन्तु धुनके और हमारे समान कामके लिये है। कारण मुझे यकीन है कि वैसे मेरे आत्मा है वैसे ही धुनके भी है।

यंग विडिया १७-१२-२५ पृ० ४४०

पृथ्वीको नमस्कार करके हम पृथ्वीको तरह ही नम्र बनना सीखते हैं या हमें सीखना चाहिये। जो प्राणी धुंसे रौंदते हैं धुनका भी वह पालन करती है। जिसलिये वह विष्णुकी पत्नी होने कायक ही है। मेरी राममें यह कल्पना सत्यके विरुद्ध नहीं है। अछटे वह सुन्दर है और अश्वरकी सर्वभ्यापकताके विचारसे पूरी तरह समत है। अश्वरके लिये कोमी पस्तु षड नहीं है। हम तो मिट्टीके ही बने हुए हैं। मिट्टी न हो तो हम भी न हों। मैं अश्वरको पृथ्वीके द्वारा अनुभव करके अश्वरके साथ अधिक निकटता अनुभव करता हूँ। पृथ्वीको नमस्कार करते ही मैं अश्वरके प्रति अपना धुण महसूस करता हूँ। और अगर मैं अथ माताका सपूत हूँ तो मैं तुरन्त अपनेको मिट्टी बना संगी और न केवल छोटे-से-छोटे मानव प्राणियोंके साथ ही बल्कि सृष्टिके निम्नतम जीवोंके साथ भी आत्मीयता स्थापित करनेमें आनन्द प्राप्तूंगा। क्योंकि मिट्टीमें मिल जानकी धुनही जो गति है वही गति मेरी भी होगी। और अगर जिस भौतिक शरीरके बिना केवल जीवका विचार किया जाय तो सृष्टिका निम्नतम प्राणी ठीक धुतना ही अविनाशी है जितनी मेरी आत्मा है।

बापूके पत्र मीराके नाम पृ० १५१, १९५१

२७

अपवास और प्रार्थना

यह एक प्राचीन प्रथा है। सन्ने दिलसे किया हुआ अपवास शरीर, मन और आत्मा तीनोंको शुद्ध करता है। वह भिन्नियोंका दमन करता है और भुस हृद तक आत्माको मुक्त करता है। सन्ने दिलसे की हुयी प्रार्थना अमत्कार पैदा कर सकती है। वह और भी अधिक शुद्धिके लिये आत्माकी गहरी पुकार है। जिस प्रकार प्राप्त की हुयी शुद्धताका जब किसी बुद्ध हेतुके लिये उपयोग किया जाता है तब वह प्रार्थना बन जाती है। जिसलिये अपवास और प्रार्थना शुद्धिकी एक अत्यंत बलशाली प्रक्रिया है। और जो चीज हमें शुद्ध करती है वह अवश्य ही हमें अपना कर्तव्य अधिक अच्छी तरह करने और अपना ध्येय प्राप्त करनेमें समर्थ बनाती है। जिसलिये यदि अपवास और प्रार्थना कभी कभी असफल दिखायी देते हैं तो भुसका कारण यह नहीं है कि वे निकम्मे हैं बल्कि यह है कि भुसके पीछे सच्ची वृत्ति नहीं है।

सन्ने अपवासके साथ साथ शुद्ध विचारोंको ग्रहण करनेकी तैयारी और शैतानके सारे प्रलोभनोंसे लड़नेका संकल्प होना चाहिये। किसी तरह सच्ची प्रार्थना समझमें आने सायक और निश्चित होनी चाहिये। भुसके साथ हमारा अकाकार होना जरूरी है। मन सब तरफ भटकता हो तो माया फेरना और भवानसे भीस्वरका नाम लेना बिलकुल बेकार है।

योग विद्विया २४-३-२० पृ० १

मेरा धर्म मुझे यह सिखाता है कि जब कभी ऐसा कष्ट हो जिसे हम दूर नहीं कर सकें तब हमें अपवास और प्रार्थना करनी चाहिये।

योग विद्विया, २५-९-२४ पृ० ३१९

(क) उपवास

यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मित्रियोंका धर्म बितना होता है आत्माकी ताकत खुदनी ही बढ़ती जाती है।

यग विडिया, २३-१०-२४, पृ० १५४

जो मनुष्य श्रीस्वरसे डरकर चमत्ता चाहता है, जो श्रीस्वरके प्रत्यक्ष दर्शन करनेकी जिच्छा रखता है, जैसे साधक और मुमुक्षुके लिये अपने आहारका चुनाव—त्याग और स्वीकार—खुदना ही आवश्यक है, बितना कि विचार और वाणीका चुनाव—त्याग और स्वीकार—आवश्यक है।

आत्मकथा पृ० २१५, १९५७

उपवासके बिना प्रार्थना नहीं हो सकती यह धर्म बिलकुल ठीक है। यहां उपवासका अर्थ अधिकसे अधिक व्यापक करना पड़ेगा। शरीरके उपवासके साथ समस्त मित्रियोंका भी उपवास करना पड़ेगा। और पीताका अस्वाहार भी शरीरका एक उपवास ही है। गीता भोजनके संयमकी बात नहीं करती, परन्तु अस्वाहार की करती है अस्वाहार हमेशाका उपवास है। अस्वाहारका अर्थ यह है कि जिस सेवाके लिये शरीर बनाया गया है सिर्फ उसके लिये शरीरको कायम रखने कायक ही साया जाय। दूसरी परीक्षा यों हो सकती है कि भोजन भी औपधिकी तरह नपी-तुसी मात्रामें, निश्चित समय पर और स्वादके लिये नहीं परन्तु शरीरके हितके लिये दिया जाय। अस्वाहारका अधिक अच्छा अनुवाद शायद 'नपी हुबी मात्रा' होगा। मुझे आर्नल्डका अनुवाद याद नहीं आ रहा है। जिसलिये पेटभर भोजन श्रीस्वर और मनुष्य दोनोंके प्रति अपराध है—मनुष्यके प्रति जिसलिये कि पेटभर खानेवाले लोग अपने पड़ोसियोंका हिस्सा छीनते हैं। श्रीस्वरकी अर्थ-व्यवस्थामें बितनी ही नृजाबिध रली गयी है कि सबको केवल औपधिकी मात्रामें रोज भोजन मिल जाय। हम सब पेटभर खानेवाले हैं। आवश्यक औपधिके रूपमें भोजनकी निश्चित मात्रा स्वभावतः खान लेना बहुत मुश्किल काम

है, क्योंकि मां-बापकी ओरसे हमें अतिभोजनकी शिक्षा मिलती है। बादमें 'बब बिड़ियां चुग गर्बीं खेत' वाली बात हो जाती है तब हममें से कुछ लोगोंको ज्ञान होता है कि भोजन स्वाद लेनेके लिये नहीं परन्तु शरीरको वासके छीर पर पाछनेके लिये बनाया गया है। अुसी क्षणसे स्वादके लिये खानेकी पैतृक और डाली हुयी आदतके खिलाफ जबरदस्त फड़ाखी शुरू हो जाती है। किसीलिये बीच-बीचमें पूरे और सदा आंशिक अपवासोंकी जरूरत है। आंशिक अपवास ही गीताका अल्पाहार या मिठाहार है।

बापूके पत्र मीराके नाम पृ० २५०-५१ १९५१

अल्पका अर्थ है काफीसे कम। काफी क्या है यह अनुमानका विषय है और जिसलिये हमारे अपने ही मनकी कल्पना है। सत्यभक्त मनुष्यने यह जानकर कि मनुष्य सदा शरीरके प्रति आसक्त होता है अुस आसक्तिको मिटानेकी दृष्टिसे कहा कि अुसके विचारसे जिसना भोजन काफी हो अुससे थोड़ा कम लेना चाहिये। तब कहीं यह संभव होया कि वह जिसना सचमुच काफी हो अुतना ही भोजन ले। अिस प्रकार जिसे अकसर हम अल्प समझते हैं संभव है वह काफीसे ज्यादा हो। कम खानेके कारण जिसने लोग कमजोर रहते हैं अुनसे अधिक लोग ज्यादा मा गरस्त भोजनके कारण रहते हैं। अगर हम अुचित भोजन चुन लें, तो यह देखाकर आश्चर्य होता है कि किसनी थोड़ी मात्रा काफी हो जाती है।

बापूके पत्र मीराके नाम पृ० २६३ १९५१

सकल्यके बिना केवल शरीरके अपवासका कोयी अर्थ नहीं है। शारीरिक अपवास आन्तरिक अपवासका हार्मिक स्वीकार, सत्य और केवल सत्यको प्रकट करनेकी अव्यय आकांक्षाका परिभाषक होना चाहिये।

हरिजन १-५-३३

मैं जानता हूँ कि अयर मैं अपने सुधारके लिये अपने उप, अपवास और प्रार्थना पर आभार रखूँ तो यह प्रयत्न व्यर्थ होगा। परन्तु यदि मे पैसी मुझे आशा है, बेशक साधक आत्माके अपने सर्जनहारकी गोदमें

अपना यका भुवा सिर रख देनेकी आज्ञाके प्रतीक हों तो कुनका अपार मूल्य है।

हरिजन १८-४-'३६, पृ० ७७

जब विन्दियाँ हमारे लिखाफ मित्रोह करने लयें सब कुनका धमन बरूरी है लेकिन जब विन्दियाँ हमारे यशमें आ आयें और सेवाका साधन बनायीं या सकें सब कुनका धमन पाप है। दूसरे दृष्टीमें, विन्धियधमनमें अपने आपमें कोयी पुष्य नहीं है।

हरिजन २-११-'३५, पृ० २९९

हिन्दू धर्मग्रथोंमें कुपवासके कुवाहरण भरे पड़े हैं और परासा निमित्त पाते ही हजारों हिन्दू आज भी कुपवास करते हैं। यही वेक वस्तु है जो कमसे कम हानि करती है। जिसमें सक नहीं कि हरबेक अच्छी धीबकी तरह कुपवासोंका भी दुस्पयोग होता है। यह अनिवार्य है। कुंकि कभी कभी भलाभीकी आड़में बुराभी की जाती है, जिसलिखे हम भलाभी करना नहीं छोड़ सकते।

संसारभरमें विन्धिय-धमनको आध्यात्मिक प्रगतिकी भेक शर्त माना गया है। सम्पूर्ण कुपवास स्व का सम्पूर्ण त्याग है। यह सबसे सख्नी प्रार्थना है। "मेरा जीवन से से और असा कर कि वह सवा केवल तेरे लिखे ही हो" यह कोयी मौखिक या केवल आसकारिक वचन नहीं है नहीं होना चाहिये। यह सो परिणामकी परवाह न करते हुबे, सुखीसे और मनमें कोयी भी बुराव न रखकर किया जानेवासा समर्पण है। अन्न और जल तक न लेना केवल प्रारंभ-भाव है, समर्पणका सम्बुतम भाग है।

व्यक्तिगत और साम्बन्धिक दोनों प्रकारके कुपवासोंमें मेरा महत्त विश्वास है।

हरिजन १५-४-३३ पृ० ४

जब मैं पहलेसे भी प्यावा अच्छी तरह यह जानता हूँ कि कुप वास कितना ही अल्प हो प्रार्थनाके लिखे वह बरूरी है। मुसके बिना

प्रार्थना नहीं हो सकती। और उस अपवासका सम्बन्ध केवल जिह्वासे नहीं परन्तु सभी अन्द्रियों और अंगोंसे है। प्रार्थनामें पूरी तरह सीन होनेका अर्थ यह है कि सारी शारीरिक प्रवृत्तियाँ उस समय तक बिसकुल बन्द रहें, अब तक कि प्रार्थना हमारी धारी हस्ती पर पूरी तरह छा न जाय हम तमाम शारीरिक कर्मोंसे ऊपर न उठ जायँ और पूर्णतः अनासक्त न हो जायँ। यह स्थिति अन्द्रियोंके सतत और स्वेच्छा पूर्वक दमनके बाद ही आ सकती है। इस प्रकार अपवास-मात्र यदि वह कोई आध्यात्मिक कर्म है अथवा धुत्कट प्रार्थना या उसकी तैयारी है। यह आत्माकी भगवत्-सत्त्वमें समा जानेकी मुक्त्यकारुसा है।

हरिजन, ८-७-३१ पृ० ५

(क्ष) प्रापना

प्रार्थना धर्मकी आत्मा और मुसका सार है। जिसलिये प्रार्थना मानव-जीवनका धर्म होना चाहिये क्योंकि कोई मनुष्य धर्मके बिना भी नहीं सकता।

संग अश्विया २३-१-३० पृ० २५

भीष्मके सहस्र नाम हैं या यों कहिये कि वह नाम-रहित है। हमें जो भी नाम पसन्द हो उसीसे उसकी पूजा या प्रार्थना कर सकते हैं। कुछ लोग उसे राम कहते हैं, कुछ कृष्ण और कुछ खीम कहते हैं और कुछ उसे गौड कहते हैं। सब उसी परम तत्त्वकी पूजा करते हैं परन्तु जैसे सब आहार सबको अनुकूल नहीं पड़ते वैसे सब नाम सबको नहीं पंघते। हरअेक अपने अपने संस्काराके अनुसार अपना प्रिय नाम चुन लेता है और वह अन्तर्यामी सर्व-शक्तिमान और सर्वज्ञ होनेके कारण हमारे भीतरी भाव जानता है और हमारी पात्रताके अनुसार हमें फल पठा है।

जिसलिये पूजा या प्रार्थना वाणीसे नहीं हृदयसे करनेकी शील है। और यही कारण है कि गूंगा तुतछानेवाला अज्ञान और मूर्ख सभी मुझे समान रूपसे कर सकते हैं। लेकिन जिनकी वाणीमें अमृत

जीते हैं। जिससिद्धे सब धर्मोंने सामान्य प्रार्थनाके सिद्धे ब्रह्म समय नियत कर दिया है। दुर्भाग्यसे प्रार्थना आजकल दमपूर्य नहीं तो निरी यांत्रिक और नाममात्रकी जकरत हो गयी है। जिससिद्धे जकरत भिन्न वातकी है कि भिन्न भक्तिके साथ सच्चा भाव हो।

जीपवरसे किसी वस्तुकी याचनाके अर्थमें निश्चित व्यक्तिगत प्रार्थना अपनी ही भाषामें होनी चाहिये। भिन्नसे अधिक मध्य याचना और क्या हा सकती है कि हम जीपवरसे यह माँगें कि हम सब प्राणियोंके साथ न्यायका बरताव करें?

योग सिद्धिया १०-१-२६, पृ० २११

मनुष्यका निश्चित हेतु यह है कि वह पुरानी आदतोंको जीते अपने भीतरकी बुराजी पर विजय प्राप्त करे और भलाभीको मुसके मुचित स्थान पर फिरसे स्थापित करे। अगर धर्म हमें वह विजय प्राप्त करना नहीं सिखाता तो कुछ नहीं सिखाता। जीवनके भिन्न सच्चेसे सच्चे साहसमें सफलताका कोई राहमार्ग नहीं है। कायरता घायब सबसे बड़ा दुर्गुण है जिससे हम पीड़ित हैं, और घायब सबसे बड़ी हिंसा भी है। वह रक्तपातसे और खेरी ही बुरसी बीजति जिन्हें आम ठौर पर हिंसाका नाम दिया जाता है अबस्य ही कहीं बड़ी हिंसा है। कारण वह जीपवरमें अज्ञान न होने और मुसके गुणोंका अज्ञान होनेसे पैदा होती है। मैं स्वयं अपना प्रमाण देकर कह सकता हूँ कि मनुष्यके पास कायरता और बुरसी तमाम बुरी पुरानी आदतों पर जाबू पानेके सिद्धे सबसे प्रबल अस्त्र वेदक हादिक प्रार्थना ही है। अपने भीतर जीपवरके होनेमें सजीव अज्ञान रहे बिना प्रार्थना हो ही नहीं सकती।

हमें अपना चुनाव कर लेना है कि हम बुराभीकी ताकतोंके साथ बोस्ती करें या भलाभीकी ताकतोंके साथ। जीपवरकी प्रार्थना करना और कुछ नहीं जीपवर और मनुष्यके बीच वह पवित्र मैत्री है जिससे मनुष्य धैरानके पंजेसे छुटकारा पा जाता है। परंतु हादिक प्रार्थना महज लब्धोंका मुष्कारण नहीं है, वह तो खेरी भीतरली समन है जो मनुष्यके प्रत्येक धर्म प्रत्येक कार्य और प्रत्येक विचारमें प्रगट होती है। जब कोई बुरा विचार मुस पर सफलतापूर्वक आक्रमण करे

एव वह जान ले कि खुसने केवल मौखिक प्रार्थना की है। यही बात बुसके मुँहसे निकलनेवाले बुरे शब्द या बुसके हाथसे होनेवाले बुरे कर्मके धारमें छागू होगी। सच्ची प्रार्थना ही बुराभियोंकी जिस त्रिमूर्तिके विरुद्ध पक्की ठार और रखा है। जिस प्रकारकी सच्ची और सजीव प्रार्थनाके पहले प्रयत्नमें ही हमेशा सफलता नहीं मिल जाती। हमें अपने ही विरुद्ध प्रयत्न करना पड़ता है, अपने ही वावजूद विश्वास करना पड़ता है, क्योंकि हमारे किये महीने ही बर्ष जैसे हैं। जिसलिये हमें प्रार्थनाकी समताका अनुभव करना हो तो हमें अपनेमें अनन्त धैर्य पैदा करना होगा। अंधकार होगा, निराशा होगी और खुससे भी बुरी बुरी चीजें होंगी, परंतु हमें भिन सबसे युद्ध करने और कायरताके बशीभूत न होने सायक साहस रखना पड़ेगा। प्रार्थना-परायण मनुष्यके लिये पीछे हटने जैसी कोसी चीज नहीं है।

मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह कोसी परियोंकी कहानी नहीं है। मैंने कोसी कारुणिक ठसवीर नहीं कींकी है। मैंने मुन पुसकोंकी गवाहीका सार ले लिया है, जिन्होंने प्रार्थनाके द्वारा अपनी अधूर्ण गतिमें आनेवासी प्रत्येक कठिनायीको पार किया है, और मैंने अपना भी मज्ज प्रमाण जोड़ लिया है कि जैसे जैसे मेरी युज्ज बढ़ती जाती है जैसे जैसे मैं यह अनुभव करता जाता हूँ कि मुझे अज्ञा और प्रार्थनासे कितनी शक्ति प्राप्त हुयी है। और ये दोनों वस्तुजें मेरे किये अेक ही हैं। मैं जिस अनुभवका हवाला ले रहा हूँ वह कुछ घटो दिनों या हफ्तो तक ही सीमित नहीं है यह अनुभव मुझे लगभग ४० बर्षोंसे लगातार मिलता रहा है। मुझे भी निराशाओंके घोर अंधकारका हार स्वीकार करने या साधनानी बरतनेकी सलाहोका और अहंकारके सूक्ष्म आक्रमणोंका अपना हिस्सा मिला है, परंतु मैं कह सकता हूँ कि मेरी अज्ञाने — और मैं जानता हूँ कि यह अभी तक बहुत पोड़ी है, कमसे कम सुतनी धकी तो नहीं है जितनी मैं चाहता हूँ — अन्तमें मुन सब कठिनायियों पर जब तक विजय प्राप्त की है। अगर हमें अपनेमें अज्ञा है, अगर हमारे भीतर प्रार्थनापूर्ण हृदय है, तो हम भीस्वर्गको प्रसोभन न दें खुसके साथ कोसी धर्त न करें। हमें अपनेको धून्यवत् धना लेना चाहिये।

अकसर बकूटी होता है, परंतु प्रार्थनाका अनुपास, ठो हो ही नहीं सकता।

राजनीतिक स्थिति पर निराशा छाड़ी रहने पर भी मैंने कभी अपनी धान्ति नहीं खोयी। सब ठो यह है कि मेरी धान्तिसे धीर्पा करनेवाले लोग मैंने देखे हैं। मैं कहता हूँ कि वह धान्ति प्रार्थनासे आती है। मैं विद्वान आदमी नहीं हूँ, परंतु मैं प्रार्थना-परामर्श मनुष्य होनेका मन्त्रापूर्वक वादा करता हूँ। मुझे जिसकी परवाह नहीं कि प्रार्थनाका स्वरूप क्या हो। जिस धारेंमें हरखेकको अपना रास्ता खुद बनाना चाहिये। परंतु कुछ मुनिरिपठ मार्ग हैं और प्राचीन गुरुजोंके बचाये हुये जित मार्गों पर चलना सुरक्षित है। प्रार्थनाके पक्षमें मैंने अपनी दिखी गवाही दे दी। अब हरखेक आदमी कोशिश करके देख ले कि रोज प्रार्थना करके वह अपने जीवनमें कोजी नमी चीज जोड़ता है या नहीं—कोयी औसी चीज जिसकी किसीसे तुलना नहीं ही सकती। •

पंग बिबिया २४-९-'३१ पृ० २७४

[यह गुजरातके छात्राळमें रहनेवाले विद्यार्थियोंके सम्मेलनमें साबरमतीमें दिये गये गांधीजीके गुजराती प्रबचनका सार है]

मुझे सुधी है कि आप मुझसे प्रार्थनाके अर्थ और मुझकी आप व्यवस्थाके बारेमें सुचना चाहते हैं।

प्रार्थना जैसे धर्मका सबसे मार्मिक अंग है वैसे ही वह मानव जीवनका भी सबसे मार्मिक अंग है। प्रार्थना या तो याचना-रूप होती है या व्यापक अर्थमें वह बीपवरते भीतरी सौ सगामेकी क्रिया है। दोनों ही सूत्रोंमें अंतिम परिणाम एक ही होता है। जब वह याचनाके रूपमें हो तब याचना आत्माकी सफाई और शुद्धिके लिये मुझके चारों ओर छिपटे हुये अज्ञान और अंधकारके आवरणको हटानेके लिये होनी चाहिये। जिसलिये जो अपने भीतर दिव्य ज्योति जगानेको ठकप रहा हो मुझे प्रार्थनाका आसरा लेना होना। परंतु प्रार्थना अर्थोंका या कानोंका व्यायाममात्र नहीं है, छाडी मंत्र-जाप नहीं है। प्रार्थनामें अर्थोंके बिना हृदयका होना व्याया अच्छा है, हृदयके अभावमें केवल अर्थोंसे काम नहीं होता। वह स्पष्ट रूपसे आत्माकी मूखको धाँव करनेके लिये होनी

चाहिये। जैसे कोयी मूसा आदमी मनचाहे भोजनमें मजा लेता है ठीक वैसे ही मूखी आत्माको हार्दिक प्रार्थनामें आनंद आता है। और यह मैं अपने और अपने साथियोंके अनुभवसे कहता हूं कि जिसने प्रार्थनाके जादूका अनुभव किया है वह लगातार कयी दिन तक आहारके बिना तो रह सकता है, परंतु प्रार्थनाके बिना अेक क्षण भी नहीं रह सकता। कारण प्रार्थनाके बिना भीतरी शांति नहीं मिलती।

अगर यह बात है तो कोयी कहेगा कि हमें अपने जीवनके हर क्षणमें प्रार्थना करते रहना चाहिये। जिसमें कोयी संदेह नहीं। परंतु हम मूल करनेवाले प्राणी हैं अेक क्षणके सिधे भी भगवानसे भीतरी छी छगानेके सिधे बाहरी विषयोंसे हटकर अन्तर्मुख होना हमें कठिन जान पड़ता है। तब हर क्षण भीस्वरसे छी छगाये रखना तो हमारे सिधे असंभव ही होगा। जिससिधे हम कुछ घंटे नियत करके भुस समय थोड़ी देरके सिधे संसारका मोह छोड़ देनेका गंभीर प्रयत्न करते हैं, अेक प्रकारसे मित्रियातीठ रहनेकी हार्दिक कोशिश करते हैं। आपने सूरवासका मजम सुना है। यह अीस्वरसे मिलनेके सिधे मूखी आत्माकी कदम पुकार है। हमारे पैमानेसे वे अेक सन्त थे परंतु अुनके अपने पैमानेसे वे घोर पापी थे। आम्प्यारिमक दृष्टिसे वे हमसे भीसों आगे थे परंतु अुन्हें अीस्वर-वियोगकी मितनी तीघ पीड़ा थी कि अुन्होंने आत्मग्लानि और निराशाके स्वरमें अपनी पीड़ा जिस तरह व्यक्त की 'मो सम कीन कुटिस लल कानी।

मैंने प्रार्थनाकी आवश्यकताकी बात कही है और भुसके द्वारा प्रार्थनाका सार भी बताया है। हमारा जन्म अपने मानव-बन्धुओंकी सेवाके सिधे हुआ है और यह काम हम अच्छी तरह नहीं कर सकते यदि हम पूरी तरहसे जाग्रत न रहें। मनुष्यके हृदयमें अंधकार और प्रकाशकी शक्तियोंमें सतत संग्राम होता रहता है और जिसके पास प्रार्थनाकी ठालका सहाय नहीं है वह अंधकारकी शक्तियाका शिकार हो जायगा। प्रार्थना करनेवाला आदमी अपने मनमें शान्तिका अनुभव करेगा और संसारके साथ भी भुसका संबंध शान्तिका होगा। जो मनुष्य प्रार्थनापूर्व हृदयके बिना सांसारिक कर्म करेगा वह स्वयं दुखी होगा और

संसारको भी दुखी करेगा। जिससिद्धि मनुष्यकी मरणोत्तर स्थिति पर प्रार्थनाका जो प्रभाव होता है, उसके सिवा भी प्रार्थनाका मनुष्यके पापिष पीडनमें असीम महत्त्व है। हमारे दैनिक कार्योंमें व्यवस्था शांति और सुसंवादिता लानेका अकेला उपाय प्रार्थना है।

जिससिद्धि दिनका काम प्रार्थनासे शुरू कीजिये और अन्तमें कितनी आरामा अंशमें कि वह शाम तक आपके साथ बनी रहे। दिनका अन्त भी प्रार्थनाके साथ कीजिये ताकि आपकी रात शांतिपूर्ण तथा स्वप्नों और दुस्वप्नोंसे मुक्त रहे। प्रार्थनाके स्वरूपकी चिन्ता न कीजिये। स्वरूप कुछ भी हो, वह भीसा होना चाहिये जिससे भगवानके साथ हमारे मनकी छी सय जाय। कितना ध्यान रखिये कि स्वरूप कैसा भी हो मगर आपके मुँहसे प्रार्थनाके शब्द निकलते समय आपका मन अघट-अधर न भटकने पाये।

मैंने जो कुछ कहा है वह आपको जब गया हो तो आपको तब तक धैर्य नहीं मायगी जब तक कि आप अपने छात्राचार्यके अधिकारियोंको अपनी प्रार्थनामें दिखवस्वी सेने और मुझे अतिवार्म बनानेको दिवस न कर देंगे। स्वतः स्वीकार किये हुअे संयममें कोधी अबरवस्वी नहीं होती। जो मनुष्य संयमसे मुक्तिका यानी भोगका रास्ता चुनता है वह विकारोंका श्रितवास ही बनेना और जो अपनेको नियमोंसे बांध लेता है, वह मुक्त हो जाता है। विश्वके सब पदार्थोंको, जिनमें सूर्य चन्द्र और तारे भी सामिल हैं कुछ नियमोंका पालन करना पड़ता है। जिन नियमोंके नियंत्रणके बिना दुनियाका काम सगभर भी नहीं चल सकता। आपका जीवनीदेह्य अपने मानव-अणुओंकी सेवा करता है। यदि आप अपने पर किसी न किसी तरहका अनुशासन नहीं लगायेंगे तो आपका सर्वनाश ही हो जायगा। प्रार्थना अके प्रकारका आपस्यक आध्यात्मिक अनुशासन है। अनुशासन और संयम ही हमें पशुओंसे अलग करता है। अगर हम सिर झुका करके चलनेवाले मनुष्य होता चाहते हैं और जीपामे नहीं बनना चाहते तो हमें यह बात समझ लेना चाहिये और अपने आपको स्वच्छासे अनुशासन और संयममें रखना चाहिये।

हम प्रार्थना करें ही क्यों? अगर भीस्वर है तो जो कुछ हुआ है या हो रहा है, उसे क्या वह जानता नहीं है? क्या उसे कर्तव्य पास कर सकनेके लिये जिस बातकी जरूरत होती है कि लोग उसकी प्रार्थना करें?

नहीं भीस्वरको याद दिखानेकी आवश्यकता नहीं। वह तो मन्त यामी है, सबके भीतर है। उसकी आज्ञाके बिना कुछ नहीं होता। हमारी प्रार्थना तो हृदयकी खोज है। प्रार्थनाके द्वारा हम अपनेको ही यह याद दिखाने हैं कि प्रभुके सहारेके बिना हम लाचार हैं। कोखी प्रयत्न प्रार्थनाके बिना सम्पूर्ण नहीं होता। प्रयत्नके साथ ही हमें निश्चय पूर्वक यह भी मानना चाहिये कि भुत्तमसे भुत्तम मामव-प्रयत्न भी धेकार है यदि उसे भीस्वरका आशीर्वाद प्राप्त नहीं है। प्रार्थना मन्नताकी प्राप्तिके लिये की गयी पुकार है। वह धात्मशुद्धिकी भीतरी खोजकी पुकार है।

हरिजन ८-६-३५, पृ० १३२

बुत्तके एक अनुयायी डॉ० फावरी खेबटाबादमें गांधीजीसे मिलने आये। सुन्होंने पूछा

“क्या प्रार्थनासे भीस्वरका मन बदला जा सकता है? क्या प्रार्थनासे उसे जाना जा सकता है?”

गांधीजीने कहा ‘प्रार्थना करते समय मैं क्या करता हूँ लिये पूरी तरह समझाना कठिन बात है। परंतु मैं आपके प्रश्नका उत्तर देनेका प्रयत्न अबश्य करूँगा। भीस्वरका मन नहीं बदला जा सकता परंतु भीस्वर जब् बेतन सभी पदार्थों और जीवोंमें है। प्रार्थनाका अर्थ यह है कि मैं अपने भीतरवाले भुत्त भीस्वरको पुकारता हूँ जगाता हूँ। हो सकता है कि मुझे जिसका बौद्धिक निश्चय तो हो परंतु कोखी मजीव अनुभूति न हो। जिसलिये जब मैं स्वराज्य या भारतकी स्वाधीनताके लिये प्रार्थना करता हूँ तो मैं भुत्त स्वराज्यको प्राप्त करनेकी या भुत्त प्राप्त करनेमें अधिकसे अधिक योग देनेकी पर्याप्त शक्तिके लिये प्रार्थना या मिच्छा करता हूँ। और मैं मानता हूँ कि प्रार्थनासे भुत्तरमें मैं वह शक्ति प्राप्त कर सकता हूँ।”

डॉ० फाबरीने कहा "तब तो आपका धुंसे प्रार्थना कहना ठीक नहीं है, प्रार्थना करनेका अर्थ याचना या मांग करना है।"

"हां यह सही है। आप कह सकते हैं कि मैं अपने आपसे, अपने अक्षय स्वल्पसे, अपनी वास्तविक आत्मासे याचना करता हूं, जिसके साथ मैं अभी तक पूर्ण खेकता स्थापित नहीं कर सका हूं। जिसलिये आप जिसका वर्णन यों कर सकते हैं कि जिस परमात्मामें सब समाने हुये हैं अथवा अपने आपको खो देनेकी सतत आकांक्षा करना ही प्रार्थना है।"

डॉ० फाबरीने पूछा 'जो जोय प्रार्थना नहीं कर सकते, उनके लिये आपका क्या कहना है?'

गांधीजीने कहा, "मैं उनसे कहूंगा कि नम्र बनो और बुद्धकी अपनी कल्पना द्वारा अपने बुद्धकी सीमित मत करो। अगर उनमें प्रार्थना करने कायक विनम्रता न होती तो करोड़ों मनुष्योंके जीवन पर उन्होंने जो राज्य किया और शास भी कर रहे हैं वह वे न कर सकते। बुद्धिसे कहीं अंधी कोन्धी असी चीज है जो हम पर और संका करनेवालों पर भी शासन करती है। उनके जीवनके माजूक मौकों पर उनकी संकाशीलता और उनका तत्त्वज्ञान उनकी मदद नहीं करते। उन्हें सहारा देनेके लिये किसी वेदुतर चीजकी अपनेसे बाहर किसी चीजकी जरूरत होती है। और जिसलिये अगर कोन्धी मेरे सामने असी पहुँची रहता है तो मैं अथसे कहता हूं जब तक तुम अपने आपको धूम्य नहीं बना छोने तब तक तुम्हें बीद्वर या प्रार्थनाका अर्थ माझूम नहीं होगा। तुममें यह समझने कायक नम्रता होनी ही चाहिये कि तुम्हारी महानता और जबरदस्त बुद्धिके बावजूद तुम बिद्वममें अेक बिन्युके समान हो। जीवनकी बातोंकी निरी बौद्धिक कल्पना काफ़ी नहीं होती। बुद्धिके लिये अगम्य आध्यात्मिक कल्पना ही असी चीज है जो मनुष्यको संतोप दे सकती है। बतवान खोगोंके जीवनमें भी माजूक समय आठ है। यद्यपि उनके चारों ओर वे सब चीजें होती हैं जो स्वयंसे खरीदी जा सकती हैं और प्रेमसे मिल सकती हैं, फिर भी अपने जीवनमें उन्हें कुछ बच सरो पर थोड़ी भी सात्त्वता नहीं मिलती। जिन्हीं बचसरो पर हमें

श्रीश्वरकी मांकी होती है खुसके वर्धन होते हैं, जो जीवनमें हर क्षण पर हमें रास्ता बता रहा है। यही प्रार्थना है।”

डॉ० फावरीने कहा 'बापका मतलब खुस चीजसे है जिसे हम सच्चा धार्मिक अनुभव कह सकते हैं और जो बौद्धिक कल्पनासे अधिक बख्तवान होता है।”

वही प्रार्थना है , यह बात गांधीजीने बितने आग्रहके साथ कही कि वह डॉ० फावरीके मनको छुजे बिना नहीं रही होगी।

हरिजन १९-८-३९, पृ० २३७-३८

प्र० — क्या यह क्यादा अच्छा नहीं होगा कि कोची आदमी श्रीश्वरकी पूजामें जो समय खर्च करता है खुसे वह गरीबोंकी सेवामें लगाये ? और यदि वह सच्ची सेवा करता है तो क्या बीसे आदमीके सिधे भक्ति और पूजा अनावश्यक नहीं हो जाती ?

खु० — जिस प्रश्नमें मुझे मानसिक आरुह्य और असेयवादकी गंध आती है। बड़ेसे बड़े कर्मयोगी भी कभी भजन या पूजाको छोड़ते नहीं। आदर्शके तौर पर यह कहा जा सकता है कि बूसरोंकी सच्ची सेवा स्वयं पूजा है और बीसे भक्तोंको भजन आदिमें समय लगानेकी जरूरत नहीं। बससमें भजन बर्षा सच्ची सेवामें सहायक होते हैं और भक्तके हृदयमें श्रीश्वरकी याद ताजी रखते हैं।

हरिजन १३-१०-४६, पृ० ३५७

(ग) रामनाम

योगकी क्रियायें मैं बिलकुल नहीं जानता। मैं जो अभ्यास करता हूँ वह मैंने बचपनमें अपनी धायसे सीखा था। मुझे भूतका डर लगता था। वह मुझसे कहा करती थी भूत जैसी कोची चीज है ही नहीं, परन्तु तुम्हें डर लगता हो तो रामनाम लिया करो। जो चीज मैंने अपने बचपनमें सीखी भुसने समय पाकर मेरे मानसिक आकाशमें बिधाल रूप धारण कर लिया है। जिस सूर्यने मुझे घने अंधकारके समय प्रकाश दिखाया है। यही सान्त्वना भेक बीसाजीको बीसाका नाम सेनेसे और भेक मुसलमानको अल्साहका नाम सेनेसे मिल सकती है। बिन सब

पस्तुओंके अकेसे फलितार्थ होते हैं और समान परिस्थितियोंमें अन्तसे अकेसे परिणाम उत्पन्न होते हैं। मितना ही है कि जब केबल बापीसे न होकर हमारे जीवनका अंग बन जाना चाहिये।

हरिजन, ५-१२-३६, पृ० ३३९

ज्ञानकी वृद्धि और आत्मके बढ़नेके साथ रामनामका अप मेरे मित्रे दूसरा स्वभाव बन गया है। मैं यहाँ तक कह सकता हूँ कि यह शब्द मेरी पवान पर न हो तो भी मेरे मनमें दिन-रात बसा रहता है। यह मेरा रक्षक रहा है और मुझे भित्तका सदा आशर रहता है।

हरिजन १७-८-३४ पृ० २१३

भीस्वरकी कृपा बल पर अंतरेगी जो अन्तकी आज्ञाका पालन करेंगे और अन्तकी सेवामें रहेंगे अन्त पर नहीं जो केबल मुंहसे रामनाम लेंगे।

योग अडिमा ८-४-३६, पृ० १११-१२

अध्वर और अन्तका कानून अके ही हैं। अिसलिये अन्तके नियमोंका पालन करना अन्तम प्रकारकी पूजा है। जो मनुष्य अन्त कानूनके साथ अके हो जाता है अन्तसे पवानसे नाम सेनेकी अकरत नहीं रहती। दूसरे शब्दोंमें अिस मनुष्यके अिये अध्वरका ध्यान सांसकी तरह स्वाभाविक हो वह अध्वरीय भावनासे अितना अंतप्रोत हो जाता है कि कानूनका ज्ञान या पालन अन्तका स्वभाव-सा बन जाता है।

हरिजन २४-३-४६, पृ० ५६

अध्वरका सच्चा भक्त प्रकृतिके पंच तत्वोंकी आज्ञाओंका बंधा धारीसे पालन करता है। अयर वह असा करता है तो कभी बीमार नहीं पड़ता। और संयोगवश कभी पड़ जाता है तो पंचतत्वकी सहायतासे अपना अिछाज कर लेता है। धारीमें रहनेवासी आत्माका यह काम नहीं है कि वह धेत केत प्रकारेण धारीको रोगमुक्त करे। जो यह मामला है कि वह धारीके अिवा कुछ नहीं है वह स्वभावत धारीकी बीमारियोंका अिछाज करानेके अिये अुनिमा भरमें अकर सगायेगा। परंतु अिसे अिस सत्यकी प्रतीति हो गयी है कि आत्मा धारीमें रहते

हुले भी भुससे भरपूर है शरीर लम्बर है जब कि आत्मा अविनश्वर है, वह पंचतत्वोंके असफल सिद्ध होने पर न तो अद्यान्त होगा न शोक करेगा। जिसके विपरीत वह मृत्युको निश्चय समझकर भुसका स्वागत करेगा। वह डॉक्टरोंके पीछे पीछे फिरनेके बजाय अपना चिकित्सक खुद ही बन जायगा। वह निरन्तर आत्माका भाव जाग्रत रखेगा और आदिसे अन्त तक मन्तर्यामीकी ही परबाह करेगा।

मैसा आदमी हर सांसके साथ भीश्वरका नाम लेगा। भुसका राम तब भी जागता होगा जब भुसका शरीर सोता होगा। वह जो कुछ करेगा खुसमें राम सदा भुसके साथ रहेगा। मैसा भक्त जिस पवित्र सायके छूट जानेको ही वास्तविक मृत्यु मानेगा।

अपने रामको साथ रखनेमें सहायक साधनके तौर पर वह भुन्हीं चीजोंको लेगा जो पंचतत्व भुसे देंगे। अर्थात् पृथ्वी वायु अल अग्नि और आकाशसे जो काम भुठाय जा सकता है भुसके लिसे वह सादेसे सादा और आसानसे आसान भुपाय काममें लेगा। यह सहायता रामनामकी पूरक नहीं है। वह तो भुसके साक्षात्कारका साधनमात्र है। असलमें रामनामको किसी सहायताकी जरूरत ही नहीं। परन्तु एक तरफ रामनाममें विश्वास रखनेका दावा करना और साथ ही डॉक्टरोंके पीछे दौड़ना ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं चल सकतीं।

एक भाषीने जो धार्मिक साहित्यके पंडित हैं रामनाम पर मेरे भुव्गार पढ़कर कुछ समय पहले मुझे लिखा कि रामनाम तो वह कीमिया है जो शरीरका पूरा रूपान्तर कर सकता है। वीर्यरक्षाको संभित धनकी सुपमा ही गयी है, परन्तु भुसे सतत बढ़नवाले अम्प्यारम-बसकी यहुती धारा बना देना और पठनको असम्भव कर देना रामनामका ही कार्य है। जैसे शरीर रक्तके बिना नहीं रह सकता वैसे आत्माको बढ़ाने अद्वितीय और शुद्ध बसकी जरूरत होती है। यह बस मनुष्यकी तमाम धारीरिक भिन्द्रियोंकी दुर्बलतामें फिरसे शक्तिका संचार कर सकता है। किसीलिसे कहा जाता है कि जब रामनाम हृदयमें बस जाता है तब मनुष्यका पुनर्जन्म हो जाता है। यह नियम बूढ़े और जबान स्त्री और पुरुष सब पर लागू होता है।

यह विद्वान् पश्चिममें भी पाया जाता है। बीसवीं विज्ञान (फिजिक्स साइन्स) में जिसकी शांति मिली है।

भारतको यह विश्वास अत्यंत प्राचीन कालसे परम्परा द्वारा मिलता आ रहा है। अतः जिस सम्बन्धमें मुझे किसी बाहरी सहारेकी जरूरत नहीं।

हरिजन, २९-६-४७, पृ० २१२

मेरी कल्पनाके रामनाम और जटार-मंतरमें कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने कहा है कि जिससे रामनाम समा किसी अद्वितीय शक्तिसे सहायता प्राप्त करना है। यह शक्ति सब पीड़ाओंको मिटानेमें समर्थ है। परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि रामनाम हृदयसे निकलना चाहिये ऐसा कहना आसान है, परन्तु जिस सत्यको पाना बड़ा कठिन है। जो भी हो मनुष्यके पानेकी यह सबसे बड़ी शीश है।

हरिजन १३-१०-४६, पृ० ३५७

मेरा राम हमारी प्रार्थनाका राम ऐतिहासिक राम नहीं है जो दशरथका पुत्र और ज्योत्स्यका राजा था। वह तिस्र अजन्मा और अद्वितीय परमेश्वर है। मैं भुसीकी पूजा करता हूँ। मैं भुसीकी सहायता चाहता हूँ और आपको भी ऐसा ही करना चाहिये। यह समान रूपसे सबका है। जिससिमें मुझे कोई कारण नहीं दीखता कि किसी मुसलमानको या और किसीको भी भुसका नाम लेनेमें आपत्ति क्यों होनी चाहिये। परन्तु श्रीदत्तको रामके रूपमें पहचाननेके सिमें वह किसी प्रकार बंधा नहीं है। यह मन ही मन अच्छाह या जुदाका नाम ले, अकर्मता, जिस तरह से कि स्वर्गीय भेकता भंग न हो।

हरिजन २८-४-४६, पृ० १११

प्र०—बातचीत करते समय या मस्तिष्कका काम करते समय या ब्रह्मानन्द चिन्तित हो जाने पर क्या कोई अपने हृदयमें रामनाम सेता रह सकता है? क्या जैसे अक्षरों पर सोम बीसा करते हैं? और अक्षर करते हैं तो कैसे?

अु० — अनुभव बताता है कि मनुष्य किसी भी समय जैसा कर सकता है नींवमें भी कर सकता है, बशर्ते कि रामनाम अुसके हृदयमें बस गया हो। अगर रामनाम सेना आवत धन गया हो तो हृदयमें अुसका जप करना अुतना ही स्वाभाविक हो जाता है जितना हृदयका ढङ्कना। जैसा न हो तो समझना चाहिये कि हमारा रामनामका जप केवल यांत्रिक क्रिया जैसा ही है, या अधिकसे अधिक अुसने हमारे हृदयका स्पर्श अुपरसे ही किया है। जब रामनाम हृषय पर प्रभुत्व स्थापित कर लेता है तब भौतिक जपका प्रस्न पैदा नहीं होता, क्योंकि अुस हासतमें वह वाणीसे परे हो जाता है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि जिस स्थितिको पहुँचनेवाले बिरले ही होते हैं।

जिसमें जरा भी शक नहीं कि रामनाममें वह सारी शक्ति है जो अुसमें बतायी गयी है। कोयी भी केवल भिच्छा करके रामनामको अपने हृषयमें नहीं बसा सकता। अुसके सिजे अुपक प्रयत्न और धीरजकी जरूरत होती है। जिस पारस पत्थरका अस्तित्व नहीं है अुसे प्राप्त करनेके प्रयत्नमें मनुष्योंने कितना धम और धैर्य स्रुटाया है? अवश्य ही श्रीश्वरका नाम अुससे अधिक मूस्यवान है और वह सदा वर्तमान रहा है।

प्र० — यदि कामकी अधिकता या आकस्मिकताके कारण कोयी निश्चित विधिके अनुसार दैनिक अुपासना न कर सके तो अुसमें कोयी हानि है? सेवा और माका दोनोंमें किसको अधिक महत्त्व दिया जाय?

अु० — सेवा या विपत्ति कुछ भी हो रामनाम शब्द नहीं होता चाहिये। अवसरके अनुसार बाहरी रूप बवल जायगा। रामनाम हृदयमें स्थायी हो चुका हो तो माकाके न होनेसे अुसमें बाधा नहीं पडती।

आश्रमके व्रत

[सन् १९३० में गांधीजीने यरवडा जेलसे साबरमती आश्रमके आश्रमवासियोंके नाम कुछ साप्ताहिक प्रवचन भेजे थे। उनमें से सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह और अस्तेय—आश्रमके चार ब्रतोंकी चर्चा करनेवासे प्रवचन यहाँ दिये जा रहे हैं। आश्रमके अन्य व्रत अलग प्रकार हैं अस्वाद, अमय, अस्पृश्यता-निवारण, शरीर-धर्म, सवर्ण-समभाव और स्वदेशी। 'मंगल-प्रभात' नामक पुस्तकमें अलग विषयों पर भी गांधीजीके प्रवचन संगृहीत हैं। उनमें से कुछ अलग पुस्तकके अन्य भागोंमें दिये गये हैं।]

व्रतोंका महत्त्व

व्रत सेना निर्बलताका नहीं किन्तु बलका सूचक है। कोसी बस्तु करना अशुचित हो तो उसे अवश्य करना जिसका नाम है व्रत और यह मनुष्यको बल देता है। जिसे व्रत न कहें और कोसी दूसरा नाम देना चाहें तो भेजे दे दें। लेकिन जो आदमी ऐसा कहता है कि जहाँ तक सम्भव होगा वहाँ तक मैं बीसा करूँगा वह या तो अपनी निर्बलता प्रगट करता है या अनिमान भले वह उसे अपनी मज्जता ही क्यों न कहे। उसके जिस कथनमें मैं तो कहूँगा कि मज्जताकी-गंध भी नहीं है। मने तो अपने जीवनमें और दूसरे कबी सोगोंके जीवनमें बीसा देखा है कि जहाँ तक सम्भव होगा वहाँ तक — यह कथन शुभ निष्कर्षोंकी सफलतामें बाहर पैसा है। जहाँ तक सम्भव होगा वहाँ तक करनेकी बात भोया अपने रास्तेमें आनेवासी पहली ही बाधाके सामने घुटने टेक देना है। मैं सत्यका पालन जहाँ तक सम्भव होमा वहाँ तक करूँगा—जिस वाक्यका कोसी अर्थ ही नहीं है। जिस तरह व्यापारमें जहाँ तक सम्भव होगा वहाँ तक अमुक रकम अमुक टापीसको चुका बी जायगी ऐसी बिट्टीको कोसी चेक या हुंडीकी तरह स्वीकार नहीं करेगा असी तरह 'जहाँ तक सम्भव होगा वहाँ तक सत्य पालनेवालेकी हुंडी बीस्वरकी पुकानमें भुमायी नहीं जा सकती।

१ मज्जतीवन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित।

भीषवर स्वयं निश्चयकी घतकी संपूर्ण मूर्ति है। यदि वह अपने कानूनसे बेक अणु भी यहाँ वहाँ टल जाये तो वह भीषवर न रह जाय। सूर्य महाघतघारी है किसीलिसे दुनियामें कास्का निर्माण होता है और पचांगोंकी रचना हो सकती है। अुसने अपनी ऐसी साज निर्माण की है कि अुसका अुदय हमेशा होता रहा है और हमेशा होता रहेगा और किसीलिसे हम अपनेको सुरक्षित मानते हैं। व्यापार-मात्रका व्यापार वचन-पालन पर है। व्यापारी बेक-दूसरेके प्रति अपने वचनका पालन न करें तो व्यापार चले ही नहीं। भिन्न तरह हम देखते हैं कि घत बेक सर्व व्यापक वस्तु है। तो फिर जहाँ हमारे अपने जीवनके नियमनका प्रबल है, भीषवर-वर्षान सिद्ध करनेका प्रबल है, वहाँ घत लिसे बिना हमारा काम कैसे चल सकता है? किसीलिसे घतकी आवश्यकताके विषयमें हमारे मनमें खंका कमी मुठनी ही नहीं चाहिये।

मंगल-प्रभाव (गु) पृ० ४२-४३ १९५४

(क) सत्य

'सत्य' शब्द सत्से बना है। सत्का अर्थ है—होना या अस्तित्व, सत्यका अर्थ हुआ—होनेका भाव या अस्तित्व। सत्यके सिवा दूसरी किसी चीजकी हस्ती ही नहीं है। परमेश्वरका सच्चा नाम ही सत् या सत्य है। किसीलिसे 'परमेश्वर सत्य है' ऐसा कहनेकी अपेक्षा 'सत्य ही परमेश्वर है' ऐसा कहना अधिक शुचित है।

भिन्न सत्यकी आराधनाके लिसे ही हमारी हस्ती है। हमारी प्रत्येक प्रकृति हमारा प्रत्येक दबासोच्छ्वास अुसीके लिसे होना चाहिये। ऐसा करना सीस लेने पर बाकी सारे नियम हमारे हाथ सहज ही लग जाते हैं और अुनका पालन भी सरल हो जाता है। सत्यके बिना किसी भी नियमका शुद्ध पालन अशक्य है।

सामान्यतः सत्यका अर्थ केवल सच बोधना ही समझा जाता है। लेकिन हमने सत्य शब्दका प्रयोग विद्यालय अर्थमें किया है। विचारमें चाणीमें और आचारमें सत्यका होना ही सत्य है।

(ख) अहिंसा या प्रेम

सत्यका सम्पूर्ण दर्शन तो जिस देहसे होना अचम्ब है। मुसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है। दैनिक बेहके द्वारा धारवत धर्मका साया स्वार नहीं हा सकता। भिसभिमे अन्तमें शब्दाके धुपयागकी आवश्यकता तो रहती ही है।

भिसीलिमे अहिंसा भिज्ञासुके हाप लनी। मुसक सम्मुन यह प्रश्न मुपस्थित हुआ कि मेरे मार्गमें जो मुसीबतें आयें मुहें मैं सहन करता भांमू, या धुनके निवारणके लिमे जो हिंसा करना आवश्यक हो जाय वह करूं और अपने मार्ग पर भागे बहूं? मुसने देखा कि यदि वह नागाकी भियामें प्रमुत्त हाता है तो वह अपने मार्ग पर आवे नहीं बड़ता है बल्कि जहां था वहीं रहता है और यदि वह संकटोंको सहन करता है तो आगे बड़ता है। हिंसाकी पहली क्रियामें ही मुसने देत किया कि जिस सत्यको वह सोच रहा है वह बाहर नहीं पर मुसके अंतरमें है। फलतः ज्यों ज्यों वह हिंसामें प्रमुत्त होता है त्यों त्यों वह अपने प्रमाणमें पीछे पड़ता जाता है और सत्य मुससे दूर हटता जाता है।

और हमें सठाते हैं। मुसके मुपद्रवसे बचनेके लिमे हम मुहें दृष्ट देते हैं। अग समय वे भाग जरूर जात हैं लेकिन जाकर वे किसी दूसरी जगह संघ स्थाते हैं। लेकिन यह दूसरी जगह भी हमारी ही है, भिसभिमे हम गोया अंधेरी यलीमें भटक जाते हैं। चोरोंका मुपद्रव बढ़ता ही जाता है, क्योंकि अन्होंने तो चोरीको कर्तव्य माना है। जिस तरह हम देखते हैं कि चोरोंका मुपद्रव सहन कर सेना ज्वादा भण्डा है वैया करनेसे मुहें गमन आयगी। जितना सहन करने पर हम यह भी धरते हैं कि चोर हमसे कोबी भिन्न नहीं है। हम सब आपसमें भाबी-भाभी हैं भिन्न हैं। मुहें दृष्ट देना मुचित नहीं। लेकिन मुपद्रव सहते जाय यह भी काफी नहीं है। भिससे तो कामरता पैदा होती है। भिसभिमे हम जिसके भागे भेक दुसरे धर्म पर पहुंचते हैं। यदि चोर हमारे भाबी-बंधु है, तो हमें जूनमें यह भावना पैदा करनी चाहिये। भिसभिमे हमें मुहें अपनातेके मुपाय सोजने चाहिये और मुसके लिमे आवश्यक कष्ट अठानेको तैयार रहना चाहिये। यही अहिंसाका भाग है। भिसमें अतरोत्तर दुःख स्वीकार

करनेकी बहुत धैर्य सीखने और पालनेकी बात आती है। और यदि हम ऐसा कर सकें तो अतमें चोर साहूकार बनता है और हमें सत्यका अधिक स्पष्ट दर्शन प्राप्त होता है। जिस तरह हम दुनियाको मित्र बनाना सीखते हैं भीश्वरकी सत्यकी महिमाका ज्यादा अनुभव करते हैं। सकट भोगते हुमे भी हमारा शांति-सुख बढ़ता है। हमारा साहस और हिम्मत बढ़ती है। हमें शाश्वत और अशाश्वतका भेद ज्यादा समझमें आता है। कर्तव्य और अकर्तव्यका भेद ज्ञात होता है। हमारा अभिमान गलत जाता है। हममें लज्जाकी वृद्धि होती है। हमारा परिग्रह अपने-आप घट जाता है और हमारे जिसका भेद दिन-प्रतिदिन कम होता जाता है।

यह अहिंसा आज अहिंसाके नामसे प्रचलित जो स्फुरत वस्तु हम देखते हैं वह नहीं है। किसीको न मारनेका भाव तो खुसमें है ही। कुबिचार-मात्र हिंसा है। मुतावली हिंसा है। मिथ्या मापण हिंसा है। द्वेष हिंसा है। किसीका बुरा चाहना हिंसा है। जगत्को जिस चीजकी आवश्यकता है खुस पर अपना कब्जा रखना भी हिंसा है। लेकिन जगत्को हम जो चाहते हैं वह भी चाहिये। हम कहीं भी चढ़े हों हमारे पांवोंके नीचे सैकड़ों जीव होते हैं वे कुचल जाते हैं। वह जगह खुनकी है। तो क्या हम आत्महत्या कर लें? तो भी छुटकारा नहीं है। हां, बिचारमें हम देखनी आवश्यक छोड़ें तो अन्तमें देह हमें छोड़ेगी। यह अमूर्छित — आसक्तिरहित — स्वल्प ही सत्यनारायण है। यह वर्धन अभीरतासे नहीं हो सकता। देह हमारी नहीं है, वह हमें मिली हुमी धरोहर है — ऐसा समझकर हम भुसका उपयोग करें और अपने मार्ग पर आगे बढ़ें।

जितना सब जान लें अहिंसाके बिना सत्यकी घोष असंभव है। अहिंसा और सत्य अके-दूसरेमें जितने ओतप्रोत हैं, मानो किसी सिक्केके या पिकनी पकरीके दो बाजू हों। अन्तमें हम किसे खुलटा कहें और किसे सीमा? फिर भी ऐसा कहना चाहिये कि अहिंसा साधन है और सत्य साध्य। साधन अपने हाथकी बात है, जिसलिखे अहिंसा हमारा परम धर्म है और सत्य परमेश्वर है। यदि हम साधनकी चिन्ता करते रहें, तो साध्यके वर्धन किसी दिन अवश्य हो जायंगे। यदि हमने जितना

मिस्त्रय कर लिया तो जग जीत लिया। हमारे धर्ममें कितने ही संकट आयें बाह्य दृष्टिसे हमारी कितनी ही हार होती दिसे लेकिन हम अपना विश्वास कायम रखकर भेक ही मंत्र जपते रहें—सत्य है। भेकवात्र सत्य ही है। सत्य ही भेक परनेस्वर है। भुसके शासनाकारका भेक ही मार्ग, भेक ही शासन है और वह है अहिंसा। भुसे हम क्यापि न छोड़ें।

भंगल-प्रभात (गु), पृ० ४-७ १९५४

(ग) ब्रह्मधर्म

जिस मनुष्यने सत्यका बरण किया है, जो धुसीकी भुपासना करता है, वह किसी दूसरी वस्तुकी आराधना करे तो अविधारी सिद्ध होजा है। सब फिर, बिकारकी आराधना तो वह कर ही कैसे सकता है? जिसके प्रत्येक कर्मका भुद्देश्य सत्यका दर्शन करना है, वह मजोत्पत्तिमें भयका घर गृहस्थी पलानेके कार्यमें कैसे पढ़ सकता है? भोग-विषाससे किसीको सत्यकी प्राप्ति हुयी हो भेजा भेक भी भुवाहरण भाज तक हमारे पास नहीं है।

भयका अहिंसाके पासमको सै, तो भुसका पूर्ण पासन ब्रह्मधर्मके बिना भयानक है। अहिंसाका अर्थ है सर्वभ्यापी प्रेम। जहाँ किसी पुरपने भेक स्त्रीको या किसी स्त्रीने भेक पुरुषको अपना प्रेम सौंप दिया वहाँ भुनके पास दूसरोंके सिधे क्या रहा? भुसका तो यही भर्षे हुआ कि 'हम वो पढ़े और बाकी सब बादमें।' पतिव्रता स्त्री पुरुषके सिधे और पत्नीव्रत पुरुष स्त्रीके सिधे अपना सर्वस्व होमनेके सिधे तैयार रहेगा भिसक्तिसे यह स्पष्ट है कि वे सर्वभ्यापी प्रेमका पासन नहीं कर सकते। वे अहित मृष्टिको अपना कुटुम्ब नहीं बना सकते क्योंकि भुनके पास 'अपना' माना हुआ भेक कुटुम्ब भौजूद है-अथवा तैयार हो रहा है। भुसमें जितनी वृद्धि होती है, सर्वभ्यापी प्रेममें भुठना ही अधिक विशेष होता है। सारी दुनियामें हम भेसा ही होता देखते हैं। भिसक्तिसे अहिंसा-व्रतका पासन करनेवाला विवाह नहीं कर सकता सब विवाहके बाहर बिकारकी वृष्टिकी भास तो सौधी ही कैसे जा सकती है?

उस जो विवाह कर बैठे हैं भुनका क्या हो? क्या भुहें सत्यकी प्राप्ति कमी होयी ही नहीं? क्या भुसमें सर्वापिण करनेकी शक्ति

कभी आयेगी ही नहीं? हम लोगोंने जिसका रास्ता निकाल ही रखा है विवाहित अविवाहितों जैसे बन जायें। जिस दिशामें जिससे अधिक सुन्दर मार्ग मैंने और नहीं देखा। जिस स्थितिका रस जिसने चखा है वह मेरे जिस कथनकी गवाही दे सकेगा। अब तो जिस प्रयोगकी सफलता सिद्ध हुमी कही जा सकती है। विवाहित स्त्री-पुरुष अकेल-दूसरेको भाभी-बहन मानने लों कि वे सारे जगत्से मुक्त हो जाते हैं। दुनियामें जितनी भी स्त्रियाँ हैं वे या तो हमारी बहन हैं, माताएँ हैं या कन्याएँ हैं—यह विचार ही मनुष्यको अकर्म भूषा जुठानेवाला बन्धनसे मुक्ति दिलानेवाला है। जिसमें पति-पत्नी कुछ जोते नहीं वस्कि अपनी पूजीमें कुछ वृद्धि ही करते हैं, वे कुटुम्बका विस्तार करते हैं और अमुका प्रेम भी विकाररूपी मूलके कट जानेसे अधिक अकुञ्चल हो जाता है। विकार मिट जाता है, जिसकिसे वे अकेल-दूसरेकी सेवा ज्यादा अच्छी तरह कर सकते हैं अमुके बीचमें कलहके अवसर कम आते हैं। जहाँ प्रेम स्वार्थी और अकांगी होता है, जहाँ कलहकी ज्यादा गुजाबिस होती है।

ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें अपर प्रस्तुत मुख्य विचार समझ लिया जाय और वह हृदयंगम हो जाय तो फिर ब्रह्मचर्यसे होनेवाले शारीरिक लाभ वीर्यसाम आदि बहुत गौण हो जाते हैं। जान-बूझकर भोग-बिलासके लिये वीर्यकी हानि करना और शरीरको निःसत्व बनाना कितनी बड़ी मूर्खता है। वीर्यका अुपयोग खोनाकी शारीरिक और मानसिक शक्ति बढ़ानेके लिये है। अुसका अुपयोग विषय-भोगमें करना तो अुसका बर्त्यन्त दुरुपयोग है और यह दुरुपयोग अनेक रोगोंकी बड़ होता है।

जैसे ब्रह्मचर्यका पालन मन, बचन और काया तीनोंके द्वारा होना चाहिये। प्रथमात्रका पालन इसी तरह होना चाहिये। जो मनुष्य शरीरको तो नियंत्रणमें रखता दीसता है, लेकिन मनसे विकारका पोषण करता है, वह मूढ़ मिथ्याचारी है, ऐसा हमने गीतामें पढ़ा है। सबका अनुभव भी यही है। मनको बिचारी रहने देनेमें और शरीरका दमन करनेमें नुकसानके सिवा और कुछ नहीं है। जहाँ मन रहता है अन्तमें शरीर भी-वहाँ सिधे विना नहीं रहता। यहाँ अेक भेद समझ लेनेकी आवश्यकता है। मनको विकारवद्य होने देना अेक बात है और हमारी

अनिच्छाके बावजूद मन गुद हठात् विकारी हो जाय या हुवा करे, यह दूसरी बात है। बुद्धके भिस विकारमें हम सहायक न हों तो अन्तमें हमारी जीत निश्चित है। शरीर हाथमें रखता है, पर मन नहीं रखता, असा हम क्षण-क्षण अनुभव करते हैं। भिससिद्धे यदि हम शरीरको सुरक्ष ही अपने अधीन कर लें और मनको अपने अधीन करनेका मित्य प्रयत्न करते रहें, तो कहा जा सकता है कि हमने अपना वर्तम्य-मासन कर लिया। पर यदि हम मनके पश हो जायें, तो शरीर और मनके बीच विरोध पुरु होता है और भिम्याचारका आरम्भ हो जाता है। जहाँ तक हम मनोविकारको बचाते रहते हैं वहाँ तक कह सकते हैं कि शरीर और मन बाना साम-साम चल रहे हैं।

भिस ब्रह्मचर्यका पासन बहुत मुश्किल समग्र अद्ययव माना गया है। भिसका कारण बुढ़ने पर असा मानुम होता है कि ब्रह्मचर्यका बहुत संकीर्ण अर्थ किया गया है। असा माना जाता रहा कि जननेन्द्रियके विकारका निरोध ही ब्रह्मचर्यका पासन है। मुझे लगता है कि यह व्याख्या अपूरी और गलत है। विषय-मात्रका निरोध ही सच्चा ब्रह्मचर्य है। जो व्यक्ति दूसरी भिक्षिषोंको यहाँ-वहाँ भटकने देकर केवल अके ही भिक्षिषको रोकनेका प्रयत्न करता है वह निष्फल प्रयत्न करता है, भिसमें क्या सम्वेह है? हम कानोंसे विकार श्रुत्पन्न करनेवासी बात सुनें आँखोंसे विकार श्रुत्पन्न करनेवासी वस्तु देखें, जीभसे विकारोत्पन्न वस्तुका स्वाद लें और भिसके बावजूद जननेन्द्रियको नियंत्रणमें रखनेकी भिष्ठा करें, यह तो अग्निमें हाथ डालकर भी न जलनेका प्रयत्न करने जैसा है। भिससिद्धे जो जननेन्द्रियको नियंत्रणमें रखनेका निरूपय करता है, उसे भिक्षिष-मात्रको विकारोके स्पर्शसे बचानेका निरूपय करना ही चाहिये। ब्रह्मचर्यकी संकुचित व्याख्यासे नुकसान हुआ है। मेरा ठो पड़ मत है और अनुभव है कि यदि हम शारी भिक्षिषोंको अकेलाप वक्षमें रखनेका अम्यास करें, तो जननेन्द्रियको बधमें रखनेका प्रयत्न सुरक्ष सफल हो सकता है।

ब्रह्मचर्यका मूल अर्थ हम सब याद रखें। ब्रह्मचर्य यानी ब्रह्मकी — सत्यकी — सोधमें सहायक चर्मा यानी बुद्धके अनुकूल आचार। भिस

मूल अर्थमें से सन्नैन्द्रिय-संयमका विशेष अर्थ निकलता है। मात्र धनने
न्द्रियके संयमका अपूरा अर्थ तो हमें मूल ही जाना चाहिये।

मंगल-प्रसात (गु) पृ० ७-१०, १९५४

ब्रह्मचर्यके सम्पूर्ण पालनका अर्थ है ब्रह्म-दर्शन। यह ज्ञान मुझे
शास्त्रोंके द्वारा नहीं हुआ। यह अब मेरे सामने क्रम-क्रमसे अनुभवसिद्ध
होता गया। मुझसे सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्रवाक्य मैंने पावमें पढ़े।
काम-वासनाके सम्पूर्ण त्यागके बिना भीश्वरका साक्षात्कार अर्धमव है।

यंग विद्विया, २४-६-२६, पृ० २३०

काम-वासनाकी विजय किसी पुरुष या स्त्रीके जीवनका सर्वोच्च
प्रयत्न है। काम पर विजय प्राप्त किये बिना अपने पर शासन करनेकी
भाषा नहीं रखी जा सकती। और आत्म शासनके बिना स्वराज्य या राम
राज्य नहीं मिल सकता। आत्म-शासनके बिना सबका राज्य वैसी ही
बोझेकी और मिराशाकी बस्तु होगी जैसे रंगा हुआ सिल्लैकेका आम
होता है। वह दीखनेमें मोहक परन्तु भीतरसे खोखला और खाली होता
है। जिस कार्यकृतनि वासनाको नहीं पीता वह हरिजन-सेवा साम्प्र
दायिक भेकटा खाबी गोरक्षा या ग्राम-सुधार आदि कार्योंसे सच्ची सेवा
करनेकी भाषा नहीं रख सकता। जैसे बड़े काम केवल बुद्धि-बलसे नहीं
किये जा सकते। धुनके लिये व्यापारिक प्रयत्न या आत्मबलकी जरूरत
होती है। आत्मबल केवल भीश्वरकी कृपासे मिलता है, और भीश्वरकी
कृपा मुझ भावमी पर कमी नहीं अंतरती जो वासनाका दास है।

हरिजन २१-११-३६ पृ० ३२१

ब्रह्मचर्यकी मेरी व्याख्याका पाद रखो। मुझका अर्थ धेक या अनेक
भिन्नियोंका दमन नहीं है परन्तु धुन सब पर पूर्ण विजय प्राप्त करना
है। दोनों स्थितियोंमें बुनियादी मेद है। मैं अपनी सारी भिन्नियोंको दबा
तो आज भी सकता हूँ परन्तु मुझे जीतनेमें मुझे कल्प लग सकते हैं।
विजयका अर्थ यह है कि वे स्वेच्छासे दासोंका काम दें। मैं धेक सादे
कष्ट रहित आपरेणसे कानके परदेमें छेद करके श्रवणेन्द्रियका दमन कर

सकता हूँ। पर यह निकम्मी चीज है। मुझे कानको बैसे ठालीम देनी चाहिये कि वह गपघप मन्दी चर्चा और मिन्दा सुननेसे बिनकार कर दे, दिव्य समीपके छिजे खुसा रहे और हजारों मील दूरसे खानेवाली सहायताकी पुकारको सुन ले। कहते हैं कि सन्त रामदासने ब्रैसा किया था। तो जननेन्द्रियोंको किस तरह काममें लिया जाय? हमारे पास जो सबसे बड़ी चर्चनात्मक शक्ति है उससे अपने पैसे हाइमासकी मूर्तियाँ पैदा करनेके बजाय हम जीवनभरके छिजे रचनात्मक कायकी सृष्टि करें।

बापूके पत्र भीराके नाम पृ० २६६-६७ १९५१ -

ब्रह्मधर्मके सहायक साधन

बेक भावी सिमते हैं

मैं दुःखी हूँ मुझे बपुसरमें काम करते हुमे रास्ते चलते हुमे, दिन-रात, पढ़ते हुमे और काम करते हुमे यहाँ तक कि प्रार्थनाके समय भी विकार सताते हैं। किस तरह भटकते हुमे मनको संयममें कैसे रखा जाय? प्रत्येक स्त्रीको अपनी माता समझना कैसे सीखा जाय? आँसोंमें से विद्युत् प्रेमकी किरणें कैसे निकलें? बुरे विचारोंका निरसन कैसे किया जाय? मेरे सामने आपका ब्रह्मधर्म पर (बरसों पहले लिखा हुआ) लेख है, परन्तु उससे मुझे सहामता नहीं मिली है।'

यह स्थिति हृदय-विदारक है। अनेकों भिससे पीड़ित है। परन्तु जब तक मन बुरे विचारोंसे सतत संप्राम करता रहता है, तब तक मिरासाका कोत्री कारण नहीं। जब आँसोंका दोष हो तो खुम्हें बन्द कर लेना चाहिये। जब कानोंका दोष हो तो खुम्हें बन्द कर लेना चाहिये। हमेया नीची निमाह करके चलना बुद्धिमत् है। फिर खुम्हें भटकनेका मौका नहीं मिलेगा। जहाँ गम्भीर धातुपीत होती हो या संदे नीठ पाये जाते हों वहाँ नहीं जाना चाहिये। जीम पर पूरा नियंत्रण होना चाहिये। मैं जानता हूँ कि जिसने जीम पर कायू नहीं पाया वह भोगकी भिच्छाको नहीं पीठ सकता। मुझे मालूम है कि जीम पर कायू पाना मुश्किल है। परन्तु जिज्ञानयसे जस्य सब भिन्द्रियों पर अपने आप कायू हो जाता

है। स्वादेन्द्रियके नियंत्रणका श्रेष्ठ नियम सब मसालोंको पूरी तरह या यथाशक्ति छोड़ देना है। जिससे भी कठिन नियम मनमें यह भावना पैदा कर लेना है कि हम जो आहार खाते हैं वह शरीरकी रक्षाके लिये है, स्वादके लिये हरगिज नहीं। हम हवाको आनन्दके लिये नहीं लेते साँसके लिये लेते हैं। हम पानी अपनी प्यास बुझानेके लिये पीते हैं, किसी तरह भोजन भूख मिटानेके लिये ही करना चाहिये। परन्तु बचपनसे ही हमें श्रेष्ठ दूसरी आदत सिखायी जाती है। हमारे माता पिता हमें तरह तरहके स्वादोंकी आवृत्त डाल देते हैं, जिसलिये नहीं कि हमें पोषण मिले बल्कि हमारे प्रेमके अतिरेकसे वे ऐसा करते हैं। जिस प्रकार हम बिगड़ जाते हैं। जिसलिये हमें अपने कालन-पालनके ही परिणामोंसे संघाम करना पड़ता है।

परन्तु काम-वासना पर काबू पानेके लिये श्रेष्ठ स्वर्ण नियम भी है। वह है रामका विषय नाम या वैसे ही कोमी मंत्र अपना।

हरभक्तको अपना प्रिय मंत्र चुन लेना चाहिये। मैंने राम शब्द जिसलिये सुझाया है कि मुझे बचपनमें उसे अपनेकी शिक्षा मिली थी। और सबसे मुझे सदा भुससे बल और पोषण मिला है। कोमी भी मंत्र चुना था। मुझे अपने समय अथवा हमारे हृदयका योग होना चाहिये। मुझे पता भी था नहीं है कि जैसे किसी मन्त्रको पूर्ण श्रद्धाके साथ अपनेसे अन्तमें सफलता अवश्य मिलेगी उसे ही दूसरे विचार मनको भटकते रहें। वह मंत्र हमारे जीवनको प्रकाश देगा और सब कष्टोंसे बचायेगा। बाहिर है कि जिस पवित्र मन्त्रोंका अुपयोग शैतिक हेतुओंके लिये हरगिज नहीं होना चाहिये। यदि अुनका अुपयोग केवल सदाचारकी रक्षामें ही किया जाय तो मिलनेवाला परिणाम धमत्कारी होगा। अवश्य ही वैसे मन्त्रको छोड़नेकी तरह रटने मात्रसे कोमी लाभ नहीं होता। हमें जिसमें अपनी सारी आत्मा अुडेलनी चाहिये। ठोठा मुझे मंत्रकी तरह रटता है। हमें अुसका अुप अवाञ्छनीय विचारोंको रोकनेकी दृष्टिसे और मन्त्रकी अुक्त क्षमतामें पूरी श्रद्धा रखकर करना चाहिये।

मंत्र सिद्धिया ५-६-२४, पृ० १८६-८७

ब्रह्मचर्यका पालन करना हो तो स्वादेन्द्रिय पर प्रमुख प्राप्त करना ही चाहिये। मैंने स्वयं अनुभव किया है कि यदि स्वादको जीत लिया

जाम तो ब्रह्मचर्यका पावन बहुत सरल हा जाता है। जिस कारण सबसे आगेसे मेरे आहार-संबंधी प्रयोग केवल अन्नाहारकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे होने लगे। मैंने प्रयोग करके अनुभव किया कि आहार थोड़ा सादा बिना मिर्च-मसालेका और प्राकृतिक स्थितिवाला होना चाहिये। ब्रह्मचारीका आहार वनपत्र फल है, जिसे अपने विषयमें तो मैंने छह वर्ष तक प्रयोग करके देखा है। जब मैं सूते और हरे वनपत्र फलों पर रहता था, तब जिस निर्बिकार अवस्थाका अनुभव मैंने किया वैसा अनुभव आहारमें परिवर्तन करनेके बाद मुझे नहीं हुआ। फलाहारके दिनमें ब्रह्मचर्य स्वाभाविक हो गया था। पुष्पाहारके कारण वह कष्ट-साध्य बन गया है।

बाह्य उपचारोंमें जिस तरह आहारके प्रकार और परिमाणकी मर्यादा आवश्यक है, असी तरह उपवासके बारेमें भी समझना चाहिये। जिन्द्रियां भित्तनी बलवान हैं कि मुझे चारों तरफ्से ऊपरसे और नीचेसे वसों दिसाओंसे घेरा जाय ता ही वे संक्राममें रहती हैं। सब जानते हैं कि आहारके बिना वे काम नहीं कर सकतीं। अतएव जिन्द्रिय-दमनके हेतुसे स्वेच्छापूर्वक किये गये उपवाससे जिन्द्रिय-दमनमें बहुत मजद मिछती है जिसमें मुझे कोभी सन्देह नहीं। कभी छोग उपवास करते हुअे भी जिसमें विफल होते हैं। अमका कारण यह है कि उपवास ही सब कुछ कर सकेगा वैसे मानकर वे केवल सूख उपवास करते हैं और मनसे छप्पन भोगोंका स्वाद सेते रहते हैं। उपवासके दिनमें वे उपवासकी समाप्ति पर क्या सायेंगे जिसके बिचारोंका स्वाद सेते रहत हैं और फिर शिकायत करते हैं कि न स्वादेन्द्रियका संमम सया और न मननेन्द्रियका। उपवासकी सच्ची अपयोगिता नहीं होती है जहां मनुष्यका मन भी देह दमनमें साम देता है। तात्पर्य यह है कि मनमें विषय-भोगके प्रति बिरक्ति आनी चाहिये। विषयकी जड़ें मनमें रहती हैं। उपवास आदि साधनोंसे यद्यपि बहुत सहायता मिछती है फिर भी वह अपेक्षाकृत कम ही होती है। कहा जा सकता है कि उपवास करते हुअे भी मनुष्य विषयासक्त रह सकता है। पर बिना उपवासके विषयासक्तको जड़मूलसे मिटाना संभव नहीं है। अतएव ब्रह्मचर्यके पावनमें उपवास अनिवार्य अंग है।

ब्रह्मधर्मका अर्थ है मन-बचन-जायासे समस्त विन्द्रियोंका संयम । जिस संयमके लिये ऊपर बताया गये त्यागोंकी आवश्यकता है, जिसे मैं दिन-प्रतिदिन अनुभव करता रहा हूँ और आज भी कर रहा हूँ । त्यागके क्षेत्रकी कोई सीमा ही नहीं है, जैसे ब्रह्मधर्मकी महिमाकी कोई सीमा नहीं है । ऐसा ब्रह्मधर्म अल्प प्रयत्नसे सिद्ध नहीं होता । करोड़ों लोगोंके लिये वह सदा केवल आदर्शरूप ही रहेगा । क्योंकि प्रयत्नशील ब्रह्मधारी अपनी त्रुटियोंका नित्य दर्शन करेगा, अपने अन्दर जोने-कोनेमें छिपकर बैठे हुए विकारोंको पहचान लेगा और उन्हें निकालनेका सतत प्रयत्न करेगा । जब तक विचारों पर कितना अंकुश प्राप्त नहीं हो जाय कि विषयके बिना भेक भी विचार मनमें न आवे तब तक ब्रह्मधर्म सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता । विचार-मात्र विकार है । उन्हें वशमें करनेका मतलब है मनको वशमें करना और मनको बशमें करना तो वायुको वशमें करनेसे भी कठिन है । फिर भी यदि आत्मा है तो यह वस्तु भी साम्य है ही । हमारे मार्गमें कठिनायियाँ आकर बाधा डालती हैं जिससे कोई यह न माने कि वह असाम्य है । वह परम अर्थ है । और परम अर्थके लिये परम प्रयत्नकी आवश्यकता हो तो खुसमें आश्चर्य ही क्या ?

परन्तु मैंसा ब्रह्मधर्म केवल प्रयत्न-साम्य नहीं है, जिसे मने (दक्षिण अफ्रीकासे) हिन्दुस्तान आनेके बाद अनुभव किया । कहा जा सकता है कि तब तक मैं पूर्णब्रह्म था । मैंने यह मान लिया था कि फलाहारसे विकार समूह नष्ट हो जाते हैं और मैं अभिमानपूर्वक यह मानता था कि अब मुझे कुछ करना बाकी नहीं है ।

पर जिस विचारके प्रकरण तब पहचाननेमें अभी देर है । जिस बीज कितना कष्ट बना आवश्यक है कि अस्व-साक्षात्कारके लिये जो लोग मेरी व्याख्याबासे ब्रह्मधर्मका पालन करना चाहते हैं, वे यदि अपने प्रयत्नके साथ ही भीस्वर पर ध्यान रखनेवाले हों तो खुनके लिये निराशाका कोई कारण नहीं रहेगा । आत्मार्थके लिये रामनाम और रामरूप ही अन्तिम साधन हैं ।

जाय तो ब्रह्मचर्यका पालन बहुत सरल हो जाता है। जिस कारण अबसे आगेके मेरे आहार-संबंधी प्रयोग केवल ब्रह्माहारकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे होने लगे। मैंने प्रयोग करके अनुभव किया कि आहार पोड़ा सादा बिना मिर्च-मसालेका और प्राकृतिक स्थितिवाला होना चाहिये। ब्रह्मचारीका आहार वनस्पत फल है, जिसे अपने विषयमें तो मैंने छह वर्ष तक प्रयोग करके देखा है। जब मैं सूखे और हरे वनस्पत फलों पर रहता था, तब जिस निर्विकार अवस्थाका अनुभव मैंने किया वैसा अनुभव आहारमें परिवर्तन करनेके बाद मुझे नहीं हुआ। फलाहारके दिनोंमें ब्रह्मचर्य स्वाभाविक हो गया था। दुग्धाहारके कारण वह कष्ट-साम्य बन गया है।

बाह्य उपचारोंमें जिस तरह आहारके प्रकार और परिमाणकी मर्यादा आवश्यक है, मूर्ती तरह उपवासके बारेमें भी समझना चाहिये। मित्रियां अतनी बलवान हैं कि उन्हें चारों तरफसे, ऊपरसे और नीचेसे दसों दिशाओंसे घेरा जाय तो ही वे अंकुशमें रहती हैं। जब जानते हैं कि आहारके बिना वे काम नहीं कर सकतीं। अतमेव अग्नि-दमनके हनुषं स्वेच्छापूषक किये गये उपवाससे अग्नि-दमनमें बहुत मान्य मिस्रती है, जिसमें मुझे कौमी संदेह नहीं। कभी सोय उपवास करते हुये भी जिसमें विफल होते हैं। मुसका कारण यह है कि उपवास ही सब कुछ कर सकेगा वैसे मानकर वे केवल स्पृक उपवास करते हैं और मनसे छपन भोगोंका स्वाद लेते रहते हैं। उपवासके दिनोंमें वे उपवासकी समाप्ति पर क्या सायेंगे इसके विचारोंका स्वाद लेते रहते हैं और फिर शिकायत करते हैं कि न स्वादेन्द्रियका समय सभा और न जननेन्द्रियका ! उपवासकी सच्ची उपयोगिता यही होती है जहां मनुष्यका मन भी देह दमनमें साध देता है। तात्पर्य यह है कि मनमें विषय-भोगके प्रति बिरक्ति आनी चाहिये। विषयकी जड़ें मनमें रहती हैं। उपवास आदि साधनोंसे यद्यपि बहुत सहायता मिलती है फिर भी वह अपेक्षाकृत कम ही होती है। कहा जा सकता है कि उपवास करते हुये भी मनुष्य विषयासक्त रह सकता है। पर बिना उपवासके विषयासक्तको बड़मूछसे मिटाना संभव नहीं है। अतमेव ब्रह्मचर्यके पालनमें उपवास अनिवार्य अंग है।

ब्रह्मचर्यका अर्थ है, मन-वचन-कायासे समस्त चिन्त्रियोंका संयम। जिस समयके लिये ऊपर बताये गये त्यागोंकी आवश्यकता है, जिसे मैं बिन प्रविविन अनुभव करता रहा हूँ और आज भी कर रहा हूँ। त्यागके क्षेत्रकी कोमी सीमा ही नहीं है जैसे ब्रह्मचर्यकी महिमाकी कोमी सीमा नहीं है। असा ब्रह्मचर्य अल्प प्रयत्नसे सिद्ध नहीं होता। कनेड़ों लोगोंके लिये वह सदा केवल आदर्शरूप ही रहेगा। क्योंकि प्रयत्नशील ब्रह्मचारी अपनी श्रुतियोंका नित्य दर्शन करेगा अपने अन्दर जोने-कोनेमें छिपकर बैठे हुये विकारोंको पहचान लेगा और उन्हें निकालनेका सतत प्रयत्न करेगा। जब तक विचारों पर अितना अंकुश प्राप्त नहीं हो जाय कि चिन्ताके बिना अेक भी विचार मनमें न आये तब तक ब्रह्मचर्य सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। विचार-भाज विकार हैं। उन्हें वशमें करनेका मतलब है मनको वशमें करना और मनको वशमें करना तो वायुको वशमें करनेसे भी कठिन है। फिर भी यदि आत्मा है तो यह वस्तु भी साध्य है ही। हमारे मार्गमें कठिनावियाँ आकर बाधा डालती हैं जिससे कोसी यह न माने कि वह असंभव है। वह परम अर्थ है। और परम अर्थके लिये परम प्रयत्नकी आवश्यकता हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या ?

परन्तु असा ब्रह्मचर्य केवल प्रयत्न-साध्य नहीं है जिसे मैंने (दक्षिण अफ्रीकासे) हिन्दुस्तान आनेके बाद अनुभव किया। कहा जा सकता है कि तब तक मैं मूर्खतावश था। मैंने यह मान लिया था कि फत्ताहारसे विकार समूल नष्ट हो जाते हैं और मैं अभिमानपूर्वक यह मानता था कि अब मुझे कुछ करना बाकी नहीं है।

पर जिस विचारके प्रकरण तक पहुंचनेमें अभी देर है। जिस बीच अितना कह देना आवश्यक है कि दीश्वर-साक्षात्कारके लिये जो लोग मेरी व्याख्यावाले ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहते हैं, वे यदि अपने प्रयत्नके साथ ही भीश्वर पर अट्टा रखनेवाले हों तो मुनके लिये निरपघातका कोमी कारण नहीं रहेगा। आस्थावाकिके लिये रामनाम और रामकृपा ही अन्तिम साधन है।

अनुभव सिखाता है कि जो अपने विकारोंका दमन करना चाहते हैं उनके लिये मांसाहार अनुकूल नहीं होता। परन्तु चरित्र-निर्माण अथवा भिक्षु-धर्ममें मांसाहारके महत्त्वको अकूटसे ध्याया समझना भूल है। आहार अथवा सहायक साधन है और भुखी भुषणा नहीं करनी चाहिये। परन्तु मांसाहार ही सारा धर्म समझ लेना, वैसे भारतमें अक्सर किया जाता है, भुखना ही मसत है त्रितना मांसाहारके सम्बन्धमें संयमकी कोमी परबाह ही न करना और अपनी भिक्षुका बेसयाम छोड़ देना।

यंग भिक्षुका ७-१०-१२६ पृ० ३४७

ब्रह्मचर्यकी सीढ़ियाँ

पहली सीढ़ी भुखी आभयकताको अच्छी तरह समझ लेना है। दूसरी सीढ़ी है धीरे-धीरे भिक्षुओंको धर्ममें करना। ब्रह्मचारीको अपनी जीभ अक्षर वसमें कर लेनी चाहिये। भुखे जीनेके लिये न कि भोगके लिये खाना चाहिये। भुखे केवल भिक्षु वस्तुमें ही देखनी चाहिये और हरभेक गंदी चीजके सामने आँसु बन्द रखनी चाहिये। यह कृतीनताका चिह्न है कि हम अपनी आँसु नीची रखकर चले और भिक्षु-भुख न देखें। किसी तरह अथवा ब्रह्मचारी कोभी अस्वीकृत या अपभ्रंश बात नहीं सुनेगा और न कोभी ठेक और भुखेक पदार्थ सुनेगा। साफ मिट्टीकी सुगन्ध बनाबटी भिक्षु-कुम्हकी सुगन्धसे कहीं भीठी होती है। ब्रह्मचर्याधीको सारे समय अपने हाथ-पैरोंको भी भुषोमी कामोंमें रगामे रखना चाहिये। यह कमी कमी भुषवास भी करे।

तीसरी सीढ़ी है शुद्ध धारणा — शुद्ध भिक्षु और शुद्ध पुस्तकें रखना।

अन्तिम परन्तु महत्त्वकी दृष्टिसे अत्यन्त श्रेष्ठ सीढ़ी है प्रार्थना। ब्रह्मचर्याधीको नित्य नियमसे पूरे दिलके साथ धमनाम लेना चाहिये और अक्षर-कृपाकी याचना करनी चाहिये।

साधारण पुरुष या स्त्रीके लिये भिक्षुमें से कोभी भी बात कठिन नहीं है। वे बिलकुल सीधी-सादी हैं परन्तु भुखी साधगी ही परेधान करनेवाली है। जहाँ भिक्षुका होता है वहाँ रास्ता बहुत सरल हो जाता है। सोर्गोंमें भिक्षुका नहीं होता जिसलिये वे अर्थ मटकते हैं। यह हकीकत

है कि संसारका आधार षोड़े या बहुत ब्रह्मचर्य या संयमके पालन पर है। जिससे जाहिर है कि वह आवश्यक और व्यापहारिक है।

यम विधिया, २९-४-२६, पृ० १५७-५८

पतञ्जलिने पांच नियम बताये हैं। जिस युगके सिध्दे वे पांचसे बढ़ाकर ग्यारह कर सिध्दे पये हैं। वे हैं अहिंसा धर्म, अस्तेय ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीर-भ्रम, अस्वाद, अभय, सर्वधर्म-समभाव स्वदेशी और अस्पृश्यता-निवारण।

यह याद रखना चाहिये कि ये सब नियम समान रूपसे महत्त्व पूर्ण हैं। अकेला भंग होनेसे सबका भंग होता है। जिससिध्दे यह अत्यावश्यक है कि सारे यम-नियमोंको अकेल समझा जाय। जिससे हम ब्रह्मचर्यका पूरा अर्थ और महत्त्व अनुभव कर सकेंगे।

हरिजन ८-६-४७, पृ० १८०

संतति-नियमन

संतति-नियमनकी आवश्यकताके बारेमें जो राय नहीं हो सकती। परन्तु अुसका अेकमात्र अुपाय जो प्राचीन कालसे चला आ रहा है संयम या ब्रह्मचर्य ही है। यह अेक अचूक और अेष्ट अुपाय है और जो अुसका प्रयोग करते हैं अुनका वह कल्याण करता है। चिकित्साशास्त्री मानव जाति पर बड़ा अहसान करेंगे अगर संतति-निग्रहके बनावटी अुपाय सोचनेके बजाय वे संयमके साधन बूढ़ निकालेंगे। संभोगका हेतु सुख नहीं संतानोत्पत्ति है। जहां संतानकी बिच्छा नहीं होती वहां संभोग अपराध है।

कृत्रिम अुपाय अुपश्रीको प्रतिष्ठा प्रदान करनेके अराबर है। अुनसे पुरुष और स्त्री सापरवाह बन जाते हैं। और, भिन अुपायोंको जो प्रतिष्ठा दी जा रही है अुससे वे पाबंदियां अस्वी ही भंग हा जायेंगी जो अोकमसने हम पर अमा रखी है। कृत्रिम अुपायोंको अपनातेका परिणाम नपुंसकता और मानसिक बिनाश होगा। यह जिसका रोगसे भी अुरा साबित होगा। अपने कर्मोंके फलसे बचनेका प्रयत्न करना अनुचित और

नैतिक है। जो आदमी अधिक खा लेता है उसके सिमे यही अच्छा है कि उसके पेटमें दर्द हो और फिर वह सुपवास करके मुझ दर्दसे मुक्त हो। वह स्वादके लोभमें मनमाना खाने और फिर पीष्टिक अथवा दूसरी औषधियां लेकर अपनी बदपरहेजीके परिणामोंसे बच निकले, यह उसके सिमे अच्छा नहीं है। यह तो और भी बुरा है कि वह अपने काम-निकाराका पोषण और भोग करे और फिर अपने कृत्योंके फलसे बच जाय। प्रकृति बड़ी कठोर है। वह अपने नियमोंके किन्ती भी भूस्म-धनका पूरा बरसा लेती है। नैतिक परिणाम नैतिक प्रतिबंधोंके पाससे ही उत्पन्न हो सकते हैं। अन्य सब प्रतिबंधोंसे यह सुरक्षित ही बिकल हो जाता है जिसके सिमे वे प्रतिबंध लगाये जाते हैं। कृत्रिम सुपायोंके प्रयोगसे पीछे बसील यह है कि भोग जीवनकी आवश्यकता है। जिससे अधिक तर्कहीन बात और क्या हो सकती है। जो लोग संतति-नियमन करना चाहते हैं मुझे पुराने लोगोंके खोजे हुये विहित सुपाय आजमाकर चलने चाहिये और यह जाननेकी कोशिश करनी चाहिये कि मुझे फिरसे कैसे जारी किया जा सकता है। भुमके सामने जिस विषयमें काफी प्रारम्भिक काम करनेके सिमे पड़ा हुआ है। बाल-विवाह आबादीके बढ़नेका बहुत बड़ा कारण है। जीवनका मौजूदा डंप भी अनियंत्रित सम्मान-वृद्धिकी सुरक्षीका एक बड़ा कारण है। अगर भिन कारणोंकी खोज की जाय और भुमका सुपाय किया जाय तो समाजका नैतिक सुस्वान होगा। अगर अर्धर खुसाही भुमकी सुपेक्षा करेंगे और कृत्रिम सुपायों पर बल पड़ये तो परिणाम नैतिक पतनके सिवा कुछ नहीं होगा। और हमारा समाज, जो विभिन्न कारणोंसे पहलेसे ही दुर्बल हो चुका है कृत्रिम सुपायोंके अपनातेसे और भी दुर्बल हो जायेगा। जिसलिमे जो लोग हस्के मनसे कृत्रिम सुपायोंका समर्पन कर रहे हैं भुमके सिमे बलम यही है कि वे जिस विषयका दुबारा अभ्यसन करें, अपनी हानिकारक प्रकृतिको रोक दें और विवाहितों और अविवा-हितों दोनोंके सिमे ब्रह्मचर्यको लोकप्रिय बनायें। संतति-नियमनका एक-मात्र सुदात और सीधा तरीका यही है।

(घ) अपरिग्रह या गरीबी

परिग्रह यानी संजय अथवा अिकट्टा करना। सत्यका घोषक, अहिंसाका मुपासक परिग्रह नहीं कर सकता। परमात्मा परिग्रह नहीं करता। मुझे जितनी चीजें 'चाहिये' अतनी वह रोजकी रोज पैदा करता है। भिसक्तिमे यदि हमारा अुसमें विश्वास हो तो हमें मानना चाहिये कि हमारे अिअे जितना चाहिये अुतना वह रोज-रोज देता है और देता रहेगा। सामु-सर्लोकिका भक्तलोकिका यह अनुभव है। रोजके अिअे जितना चाहिये अुतना ही रोज पैदा करनेके अीस्वरीय नियमका हम अानते नहीं हैं अथवा अानते अुमे भी पारले नहीं हैं। अितील्लिअे तो जगतमें विषमता और अुससे अुत्पन्न होनेवाले दुःख हम भोगते हैं। घनाडपके पर अुसके अिअे आबश्यक वस्तुअंकिके भण्डार भरे होते हैं अिमका अपभ्यय होता है और जो अापव हो जाती है। दूसरी ओर अुनके अभावमें करोडों लोग मारे-मारे अिअे हैं, अुसों मरते हैं, ठडसे ठिडूरते हैं। सब लोग अितना अुनके अिअे आवश्यक हो अुतना ही संग्रह करें, तो किसीको तंगी न सहनी पड़े और सबको संतोप रहे। आज तो दोनों ही तंगीका अनुभव करते हैं। रुअपति करोडपति होनेकी धुमें रहता है फिर भी अुसे संतोप नहीं होता। गरीब रुअपति होना चाहता है, परीबको अपने पेटके कामक मिरलेसे ही संतोप हाता नजर नहीं आता। अेकिन गरीबको अपने पेटके कामक पानेका अधिकार है और अुसे अुतना मिरु आय अीसी अ्यवस्था कर देना समाजका धर्म है। अतः अुसके और अपने संतोपके अिअे घनाडपको अिस दिपामें पहू करनी चाहिये। वह अपना अतिघाय परिग्रह छोड़ दे, तो गरीबको अुसकी आबश्यकताके अनुसार सहू अिस सजे, और दोनों पक्ष साथ-साथ संतोपका पाठ भी सीखें। आदर्श आत्य तिक अपरिग्रह तो अुसका ही होता है जा मनसे और कर्मसे दिगम्बर है। यानी वह पक्षीको तरह घर, वस्त्र और अन्नकी परबाह किये अिना अिअरष करेगा। अन्न अुसे रोज जितना चाहिये अुतना भगवान देता रहेगा। अिस अबधूत स्थितिको तो कोअी विरला ही पहू सकता है। हम सामान्य कोटिके सखाग्रही और अिज्ञामु अिस आदर्शको अ्याममें रखकर, अिस तरह बने अुस तरह, नित्य अपने परिग्रहकी आंअ-अडतास करते रहें

और मुझे कम करते रहें तो बस है। सच्ची प्रवृत्ति और सच्ची सम्यक्ताका रक्षण परिग्रहकी वृद्धि नहीं परन्तु विचारपूर्वक और भिन्नापूर्वक मुझमें की गयी कमी है। परिग्रह ज्यों ज्यों कम किया जाता है, त्यों त्यों सच्चा सुख और सच्चा संतोष बढ़ता है सेवाकी शक्ति बढ़ती है।

बिना तरह विचार करते हुमे हम आत्यंतिक त्यागके आदर्श पर जा पहुँचते हैं और घरीर जब तक है तब तक मुझका भुपयोग सेवाके सिद्ध करना सीख लेते हैं यहाँ तक कि मुझका सच्चा आहार सेवा ही हो जाता है। मुझका खाना-पीना बैठना-बैठना जागना-सोना—सारी क्रियायें सेवाके सिद्धे ही होती हैं। बिनासे से कुत्पन्न होनेवाला सुख ही सच्चा सुख है, और मीठा करनेवाला मनुष्य अन्तमें सत्यका दर्शन करेगा। जिस दृष्टिसे हम सबको अपने परिग्रहका विचार कर लेना चाहिये।

यह भी याद रखें कि वस्तुमैके अपरिग्रहकी तरह विचारोंका भी अपरिग्रह होता चाहिये। जो मनुष्य अपने दिमागमें निरर्थक ज्ञान भर रखता है वह परिग्रही ही है। जो विचार हमें भीतरसे विमुक्त करें या मुझकी ओर न ले जायं अन्तकी गिरती परिग्रहमें होगी और जिससिद्धे से त्याग्य हैं।

मगन प्रसाद (गु), पृ० १८-२० १९५४

भौतिक सुख-सुविधा और आराम एक हद तक जरूरी हैं, परन्तु मुझके वाद से सहायक होनेके बजाय बाधक बन जाते हैं। जिससिद्धे अत्यन्त आवश्यकतायें पैदा करने और उन्हें पूरा करनेका भार एक भ्रमवाक मासूम होता है। मनुष्यकी सारीरिक आवश्यकतायें और संकुचित बौद्धिक आवश्यकतायें भी एक हदके बाद रुक जानी चाहिये। अग्यमा से सारी-रिक और बौद्धिक विकास बन जाती है। मनुष्यको अपनी सारीरिक और सांस्कृतिक सुविधाओंकी व्यवस्था बिना तरह करनी चाहिये कि मुझसे मानव-सेवामें बाधा न पड़े। मुझकी सारी घबिठ्याँ जिस सेवाकार्यमें ही लगनी चाहिये।

हरिजन २९-८-१९, पृ० २२९

मेरे पास कोयी सम्पत्ति नहीं फिर भी मैं महसूस करता हूँ कि मैं संसारमें सबसे धनवान् आवामी हूँ, क्योंकि मुझे अपने सिद्धे या अपनी

सार्वजनिक संस्थाओंके लिये कमी अभाव नहीं रहा। श्रीस्वरने सदा ही समय पर मेरी पुकार सुनी है। मुझे कभी जैसे अवसर याद हैं जब मेरे सार्वजनिक कामोंके लिये छगमग धाखिरी कोड़ी खर्च हो चुकी थी। तब रूपया वहांसे आ गया जहांसे खुसकी कोड़ी आया नहीं थी। अिन कृपाओंने मुझे नम्र बनाया है और श्रीस्वर तथा खुसके भलेपनमें मेरी धडा भितनी बूढ़ कर दी है कि जीवनमें कमी मुझे धोर कष्टका सामना करना पड़े तो मैं खुसका भार भी सहन कर सकूंगा। जिस लिये दुनिया चाहे तो मेरी सम्पत्तिका त्याग कर देनेकी बात पर हंस सकती है। मेरे लिये तो यह त्याग निश्चित लाभ ही सिद्ध हुआ है। मैं चाहता हूं कि लोग मेरे संतोषमें मेरी स्पर्धा करें। वह मेरी सबसे कीमती निधि है। और जिसलिये शायद यह कहना सही है कि दरिद्रताका प्रचार तो मैं करता हूं लेकिन मैं हूं धनवान।

दिस बाब बापू से०—आर० के० प्रभु, पृ० १२० १९५४

मुझे जिसमें संदिह है कि पाषाण-युगकी तुलनामें फौलाद-युग धुम्रतिका सूचक है। यह धुम्रति मुझे प्रभावित नहीं करती। हमारी बुद्धि और दूसरी समान क्षमितां आत्माके विकासमें ही छगनी चाहिये।

यग विडिया १३-१०-'२१ पृ० ३२५

(क) अस्तेय

अस्तेय यानी चोरी न करना। जो चोरी करता है, खुसके बिपयमें बैसा नहीं कहा जा सकता कि वह सत्यको जानता है या प्रेमधर्मका पालन करता है। फिर भी हम सभी जाने-अनजाने, कम या ज्यादा मात्रामें चोरीका अपराध करते ही हैं। किसी वृत्तरेकी वस्तु खुसकी अनुमतिके बिना लेना तो चोरी है ही, परन्तु जिसे वह अपनी मानता है खुस वस्तुको भी मनुष्य चुरा सकता है। जुदाहरणके लिये कोमी पिता अपने बालकोंके जाने बिना खुनसे छिपानेके लिये कोमी बीज चुपचाप खा के तो वह चोरी ही होगी।

किसी वस्तुकी हमें आवश्यकता नहीं हो फिर भी जिसके अधिकारमें वह है खुससे—खुसकी अनुमति लेकर ही क्यों न हो—वह वस्तु

सेना भी चोरी ही है। अनावश्यक कोबी भी वस्तु नहीं लेना चाहिये। ऐसी चोरी दुनियामें ज्यादासे ज्यादा खाने-पीनेकी वस्तुओंके विषयमें होती है। मुझे समुक्त फलकी आवश्यकता नहीं है, फिर भी मैं उसे ले लेता हूँ अथवा आवश्यकतासे अधिक प्रमाणमें लेता हूँ तो वह चोरी है। भुसकी आवश्यकता वस्तुतः कितनी है, जिस बातको मनुष्य हमेशा जानता नहीं है, और प्रायः हम सब अपनी आवश्यकताओंको, वे जितनी होनी चाहिये उससे अधिक बढ़ा लेते हैं। जिस तरह हम मनजामे चोर बनते हैं। विचार करने पर हम देखेंगे कि अपनी बहुत-सी आवश्यकतायें हम कम कर सकते हैं। अस्तेय-व्रतका पालन करनेवाला अपनी आवश्यकतायें अत्यन्त कम करेगा। दुनियाकी अधिकांश गरीबी अस्तेय व्रतके भंगसे पैदा हुमी है।

भूपर बतानी गमी चोरियां बाह्य यां धारीरिक् है। जिससे सुख और आत्माको भीचे गिरानेवासी या रखनेवासी चोरी मानसिक है। मनसे दूसरेकी कोबी वस्तु प्राप्त करनेकी भिच्छा करना या भुस पर लोभकी मस्तिष्क डालना मानसिक चोरी है।

अस्तेय-व्रतका पालन करनेवाला भविष्यमें संग्रहणीय वस्तुओंकी चित्तके फेरमें नहीं पड़ेगा। अगर खोज की जाय तो अधिकांश चोरियोंकी जड़में यही मूलज भिच्छा काम करती दिखायी देगी। मात्र जो वस्तु केवल हमारे विचारमें होती है, कल उसे प्राप्त करनेके लिये हम भले-बुरे कुपायोंकी योजना करने लग जाते हैं।

और जिस तरह वस्तुकी चोरी होती है, उसी तरह विचारकी भी चोरी होती है। समुक्त उत्तम विचार हमें न सुझा हो फिर भी यदि हम अहंकारवश बीसा कहें कि यह हमें सुझा है तो हम विचारकी चोरी करते हैं। बीसी चोरी दुनियाके इतिहासमें अनेक विद्वानोंकी है और वह आज भी चलती है।

जिसलिये अस्तेय-व्रतका पालन करनेवालेको बहुत मज्ज बहुत विचारशील बहुत सावधान और बहुत साबा रहना होता है।

मेरा कहना है कि अेक प्रकारसे हम चोर हैं। अगर मैं कोमी वैसे चीज छता हूं जो मेरे मुपयोगके लिये तुरत जरूरी नहीं है और मुसे अपने पास रख छोड़ता हूं ता मुसका यही अर्थ है कि मैं मुसे किसी अन्य ब्यक्तितसे चुराकर लेता हू। मैं यह कहनेका साहस करता हूं कि यह प्रकृतिका निरपवाद रूपमें धुनियावी कानून है कि प्रकृति हमारी जरूरतोंके लिये रोज काफी पैदा करती है और अगर प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकतासे अधिक न ले तो बिस धुनियामें गरीबी न हो, बिस ससारमें कोमी भूखसे न मरे। परन्तु अब तक यह असमानता रहेगी तब तक हम चोरी करते ही रहेंगे। मैं समाजवादी नहीं हूं और भिमके पास सम्पत्ति है खुनस मैं मुसे छीनना नहीं चाहता परन्तु मैं यह जरूर कहना चाहता हू कि हममें से जो बंधकारमें से प्रकाशमें आना चाहते हैं मुहें खुब तो बिसी नियम पर बमछ करना चाहिये। मैं किसीकी भी सम्पत्ति छीनना नहीं चाहता। वैसे कहूं तो मैं अहिंसाके नियमसे विभक्त होता हूं। अगर किसीके पास मुहसे अधिक है तो भले ही हो। परन्तु जहां तक मेरे अपने जीवनके नियमनका सम्बंध है मैं जरूर कहूंगा कि मुसे बिस चीजकी जरूरत नहीं है मुसे मुझे नहीं रखना चाहिये। भारतमें तीस लाख आदमी जैसे हैं जिन्हें अेक जून खाकर संतोष कर लेना पड़ता है। आपको और मुझे जो अधिक समझवार हैं अपनी आवश्यकतामें कम करनी होंगी और स्वेच्छासे भूख भी सहनी होगी ताकि खुन लोगोंको पोषण भोजन और वस्त्र मिल सकें।

स्पीचेस अेब्ड राभिर्टिन्ड ऑफ महारमा गांधी पृ० १८४

अगर हमें अहिंसक बनना है तो हमें बिस पृथ्वी पर बैसे किसी वस्तुकी भिच्छा नहीं करनी चाहिये जो छोटेसे छोटे आदमीको नसीब न हो सके।

विय गांधीजी बिन सीओन से०—महादेव देसामी पृ० १६२, १९२८

धर्म जीवनके सब क्षेत्रोंमें व्याप्त होना चाहिये

आज मानव-प्रवृत्तियोंका सारा सप्टक एक अविभाज्य वस्तु है। आप सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और विद्युत् धार्मिक कामके अलग अलग घाने नहीं बता सकते। मुझे मानव-सेवासे भिन्न काभी धर्म मासूम नहीं है। जिससे और सब कामोंको एक नैतिक आधार मिल जाता है, जिसका मुझमें अस्यवा अभाव होता है, और मुझ अभावके कारण जीवन एक व्यर्थका शोरगुल-मात्र रह जाता है।

हरिजन २४-१२-३८ पृ० १९१

मुझे सत्य और अहिंसाको केवल व्यक्तिगत व्यवहारका विषय नहीं बल्कि समूहों समाजों और राष्ट्रोंके व्यवहारकी नींव भी बनाना होना। कमसे कम मेरा स्वप्न तो यही है, जिसे पूरा करनेका प्रयत्न करते हुये ही मुझे जीना है और मरना है। मेरी भ्रष्टा मुझे नित नये सत्य खोजनेमें मदद देती है। अहिंसा आरमाका गुण है और जीवनकी हरजेक चीजमें सभीको खुसका पासन करना चाहिये। अगर खुस पर सभी क्षेत्रोंमें अमल नहीं हो सकता तो खुसका कोभी व्यावहारिक मूल्य नहीं है।

हरिजन, २-१-४० पृ० २१

सामाजिक क्षेत्रमें

सब मनुष्य समान हैं

मेरी रायमें जन्मजात या कर्मप्राप्त श्रेष्ठता जैसी कोई चीज नहीं है। मैं अद्वैतके मूलमूठ सिद्धान्तको मानता हूँ और अद्वैतके मेरे अर्थमें किसी भी स्थितिमें श्रेष्ठताके विचारकी कोई गुंजायिष्ठ नहीं है। मैं जिस बातको पूरी तरह मानता हूँ कि जन्मसे सब मनुष्य समान हैं। सभी—चाहे वे भारतमें पैदा हुये हों या मिम्लैण्ड-अमरीकामें या किसी भी परिस्थितिमें पैदा हुये हों—भेद ही आत्मा रखते हैं। और चूँकि मेरा सब मनुष्योंकी जिस जन्मजात समानतामें विश्वास है, किसी सिद्धे में कुछ श्रेष्ठताके सिद्धान्तसे छड़ता हूँ जो हमारे बहुतसे शासक अपनेमें मान लेनेकी घुप्टता करते हैं। श्रेष्ठताके जिस सिद्धान्तसे मैं दक्षिण अफ्रीकामें पग-पग पर छड़ा हूँ और जिस जन्मजात विश्वासके कारण ही मैं अपनेको भंगी, कतवेया, जुसाहा किसान और मजदूर कहता हूँ और जैसा कहनेमें आनन्दका अनुभव करता हूँ। और जब कभी ब्राह्मणोंने अपने सिद्धे अपने जन्मके कारण जयवा बादमें प्राप्त किये हुये ज्ञानके कारण किसी श्रेष्ठताका दावा किया है तो मैं खुनसे भी छड़ा हूँ। मैं समझता हूँ कि किसी भी ब्यक्तिका अपने ही श्रेष्ठ मानव-बन्धुसे श्रेष्ठ होनेका दावा करना पुस्योचित नहीं है। जो श्रेष्ठताका दावा करता है वह भुसी क्षण मनुष्यताका दावा तो घेता है। यह मेरा निश्चित मत है।

यंग जिडिया २९-९-२७ पु० ३२९

रूप अनेक है परन्तु मुहें अनुप्राणित करनेवासी आत्मा एक है। जहाँ बाह्य श्रेष्ठताकी बड़में यह सर्वव्यापी बुनियादी श्रेष्ठता हो वहाँ अंध-नीचके भेदभावोंकी गुंजायिष्ठ कैसे हो सकती है? और यह हकीकत आपको दैनिक जीवनमें हर कदम पर मजबूर आती है। सब घमोंका अंतिम सत्य किसी मूल श्रेष्ठताको सिद्ध करना है।

हरिजन १५-१२-३३ पु० ३

व्यक्तिवाद धनाम सामाजिक दायित्व

मैं व्यक्तिगत स्वतंत्रताको महत्त्व देता हूँ परंतु आपको यह नहीं भूलना चाहिये कि मनुष्य अससमें सामाजिक प्राणी है। यह अपने मीठूदा धरने पर अपने व्यक्तिवादका सामाजिक प्रयत्नकी आवश्यकताओंके साथ मेरु बिठाकर पहुंचा है। अनियमित व्यक्तिवाद जंगली जानवरोंका धर्म है। हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक संयमके बीचका माग निकालना सीखना होगा। सारे समाजकी भलाजीके खातिर समाजकी पाबंदियोंको खुशीसे मान लेनेसे व्यक्ति और यह समाज जिसका वह धरत्य है, दोनों समृद्ध बनते हैं।

हरिजन, २७-५-१९, पृ० १४४

एक ही नैतिक गुण ऐसा नहीं है जिसका उदय केवल व्यक्तिका कल्याण हो या जिसे मितनेसे ही संतोष हो जाय। किसी तरह दूसरी ओर एक ही नैतिक अपराध ऐसा नहीं है जो वास्तविक अपराधीके सिवा और बहुतसे लोगों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव न डालता हो। जिसलिये किसी व्यक्तिका अच्छा या बुरा होना खुशीके सोचनेकी बात नहीं है, बल्कि वास्तवमें सारे समाजके नहीं सारे संसारके सोचनेकी बात है।

अधिकतर रिस्तीजन से०-मो० क० गांधी, पृ० ५५

मैं मनुष्यकी ओर जिसलिये सब प्राणियोंकी एकतामें विश्वास करता हूँ। जिसलिये मैं मानता हूँ कि यदि एक मनुष्यका आध्यात्मिक काम होता है तो उसके साथ साथ सारे संसारको काम होता है और यदि एक मनुष्यका पतन होता है तो अतना पतन जगतभरका होता है।

यंग मिडिया ४-१२-२४ पृ० १९८

आर्थिक क्षेत्रमें

आधार प्रेम हो

मनुष्य-रूपी यंत्रको संचालित करनेवाली शक्ति अुसकी आत्मा है। जिस यंत्रमें पैसा-रूपी कोयला भरकर अुससे ज्यादासे ज्यादा काम किया जा सकता है वह समझना गलत है। वह अच्छा और अधिक काम तभी करेगा जब अुसकी सद्भावनाओंको जगाया जाय। सच्चा नियम यह है कि दो समान होशियार मालिक और समान योग्यतावाले नौकर मिल्ये जायें तो सहानुभूतिशील मालिकका नौकर सहानुभूतिशून्य मालिकके नौकरकी अपेक्षा ज्यादा और अच्छा काम करेगा। मतलब यह कि मनुष्यके प्रति परोपकारकी दृष्टि रखनेसे परिणाम हमेशा अच्छा ही आता है। असलता मालिक प्रतिफल प्राप्त करनेकी भाषासे ही प्रेम बताये तो यह सम्भव है कि अुसको मिरास होना पड़े। प्रेम प्रेमके ही फिजे बढाया जाना चाहिये और अुसका प्रतिफल बिना मांगे अपने-आप मिल आता है। जैसा कि कहा जाता है जो अपनी जान बचा रखनेकी कोशिश करता है वह अुसे सौ देता है और जो मरनेकी तैयारी रखता है वह अुसे बचा लेता है।

जो नबयुवक बड़े कारखानोंमें या पेड़ियोंमें नौकरी कर छूटे है, अुन्हें कमी-कमी अपना घर छोड़कर दूर जाना होता है। बेसी स्थितिमें मालिकको अुनके मां-बापका स्थान ले लेना चाहिये। यदि मालिक अुनकी कौड़ी चिन्ता न करे, तो वे बिचारे बिना मां-बापके अनाथ-जैसे हो जाते हैं। जिसलिजे व्यापारी या मालिकको पद-पद पर अपने मनसे यह सवाल करते रहना चाहिये कि, "मैं अपने सड़कोंको जिस तरह रखता हूँ अुसी तरह अपने नौकरोंके प्रति बरतता हूँ या नहीं ?

और जिस तरह जहाजके कप्तानका यह फर्ज है कि जिस समय जहाज संकटमें फँस जाय अुस समय वह अुसे सबसे अन्तमें छोड़े अुसी तरह दुष्काल या पड़ने पर या दूसरे संकटोंमें व्यापारीका यह फर्ज है कि अपने नौकरोंकी रक्षा वह अपने पहले करे। ये विचार, संभव है,

विभीका आदर्शपर्यन्तक मासूम हों। परन्तु मरुत पूछते तो कुनका आदर्शपर्यन्तक मासूम हाना ही त्रिण जमानेकी विधिबता है। कारण, विचार करने पर कोभी भी यह देख सकता है कि मरुती नीति तो हमने अभी बनायी नहीं है।

मरुती (गु), पृ० ११ १२ १७-१८ १९५०

म्यायका अर्थसास्त्र

सच्चे अर्थसास्त्रना अर्थसे अर्थ नीतिक मापदण्डसे हरगिज विरोध नहीं जाता। ठीक त्रिण तरह सच्चे नीतिसास्त्रका अगर यह विभी कामका है तो साप ही साप मरुता अर्थसास्त्र भी होना चाहिये। जो अर्थसास्त्र धनकी पूजा सिखाता है और कमजोरको धुसकर बलवानको बोलत अक्लूटी करनेमें समर्थ बनाता है वह झूठा और मनहूस विज्ञान है। वह तो मानो मृत्युका मंदेषवाक्य है। जिसके विपरीत सच्चा अर्थ सास्त्र सामाजिक म्यायका पदा लेता है सबकी—कमजोरसे कमजोर तककी—समान रूपसे भलाभी करता है और शाहीन जीवनक लिये अनिवार्य होता है।

हरिजन, ९-१०-१७ पृ० २९२

मने पुच्छकोपके अनुसार हम यह सोचना बंद कर देंगे कि जो कुछ मिल सकता हो वह हम ले लें। और जो सबको नहीं मिल सकता अर्थसे लेनेस तो हम अतिकार ही कर देंगे।

यंग विद्विषा ३-९-९५, पृ० ३०४

यदि मैं मजदूरोंको मुचित मजदूरी दूँ तो मेरे पास अनावश्यक धन अक्लूटा नहीं होगा, मैं अपने पैसैका अुपयोग आमोद-ममोदमें नहीं कर सकूँगा और मेरे हाथों गरीबी नहीं बढ़ेगी। मैं जिस व्यक्तिको मुचित मजदूरी दूँगा वह भी दूसरेको मुसकी मुचित मजदूरी देना सीखेगा। जिस तरह म्यायका धरना सुनेगा नहीं बल्कि क्यों क्यों जाये पड़ेगा त्यों त्यों बलवान बनेगा। और यदि प्रजामें भैसी म्यायबुद्धि होगी, तो प्रजा सुखी हागी और मुचित रीतिसे समृद्ध भी होगी।

विस दृष्टिके अनुसार धर्मशास्त्री गरुत सिद्ध होते हैं। वे तो विसा कहते हैं कि ज्यों ज्यों स्पर्धा बढ़ती है त्यों त्यों प्रजा समृद्ध होती है। शास्त्रमें यह मान्यता गरुत है। स्पर्धाका खुदेष्य मजदूरीका दर घटाना होता है। और खुसमें घनबान अधिक घन विकट्टा करता है और परीब जयावा परीब बनवा है। ऐसी स्पर्धासे अन्तमें प्रजाका नाश तक हो सकता है। मासिक और मजदूरमें लेन-देनका नियम तो यह होना चाहिये कि हरबेक मनुष्यको खुसकी योग्यताके अनुसार मजदूरी मिले। खुसमें भी बेक प्रकारकी स्पर्धा रहेगी लेकिन खुसका परिणाम यह होगा कि मनुष्य सुखी और अपने काममें होशियार बनेंगे। कारण खुस हालतमें मुन्हें काम प्राप्त करनेके लिये अपनी मजदूरीकी दर बटानेकी नहीं बल्कि जयावा होशियार बननेकी आवश्यकता होगी। यही कारण है कि लोग सरकारी नौकरियां करना चाहते हैं। सरकारी नौकरियोंमें वेतन नौकरियोंके दरजेके अनुसार बंधे होते हैं। वहां स्पर्धा सिर्फ होशियारीकी होती है। प्रार्थी यह नहीं कहता कि वह कम वेतनमें काम करनेके लिये तैयार है वह तो यह विश्वासता है कि खुसमें दूसरोंकी अपेक्षा अधिक योग्यता है। किन्तु ब्यापारमें गरुत स्पर्धा है और खुसके फलस्वरूप घोसा-भड़ी बेबीमानी चोरी आदि घुराभियां घड़ गयी हैं। दूसरी तरह जो मारु तैयार होता है वह खराब और सड़ा हुआ होता है। ब्यापारी चाहता है कि मैं सामुं, मजदूर चाहता है कि मैं ठग लूं और ग्राहक सोचता है कि मैं धीबमें से साम मुठा लूं। विस तरह ब्यवहार बिगड़ता है लोगोंमें रुझाबी-भगड़े हात है, मुसों मरनेकी स्थिति पैदा होती है और हड़तालें बढ़ती हैं। महाजन ठग बन जाते हैं और ग्राहक नीतिका पाछन नहीं करते। बेक अन्यायमें से अन्य अनेक अन्याय पैदा होते हैं और अतमें महाजन, मजदूर और ग्राहक—सबको दुःख और बरबादी भोगनी पड़ती है। प्रजाके पास जो पैसा होता है वही मानो खुसके लिये अमिषाप रूप हो जाता है।

सच्चा धर्मशास्त्र तो वही है जिसका आधार न्यायबुद्धि पर हो। प्रत्येक स्थितिमें न्यायका ब्यवहार कैसे करना नीतिका पाछन किस प्रकार करना—यह शास्त्र जो प्रजा सीखती है वही सुखी होती

है। बाकी सब व्यर्थ है और प्रिती बातना पोषक सिद्ध होता है कि विगाप-नाममें बुद्धि विपरीत हो जाती है। लोगोंको जैसे बने जैसे पनपान हाना सिगाना विपरीत बुद्धि सिस्ताने जैसा है।

सर्वोदय (गु) पृ० ३१-३३, १०५७

आर्थिक समानता

समाजकी धैरी बल्यता यह है कि यद्यपि हम सब जन्मसे समान हैं अर्थात् हमें समान अवसर पानेका हक है, लेकिन सबकी दामता अकेली नहीं होती। प्रकृतिका विधान भैसा है कि यह सम्भव ही नहीं है। बुद्धाहरणके सिद्धे, सबकी अर्थ ही अर्थात्, सबका अर्थ ही रंग या सबमें बुद्धिकी समान मात्रा बगैरा नहीं हो सकती, जिसलिये प्रकृतिकी व्यवस्थाके अनुसार कुछ लोगोंमें कमजोरी का स्थिति अधिक होगी और कुछमें कम। बुद्धिवाली लोगोंके कमजोरी का स्थिति अधिक होगी और वे अपनी बुद्धिका उपयोग जिस प्रयोजनके सिद्धे करेंगे। अगर वे अपनी बुद्धिका उपयोग ब्यापारके करने का वे राज्यका कार्य पूरा करेंगे। जैसे लोग संरक्षकके तौर पर रहेंगे और किसी रूपमें नहीं। मैं बुद्धिवाली आदमीको अधिक कमजोरी दूंगा, मैं अर्थकी बुद्धिको कुंठित नहीं करूंगा। परंतु जिस प्रकार बापक सब कमजोरी बेटोंकी भाग सम्मिलित पारिवारिक कोषमें जाती है, ठीक वही तरह अर्थ बुद्धिवाली आदमीको अधिक कमजोरी अधिकजोष राज्यकी भलायतीके सिद्धे गर्व होना चाहिये।

संग सिद्धिया २६-११-'३१ पृ० १६८

समान वितरणका असली धर्म यह है कि हरभेक आदमीको अर्थकी समान स्वाभाविक आवश्यकतायें पूरी करनेका सामन मिलना चाहिये, अर्थसे अधिक नहीं। बुद्धाहरणके सिद्धे, यदि अर्थ मनुष्यकी पावन-स्थिति कमजोर है और अर्थसे अपनी रोटीके सिद्धे आधा पाव आटा ही चाहिये और दूसरेको आधा सेर चाहिये तो दोनोंकी जरूरतें पूरी होनी चाहिये। जिस आदमीकी सिद्धिके सिद्धे सारी समाज-व्यवस्थाकी रचना फिरसे करनी पड़ेगी। अर्थवालेके आचार पर बना हुआ समाज और किसी

आदर्शका समर्थन नहीं कर सकता। शायद हम जिस सक्षयको सिद्ध न कर सकें परंतु हमें जिसे ध्यानमें रखना और जिसके निकट पहुंचनेके लिये सतत काम करना होगा। हम अपने सक्षयकी ओर जिसनी प्रगति करींगे मुतना ही हमें सुख और सतीय मिलेगा। और मुतना ही ओक अहिंसक समाज पैदा करनेके काममें हमारा हाथ माना जायगा।

अब हम जिस बातका विचार करें कि अहिंसाके द्वारा समान वितरण कैसे कराया जा सकता है? जिस दिशामें पहला कदम यह होगा कि जिसने जिस आदर्शको अपने जीवनका अंग बना लिया है वह अपने व्यक्तिगत जीवनमें सवनुसार जरूरी परिवर्तन करेगा। भारतकी दरिद्रताको ध्यानमें रखते हुये वह अपनी जरूरतें कमसे कम कर लेगा। जिसकी कमाओ बेमीमानीसे मुक्त होगी। वह सट्टा करके कमानेकी अिच्छा छोड़ देगा। जिसका निवास-स्थान अिन्दगीके नये ढंगके अनुरूप होगा। जीवनके हर क्षेत्रमें वह संयमका पालन करेगा। जब वह अपने ही जीवनमें ओ कुछ हो सकता है वह सब कर लेगा तभी वह जिस स्थितिमें होगा कि अपने साधियों और पड़ोसियोंमें जिस आदर्शका प्रचार करे।

वास्तवमें समान वितरणके जिस सिद्धान्तकी जड़में ट्रस्टीशिप या संरक्षकताका सिद्धान्त होता चाहिये। यानी अमीरोंको अपने अतिरिक्त धनका ट्रस्टी या संरक्षक बनना स्वीकार करना चाहिये। समान वितरणका सिद्धान्त कहता है कि अमीरोंको भी अपने पड़ोसियोंसे ओक नी रुपया अधिक नहीं रखना चाहिये। यह सब कैसे किया जाय? अहिंसाके द्वारा? या धनवानोंकी सम्पत्ति छीन कर? सम्पत्ति छीननेके लिये हमें स्वभावतः हिंसाका आश्रय लेना पड़ेगा। यह हिंसक कार्यवाजी समाजको काम नहीं पहुंचा सकती। समाज मुसटा घाटोंमें रहेगा क्योंकि वह जिस आदर्शके गुणोंसे वंचित हो जायगा जो धन अिकट्टा करना जानता है। जिसलिये अहिंसक युवाय स्पष्ट ही खेप्ट है। धनवान आदर्शके पास जिसका धन रहने दिया जायगा। परंतु जिसका मुतना ही भाग वह अपने काममें लेगा जिसना मुसे अपनी जरूरतके लिये अुचित रूपमें चाहिये बाकीको वह समाजके अुपयोगके लिये धरोहर-रूप समझेगा। जिस लक्षमें यह मान लिया गया है कि संरक्षक प्रामाणिक होगा।

परंतु यदि सरकार कोशिशों के बावजूद घनवान छोय सच्चे अर्थमें निर्बनोके संरक्षक न बनें और गरीबोंको अधिकाधिक कुपना पाय और वे भूखते मरें, तो क्या किया जाय ? भिम पहेलीका हल इंड़नेके प्रयत्नमें मुझ अहितक अग्रहयोग और सपिनय भाशाभंगका सही और बबूफ भुपाय मृगा है। धनवान लोग समाजके गरीबोंके महयोगके बिना घन संग्रह नहीं कर सकते। यदि यह ज्ञान गरीबोंमें प्रवेश करके फैल जाय तो वे बरवान हो जायंगे और अहिंसाके द्वारा अपनेको मुन कुचकनेवाली असमानतामेंसे मुक्त करना गीत सेमे, जिम्होंने मुझमें मुसमरीके किनारे पहुंचा दिया है।

हरिजन २५-८-४०, पृ० २६०-६१

अहिंसामक आर्थिक रचना

भैरा कहता है कि यदि भारतको अहिंसक मार्ग पर चलकर विकास करना है तो मुझे बहुतसी बातोंमें मिकेन्द्रीकरण करना होगा। पर्याप्त यत्नके बिना केन्द्रीकरण न तो कायम रसा जा सकता है, न मुसकी रसा की जा सकती है।

हरिजन ३०-१२-३९, पृ० ३९१

आप कारखानोंकी सम्पत्ताके आभार पर अहिंसाका निर्माण नहीं कर सकते परंतु आत्म-निर्भर गाँवोंके आभार पर मुसका निर्माण किया जा सकता है। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्थाकी जो कल्पना मैंने की है मुसमें छोपणकी बिलकुल गुंजाबिध नहीं है और छोपण हिंसाका सार है। जिससिमे अहिंसक होनेसे पहले आपको देहाती मानसबाला बनना पड़ेगा।

हरिजन, ४-११-३९ पृ० ३३१

मारी पैमाने पर मुसोपीकरणका परिणाम आबमी तौर पर देहा-तियाका निष्क्रिय अथवा सक्रिय छोपण होया, क्योंकि मुसोपीकरणके साथ ही स्वर्ण और बिम्बीकी समस्यामें आबेयी। जिससिमे हमें अपनी सारी शक्ति किसी बात पर मयानी चाहिमे कि देहाठ स्वावलम्बी बनें और वे अपने अग्रयोगके सिमे ही ज्यादातर माल पैयार करें। अथर

ग्रामीणोंका यह रूप कायम रखा जाय तो जिस बातमें कोई आपत्ति नहीं होगी कि गांववाले खुन आधुनिक यंत्रों और मीबारोंको भी काममें लें जिन्हें वे बना सकते हैं और जो मुन्हें पुरा सकते हैं। शर्त जिसकी ही है कि खुनका उपयोग दूसरोंके शोषणके साधनके रूपमें न किया जाय।

हरिजन २९-८-३६, पृ० २२६

मुद्योगीकरण और बड़े पैमानेवाले उत्पादनका विकास हाममें हुआ है। हम नहीं जानते कि हमारे सुखकी बृद्धिमें खुनका क्या हाथ है, परन्तु भित्ति हमें मान्य है कि खुनके पीछे (कच्चे माल और मंशियोंके लिये) * हामके विश्वयुद्ध अभय आये हैं।

दि हिन्दुस्तान स्टैंडर्ड ६-१२-४४

सक्य—सर्वोदय होना चाहिये

अहिंसावादी (अधिकसे अधिक लोगकी अधिकसे अधिक भलाहीके) उपयोगितावादी सूत्रको स्वीकार नहीं कर सकता। वह सबकी अधिकसे अधिक भलाहीका प्रयत्न करेगा और जिस आधारकी सिद्धिमें प्राणिकी वाणी लगा देगा। जिससिद्धि बह मरनेको तैयार रहेगा ताकि दूसरे भिन्दा रह सकें। सबकी प्यावासे प्यावा भलाहीमें अधिकसे अधिक लोगोंकी भलाही तो आ ही जाती है और जिससिद्धि बह तथा उपयोगितावादी अपनी प्रयत्न-यात्रामें कभी जगह थक हो जायेंगे परन्तु थक समय भैसा अवश्य आता है जब मुन्हें पुरा होना और विरोधी विधाओंमें भी काम करना पड़ेगा। उपयोगितावादी तो अपने ठरके अनुसार कभी अपना बलिदान नहीं करेगा। सर्वोदयवादी अपने आपको भी कुर्बान कर देगा।

यग सिद्धिया ९-१२-२६, पृ० ४३२

जगर हम खुस जगत-पिताके भंश हैं और हमार निर्माण मुसके स्वरूपके अनुसार हुआ है, तो हमार कर्तव्य बंद लोगोंकी भलाही नहीं,

। * कोष्ठके भीतरके शब्द हमारे हैं—सम्पादक।

बहुतोंकी मलाभी भी नहीं परन्तु सबकी मलाभी करना ही होना चाहिये।

एसीएच डेण्ड राष्ट्रिय ऑफ महारामा गांधी, पृ० ३५० १९३३

३२

राजनीतिक क्षेत्रमें

प्रेमके जरिये स्वतंत्रता

मैंने जित्त लोकतंत्रकी कल्पना की है, उसमें — यानी अहिंसा द्वारा स्थापित लोकतंत्रमें — सबको बराबर भागानी होगी। हरकेक स्वयं अपना मामलिक होगा।

गांधीजीके करिस्पोण्डेंस विथ दि गवर्नमण्ट १९४२-४४ पृ० १७३

गण्वा लोकतंत्र या जनताका स्वराज्य असत्य और हिंसामय सुपायसे कभी नहीं आ सकता। असत्य सीधासा कारण यह है कि मुनके प्रयोगका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि विरोधियोंको दबाकर खुमका सुफाय करके मारा विराय समाप्त कर दिया जायगा। जैसे पातावरणमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं पनप सक्ती। व्यक्तिगत स्वतंत्रता बिगुन अहिंसाके राज्यमें ही पूरी तरह काम कर सक्ती है।

हरिजन २७-५-१९ पृ० १४३

राज्य सर्वदाहितमान न हो

राजनीतिक सत्ताका अर्थ है राष्ट्रीय प्रतिनिधियोंके द्वारा राष्ट्रीय जीवनका नियमन करनेकी शक्तता। अगर राष्ट्रीय जीवन बितना सम्पूर्ण बन जाय कि मुसका कामकाज अपने आप चलने लगे तो प्रतिनिधित्वकी जरूरत नहीं रह जाती। तब भेक ज्ञानपूर्ण अराजकताका राज्य हो जाता है। जैसे राज्यमें हरकेक अपना अपना राजा होता है। वह अपने पर भिस डंगसे दासन करता है कि अपने पड़ोसीके लिजे कभी धापक नहीं बनता। जिसलिजे आदर्श राज्यमें कोबी राजनीतिक सत्ता नहीं होती क्योंकि कोबी राज्य नहीं होता। परन्तु आदर्श जीवनमें कभी

पूरा पूरा सिद्ध नहीं होता। जिसीस्त्रिमे बोरोका प्रसिद्ध वचन है कि
शुत्तम सरकार वह है जो कमसे कम हुकूमत करती है।

यंग मिडिया, २-७-३१, पृ० १६२

म राज्यकी सत्ताकी बुद्धिको अत्यंत भयकी दृष्टिसे देखता हूँ
क्योंकि यद्यपि वह दीखनेमें तो शोषणको कमसे कम करके मलाभी
करती है फिर भी व्यक्तित्वका नाश करके वह मानव-जातिका सबसे
बड़ा अहित करती है। कारण, सब प्रकारकी प्रगतिकी जड़ तो व्यक्तित्व
ही है।

दि मॉर्निंग रिब्यू पृ० ४१३ १९३५

जिसस्त्रिमे वचन और कर्म दोनोंसे मैंने यह सिद्ध करनेका प्रयत्न
किया है कि राजनीतिक स्वराज्य—अर्थात् बहुसंख्यक स्त्री-पुरुषोंका
स्वराज्य—व्यक्तिके स्वराज्यसे बेहतर नहीं है और जिसस्त्रिमे वह
धुन्हीं धुपायेंसि प्राप्त होता है जो व्यक्तिगत स्वराज्य या आत्म-शासनके
सिमे प्रकृती होते हैं।

विश्व गांधीजी दिन सीसोन से०-महादेव देसायी पृ० ९३ १९२८

अहिंसात्मक राजनीतिक रचना

सच्चे लोकतंत्रका काम बीस आदमी केन्द्रमें बैठकर नहीं चला
सकते। गुसका काम हर गाँवके लोगों द्वारा भीचेसे चलाना पड़ता है।

हरिजन १८-१-४८ पृ० ५१९

बैसा समाज अमगिनस गाँवोंका बना होगा। गुसका फँलाव अकेके
अपर अकेके डंगका नहीं बल्कि अहरोंकी तरह अकेके बाद अकेके अम्पका
होगा। जीवन अके मीनारकी शकलमें नहीं होगा जहां अपरकी तंग चोटीको
भीचेके चौड़े पाये पर खड़ा रहना पड़ता है। गुसमें तो समुद्रकी अहरोंकी
तरह जीवन अकेके आव अके अरेकी शकलमें होगा और व्यक्ति अिनका
केन्द्र होगा। यह व्यक्ति सदा गाँवके सिमे मिटनेको तैयार होगा और
गाँव ग्राम-समूहके सिमे मिटनेको तैयार रहेगा। अिस-तरह आश्विर
सारा समाज अैसे लोगोंका गन आयागा, जो गगकर बनकर कभी किसी

पर हमसा नहीं करते, लेकिन हमेशा मग्न रहते हैं और अपनेमें समुद्रकी भुस धानको महसूस करते हैं जिसके वे अभिन्न अंग हैं।

भित्तभित्ते सबसे बाहरका घेरा अपनी सत्ता और सक्रियता अुपयोग भीतरकी परेको कुचसनेमें नहीं करेगा, बल्कि मुँहके भीतरके सब छोपोंको बस देगा और स्वयं भुस बल ग्रहण करेगा। मुझे ताना दिया जा सकता है कि यह सब अेक ग्वाली तसवीर है और भित्तभित्ते परा भी विचारणीय नहीं है। यदि युक्तिवकी परिभाषावाले बिन्दुका किसी भी व्यक्ति द्वारा पित्रित न किये जा सकने पर भी अविनाशी मूल्य रहा है तो मेरा चित्र भी मानव-जातिके जीवित रहनेके लिये अपना मूल्य रखता है। यह चित्र पूरी तरह तो कभी सिद्ध नहीं होगा फिर भी हिन्दुस्तानको बिग सन्ने पित्तके लिये जीना चाहिये। हमें क्या चाहिये भित्तका हमारे पाम ठीक चित्र होना चाहिये तभी हम अुससे मिलती जुलती कोमी वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। अगर हिन्दुस्तानके प्रत्येक गाँवमें कमी प्रजातंत्र या पंचायती राज्य कामम हुआ, तो मैं अपने भित्त चित्रकी सच्चायी साबित कर सकूँगा जिसमें जातिरी व्यक्ति पहले व्यक्तिके बराबर होगा या दूसरे शब्दोंमें कहूँ तो कोमी भी व्यक्ति न पहसा होगा, न आतिरी।

हरिजन २८-७-४६ पृ० २३६

अहिंसा पर आधारित स्वराज्यमें कोमी किसीका दुस्मान नहीं होता, प्रत्येक सबकी मलाभीमें हाथ बटाता है, सब पढ़-लिख सकते हैं और भुसका ज्ञान रोज बढ़ता रहता है। बीमारी और रोग कमसे कम हो जाते हैं। कोमी मुफ्तिस नहीं होता और मजदूरोंकी हमेशा काम मिल जाता है। अेसे शासनमें जुभा अरज और पुराचार या बर्षद्वयके लिये कोमी स्वाम नहीं होता।

हरिजन, २५-३-३९ पृ० ६५

राष्ट्रवाद और आन्तर-राष्ट्रवाद

मेरा देशप्रेम बर्जनशील नहीं है अुसमें अेसा कुछ नहीं है जिससे किसी दूसरे राष्ट्रको हानि पहुँचे। अितना ही नहीं यह सब देशोंको

सच्चे अर्थमें छान पहुंचायेगा। मेरी कल्पनाके भारतीय स्वातंत्र्यसे संसारको कभी छतरा नहीं हो सकता।

यंग विडिया १-४-२४ पृ० १०९

जैसे देशभक्तिका धर्म थाव हमें सिखाता है कि व्यक्तिको परिवारके सिद्धे, परिवारको गांवके सिद्धे, गांवको जिलेके सिद्धे जिलेको प्रान्तके सिद्धे और प्रान्तको देशके सिद्धे मरना चाहिये ठीक विसी तरह किसी देशको भिसिद्धे थावाद होना चाहिये कि जूरत हो तो वह संसारके छानके सिद्धे मर सके। विसमें जातीय द्वेषके सिद्धे कोबी गुंजाविस नहीं।

गांधीजी विस विडियन विसेजेव, ले० - महादेव देसाजी, पृ० १७०, १९२७

राज्य-निमित्त छीमाके पारवाले हमारे पढ़ीसियों तक हमारी सेवामके विस्तारकी कोबी मर्यादा नहीं है। वीस्वरने कभी ने छीमार्ये नहीं बनावीं।

यंग विडिया ३१-१२-११, पृ० ४२७

मुझे वीस्वरके भेक होनेमें और विसिद्धे मानव-जातिके भी भेक होनेमें पूरा विदवास है। क्या हुआ यदि हमारे अनेक शरीर है। हमारी आत्मा तो भेक ही है। सूर्यकी किरणें भावर्तन (refraction) के कारण अनेक हो जाती हैं। परन्तु धुनका मुद्गम तो भेक ही है।

यंग विडिया, २५-९-२४ पृ० ११३

मेरे धर्ममें और अुस धर्मसे निकले हुमे वेसप्रेममें वीव-मानका समावेश होता है। मैं मानव-आणी कहमानेवासके साथ ही नहीं, परन्तु सब प्राणियोंके साथ यहां तक कि कीड़े-मकोड़के साथ भी भावीपारा या भेकता सिद्ध करना चाहता हूं। अगर आपको भावात न लगे तो मैं पृथ्वी पर रेंगनेवाले प्राणियोंके साथ भी सादात्म्य सिद्ध करना चाहता हूं, क्योंकि हम भेक ही वीस्वरकी सन्तान हैं और वीसी हालतमें सब प्राणी चाहे वे किसी भी रूपमें प्रगट हों वास्तवमें भेक ही हैं।

यंग विडिया ४-४-२९, पृ० १०७

त्याग और समर्पण— हिन्दू धर्मका सार

[पहले-पहल क्विलनकी आम सभामें गांधीजीने एक मुपनिषद्के मंत्र द्वारा हिन्दू धर्मके मूल विद्वत्ताका सार बताया और उसके बाद प्रत्येक सभामें उस सर्वप्राणी मंत्रके अनेक गूढ़ार्थोंका स्पष्ट और सरल विवेचन किया। अनेक मन्त्री गूढ़ व्याख्या जिसमें ज्यादा विवेचन नहीं था सुनौंते पहल दिन विपत्तनमें बी थी। बहु नीचे दी जाती है]

मैं मुपनिषद्का एक मन्त्र आज आपके सामने बोलकर रसता हूँ। सुनमें मैं मानता हूँ, हिन्दू धर्मका सारा सार आ गया है। आपमें से बहुतसे श्रीगोपनिषद्को जानते हामें। मैंने क्यों पहले भिसे अनुवाद और टीकाके साथ पढ़ा था। परबदा जेसमें मैंने उसे कण्ठस्थ किया। परन्तु मुम समय मुसने मुसे बीसा मोहित नहीं किया जैसा कि पिछले चंद महीनोंमें किया है और अब मैं भिसे अंतिम निर्यय पर पहुंचा हूँ कि अगर सारे मुपनिषद् और अन्य धर्मग्रंथ अज्ञानक पलकर राग हो जाय और हिन्दुओंकी स्मृतिमें केवल श्रीगोपनिषद्का पहला मन्त्र ही रह जाय तो भी हिन्दू धर्म सदा जीवित रहेगा।

भिसे मंत्रके चार भाग हैं। पहला भाग है श्रीशापास्वमिदं सर्वं यन्किञ्च जगत्याः जगत् । जिसका अर्थ मैं बीसा करता हूँ कि भिसे विशाल जगत्में हम जो कुछ देखते हैं वह सब श्रीश्वरसे व्याप्त है। दूसरे और तीसरे भागको मैं साथ ले लेता हूँ तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा । भिन्को मैं दो हिस्सोंमें बाँटकर भिसे प्रकार अनुवाद करता हूँ मुसका त्याग करो और भोगो। एक और अनुवाद है जिसका भी अर्थ है वह तुम्हें जो कुछ देता है उसे भोगो। भिसे तरह भी आप उसे दो भागोंमें बाँट सकते हैं। फिर अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण भाग आता है मा गृध कस्मिन्विद्

धनम् । जिसका अर्थ है किसीके धनका लोभ न करो । जिस प्राचीन उपनिषद्के शेष सब मंत्र जिस पहले मंत्रकी टीका जैसे है व जिसका पूरा अर्थ बतानेकी कोशिश करते हैं ।

मुझे यह मंत्र समाजवादी और साम्यवादीकी दार्शनिककी और अर्थशास्त्रीकी यानी सबकी भूख खान्त करनेवाला मालूम होता है । और अगर यह सच है — वैसा कि मैं मानता हूँ — तो आपको हिन्दू धर्ममें कोसी भैसी चीज लेनेकी जरूरत नहीं जो जिस मंत्रके अर्थके विषय हो या खुसे मेल नही खाती हो । एक साधारण आवमी जिससे ज्यादा और क्या सीखना चाहता है कि एक अद्वितीय भीस्वर मूतमात्रका स्रष्टा और स्वामी सम्पूर्ण विश्वके अणु-अणुमें व्याप्त है । जिस मंत्रके दूसरे तीन भाग पहले भागसे ही सीधे फलित होत हैं । अगर आप मानते है कि भीस्वरने जो चीजें बनायी है उन सबमें वह मौजूद है तो आपको मानना ही चाहिये कि जो चीज खुसने नहीं दी है खुसे आप नहीं भोग सकते । और यह देखते हुमे कि वह अपनी असंख्य संतानोंका स्रष्टा है, यह निष्कर्ष निकलता है कि आप किसीकी सम्पत्तिका लोभ नहीं कर सकते । यदि आपका यह विचार है कि आप खुसके पैसा किये हुमे असंख्य प्राणियोंमें से एक हों तो आपको चाहिये कि सब कुछ त्यागकर मुसके चरणोंमें रख दें । जिसका अर्थ यह है कि सर्वस्व त्यागका कार्य निरा धारीरिक त्याग नही है परन्तु एक दूसरे या नये जन्मका खोसक है । यह सोच-समझकर किया हुआ कम है अज्ञानवश किया हुआ कम नहीं है । जिसलिये वह पुनर्जन्म है । और चूकि जिसके धारीक है खुसे अपने किये जाने पीने और पहननेको चाहिये जिसलिये खुसे जो भी चाहिये वह स्वभावतः प्रभुसे मांगना चाहिये और खुसे वह भुस त्यागके स्वभाविक पुरस्कारके रूपमें मिल जाता है । जिसना ही नहीं यह मंत्र जिस विशाल विचारके साथ पूरा होता है किसीके धनका लोभ न करो । क्यों ही आप जिन उपदेशों पर चछने छगते हैं आप संसारके समाने नागरिक बन जाते हैं और सब प्राणियोंके साथ दान्तिपूर्वक रहने छगते हैं । जिसस जिस लोक और परलोककी हमारी सर्वोच्च आकांक्षाएँ पूरी हा जाती हैं ।

[भिषी मंत्रको गांधीजीने दूसरी सभामें हमारे हृदयोंमें बुझनेवाली पारी समस्यामा और संकाअति हल्की मुनहरी कुंजी बताते हुअे कहा]

भीषाणनिपट्टका यह भेष मंत्र याद रखिये और दूसरे सब शास्त्राको भूल जायिये । अजय्य ही आप धर्मग्रंथोंके महासागरमें डूबकर अपना दम पाए सकत है । जगत् पंडित साग मत्त और बुद्धिमान हों तो मुनके लिये य प्रय अछे ई परन्तु साधारण आदमीका भव-सागरके पार मुठागमेंके सिअे भिष मंत्रके सिवा और किसी चीजकी जरूरत नहीं

भिष विदयमें जा कुछ है मुझ सबमें भीस्वर शासक बनकर विराजमान है । अिसलिये सबैस्वका त्याग करके मुझे समर्पण कर दो और फिर मुझ भागका भाग या भुपभोग करो जो तुम्हारे हिस्सेमें आवे । किसीके धनका सोच हरगिज न करो ।”

हरिजन ३०-१-३७, पृ० ४०५

कल रात विवलनकी सभामें घेने हिन्दू धर्मका मूलभूत सदेग समझाया या आपके सामने अभी कुछ मिनट मैं खुसी विषय पर योल्गा ।*

भिष मंत्रमें भुयिने भगवानके लिये भीष ने सिवा और किसी विशेषणका भुपयाग नहीं किया है । और खुशने किसीकी भी खुशने शासनके बाहर नहीं रखा है । यह कहता है कि हम जो कुछ भी देखते हैं, सब औरपरम व्याप्त है । भिष वचनमें से भिष मंत्रके दूसरे हिस्स स्वामाभिष रूपमें फलित होते हैं । भुयि कहता है कि सब कुछ त्याग दो अर्थात् भिष विश्वमें जो कुछ है वह सब त्याग या हमारी भिष छोटीसी पृथ्वीका नहीं सम्पूर्ण विश्वका त्याग करो । अिसका त्याग करनेका वह हमें अिसलिये कहता है कि हम अितने नमप्य परमाणु हैं कि हमें सम्पत्तिका कुछ भी खमाल हो तो वह हास्यास्पद दिखायी देगा । और फिर यह भुयि कहता है कि त्यागका पुरस्कार है — भुंजीया अर्थात् त्यागने बाद तुम्हें जो कुछ चाहिये मुझका भोग सुम करो । परन्तु अनुवादके

* हरिपाद (त्रावणकोर) में दिये गये १७-१-३७ के गांधीजीक लेक भाषणसे ।

भोग शब्दका अर्थ अुपयोग करना जाना आदि भी किया जा सकता है। जिसलिये जिसका अभिप्राय यह है कि तुम अपने विकासके लिये मितना जरूरी है मुसते अधिक नहीं ले सकते। जिस तरह जिस भाग अथवा अुपयोगके साथ दो शर्तें लगी हुई हैं। एक तो त्याग वृत्ति रखकर, अथवा भागवतकारकी भाषामें कृष्णार्पणमस्तु सर्वम् की भावनास ही भोग करना चाहिये। भागवत धर्मके अनुयायीको रोज सुबह अपने मन बचन और कर्म कृष्णको अर्पण करना पड़ते हैं। यह त्याग अथवा समर्पणका कार्य पूरा किये बिना अुसे किसी वस्तुको छूने या लेक प्याला पानी भी पीनेका अधिकार नहीं हाता। त्याग और समर्पणका कर्म करनेके बाद अुस कर्मके फलस्वरूप आवश्यकताके अनुसार नित्यके लिये भद्र वस्त्र और आश्रय पानेका हक मिलता है। जिसलिये चाहे जैसे समझिये भोग अथवा अुपयोग त्यागका पुरस्कार है अैसा समझिये या त्याग भोगकी अनिवार्य शर्त है अैसा समझिये — हमारे जीवनके लिये, हमारी आत्माके लिये त्याग अत्यावश्यक है। और मंत्रमें दो गभी शर्त मानो पूरी न हा जिसलिये अुपि शीघ्र ही यह कहकर अुसे पूरा करता है कि दूसरेकी सम्पत्तिका लोभ न करो। अस्तु मेरा आपसे यह कहना है कि संसारके किसी भी भागमें पाया जानेवाला सारा दर्शनशास्त्र या धर्म भिन्न मंत्रमें समाया हुआ है।

अब मैं जिस मंत्रको वर्तमान परिस्थिति पर लागू करना चाहता हूं। यदि विश्वमें जो कुछ है वह सब अीश्वर द्वारा अ्याप्त है अथात् ब्राह्मण और भंगी पंडित और पांडाल विजावा और परिया — कोअी भी शक्ति हो — यदि सभीमें भगवान विराजमान है, तो जिस मंत्रके अनुसार न कोअी अुषा है और न कोअी नीचा है। सभी विस्फुल्ल बराबर हैं, क्योंकि सब अुसी अेक अष्टाकी सन्तान हैं।

मैं चाहूंगा कि जो मंत्र मैंने अमी कहा है वह हम सब स्त्री-पुरुष और बच्चोंके हृदयों पर अकित हो जाय। और अैसा कि मैं मानता हूं यदि जिसमें हिन्दू धर्मका सार आ जाता है तो वह प्रत्येक मंदिरके द्वार पर लिख दिया जाना चाहिये।

जिग जीरयो जिग पाके शॉन हुये छुंये जिग धम्य रूपये गाय बई हुआ कि जीरव मनीमानी है। पाण्णु मुताव जये बाबर लो मी बना मुनि जीरव लानक बगुनें पनाग है जिगतिने कोकी जीरव बागदी गरी है बाबर मना लरीन भी मतावर गरी है। बाबर पाण या कुठ है मुग मरवा जिगिवाए करापी सीखर है। जीर जिगतिने उद कभी लरिन या मने मताको हिनु कहता है जिगिवापी या जीर मीमानी लल बने है मरवापकी प्रक्रियाय मुहमा है लव मुगे मुन लव बगुबाया जिगि यर मतावरन कभी मगति बनता रहा है लरिन बनता कहता है। यह पर मदीन मरवा रगमन यह बार्द बन लेता है लव मुगये कृता माता है कि जीरव बगर अथवा जिगल-जपाके जिगे जग यो कुठ भी बाहिने मगरी जिग्या अर जीरवर कता। पर चलके लानका पुगकाय है। जिगतिने जीरवकी बाबरमनाबाक मरमोन अथवा मरवापकी ली मुगया लरिन या ल्याय है। जीर पर मदीन या मनाग यमें प्रतिक्रिय करता रहता है मदि लेगा न हो कि हम जिग लानक मरमने जीरवने जिग वेनीय लरिनको मुन मारं। जीर जिग मंनमें लवने मदी बात भुनिने पर कही है कि लिमीके घनका नाम न बने। मता भागो पर कहता है कि जिग स्वल्पमे मरने जो मार मताया हुआ है मुगये प्रयेक नामव पापीकी भिदनाक तथा पाण्णोकी मरुओक भावनाके पुषि हा गहरी है। मुग संघारके धर्मधेवारी कानी लोत्रमें कोकी मीपी जीरव गरी मिली है जो जिग मंनमें जोदी बाव। मैने धर्मलान्णोका जिगना मरवया किया है—मै स्वीकार करता हूं कि कह कृतन पाका है—मुग मरवा मिहावमोहन करते हुअ मुगे लमला है कि लमाम धर्मधण्डोमें जो भी मन्पी जीरव है कहु जिग मरमें मिल जाती है। बिबरबगुलकी—म मिकं लमाम मानव जगिवाये बगुलकी बसिक मगगत प्राणियेकि बगुलकी—बात मीजिये बहु भी मरमें मौनुद है। प्रभुमें या लरामीमें—बाण मुठे जो भी नाम देना पाहें दें—अलग यजाकी बाव मीजिये, यह भी जिग मंनमें मिलती है। जीरवरके प्रति गर्वाण भावको ने जीर जिग मिपाणको लं कि यह मेरी लव लरने पूरी कोणा तो भी मै नहगा कि मुझे बहु बगुना जिग मंनमें

मिन्न भाती है। चूँकि वह मेरी और आप सबकी रग रगमें समाया हुआ है जिसलिये मुझे जिससे पृथ्वीके तमाम प्राणियोंकी समानताका सिद्धान्त मिळता है। और जिससे सब सत्त्वान्वेपी साम्यवादियोंकी आकांक्षाओं पूरी होनी चाहिये। यह मंत्र मुझे बतता है कि जो भी शीघ्र धीस्वरकी है उसे मैं अपनी नहीं समझ सकता। और यदि मैं चाहता हूँ कि मेरा जीवन और मन सबका जीवन जो जिस मंत्रमें विश्वास रखाते हैं, सम्पूर्ण समर्पणका जीवन हो तो यह परिणाम निकलता है कि वह जीवन हमारे माधियोंकी सतत सेवाका जीवन होना चाहिये।

मैं कहता हूँ मेरी यह श्रद्धा है और जो अपनेको हिन्दू कहते हैं उन सबकी यही श्रद्धा होनी चाहिये। और मैं अपने बीसाबी और मुसलमान भावियोंसे यह कहनेका साहस करता हूँ कि अगर वे अपने धर्मशास्त्रोंको बूँड़ेंगे तो खुँहें खुनमें जिससे अधिक कुछ नहीं मिलेगा।

मैं आपसे यह बात छिपाना नहीं चाहता कि हिन्दू धर्मके नाम पर जो अनेक अंधविश्वास प्रचलित हैं उनसे मैं बेखबर नहीं हूँ। मैं जानता हूँ और मुझे जिस बातका बड़ा दुःख है कि हिन्दू धर्मकी ओटमें कितने ही अन्धविश्वास बस रहे हैं। मुझे यह कटु सत्य कहनेमें कोभी संकोच नहीं है। मुझे अछूतपनको जिन अंधविश्वासोंमें सबसे बड़ा बतानेमें आगा-भीछा नहीं हुआ है। परन्तु जिन सबके होते हुए भी मैं हिन्दू बना हुआ हूँ क्योंकि मैं नहीं मानता कि ये अंधविश्वास हिन्दू धर्मके अंग हैं। हिन्दू धर्ममें शास्त्रवचनोके अर्थ रगानेके जो नियम बतये गये हैं वे ही मुझे सिखाते हैं कि जिस सत्यका मैंने आपके सामने प्रतिपादन किया है और जो जिस मंत्रमें निहित है उससे जो भी वस्तु असंगत हो उसे यह समझकर तुरन्त अम्बीकार कर देना चाहिये कि जिसका हिन्दू धर्मसे काशी सम्बन्ध नहीं हो सकता।

हरिजन, ३०-१-३७ पृ० ४१०

गीताधर्मका अनुयायी अपनेको शीशोंके बिना भी अपना काम सुलसे चला देनेकी तालीम देता है। गीताकी भाषामें जिसे समझा कहा गया है। क्योंकि गीताका मुख दुःखका विरोधी नहीं है। वह जो स्थितिसे कहीं ज्यादा भूँची स्थिति है। गीताके भक्तको न मुख होता है न दुःख। और

जब हम भिन्न विचारों में लुब्ध जाते हैं तब दुष्टगुण हार जीत करने
सर्वांगी दुष्ट नहीं रह जाते।

बौद्ध एक योगी का नाम पृ० २० १९५१

इसे वह क्या योगी कहिये कि मुझे निर्दोषी भी योग कभी
भी क्या न हो। योग पर हम हमारे लोक में नहीं। जैसे समाजमें योग नहीं
होता। जब हम शत्रुमुख भवते। मुझसे प्रति मुझसे ही योगी, और
एक मुझसे ही एक योगी जब हमें हर एक पर भान योगी कि
हमें जो काम गीता योग है भूमि हम हर एक है।

बौद्ध एक योगी का नाम पृ० १०१ १९५१

३४

मंदिर और मूर्तिपूजा

विगी मूर्तिको देखकर जैसे मनमें पूजा का भाव उत्पन्न नहीं होता।
जबकि योग समाज है कि मूर्तिपूजा मानव-व्यवस्था का अंग है। हमें प्रतिक्रिया
मानना पड़ती है। क्यों विगी जगत् प्रकृति का योगी किमोको विचारपरम
अधिक साक्षात् अनुभव क्यों होना चाहिये? मूर्तिको पूजामें सहायता
मिलती है। क्योंकि विगी मूर्तिको भीतर गद्दी समझना। मैं मूर्तिपूजाको
पान नहीं मानता।

योग विधि, ६-१०-२१ पृ० ३१८

मूर्ति-पूजा और मूर्ति-संज्ञक रूपोंके साथ संबंधकी मूर्ति जो वास्तव
है उनके अनुसार मैं जानता हूँ। मैं मूर्तिपूजाके पीछे जो भावना है अंगकी
कीमत करता हूँ। मुझका मानव जातिके मुझमें बहुत बड़ा भाव है।
और हमारे देशकी मूर्तिको जो हजारों पवित्र मंदिर पाएँ बसाने हैं
भुवने रक्षा का सामर्थ्य मैं अपने प्राण देकर भी प्राण करता चाहता
चाहूँ।

मूर्ति-संज्ञक मैं बिल मानेमें हूँ कि भिन्न-विधी पूजाके अपने अंगके
विधि और विगी अंगमें जोभी अंगकी न देखनेवाली बटुटाके

रूपमें प्रचलित मूर्तिपूजाके सूक्ष्म रूपको मैं तोड़ता हूँ। मूर्तिपूजाका यह तरीका अधिक सूक्ष्म और परकर्ममें न आनेवाला होनेके कारण पूजाके बुरा ठोस और स्पष्ट रूपकी अपेक्षा जिसमें किसी छोटेसे पत्थर या सोनेकी मूर्तिको देवता समझ लिया जाता है, ज्यादा घातक है।

यंग विडिया २८-८-२४ पृ० २८४

मंदिरोंमें मूर्तियां होना चाहिये या नहीं होना चाहिये यह स्वभाव और दृष्टिकोण बात है। किसी हिन्दू या रोमन कैथलिक पूजास्थानमें मूर्तियां होनेके कारण ही मैं खुसे बुरा या अंधविश्वासपूर्ण नहीं मानता और न किसी मस्जिद या प्रोटेस्टेन्ट पूजास्थानको खुसमें मूर्तियां न होनेके कारण ही अच्छा या अंधविश्वास-रहित समझता हूँ। क्रॉस या पुस्तक जैसा प्रतीक भी आसानीसे मूर्तिपूजाका साधन और अिसकिये अंधविश्वासका कारण बन सकता है। और दारुद्रूप्य अथवा कुमारी मेरीकी मूर्तिकी पूजा अज्ञान अथवा अंधविश्वाससे सर्वथा मुक्त बन सकती है। यह पूजा करनेवालेके हृदयकी शक्ति पर निर्भर करता है।

यंग विडिया ५-११-२५, पृ० ३७८

पादरीने कहा अगर हिन्दू धर्म अकेलरवादी बन जाय तो श्रीमात्री और हिन्दू धर्म मिलाकर भारतकी सेवा कर सकते हैं।

गांधीजी बोले दोनोंमें जैसा सहयोग देखकर मुझे सुखी होगी। खुसके किये मेरे पास अपना हस्त है। परन्तु प्रथम तो मैं अिस कथनको नहीं मानता कि हिन्दू अनेक देवताओंको मानते हैं और मूर्तिपूजक हैं। मैं मानता हूँ कि मैं पक्का हिन्दू हूँ परन्तु मेरा अनेक देवताओंमें विकृत विश्वास नहीं। अपने बचपनमें भी मेरा कभी यह विश्वास नहीं रहा और किसीने मुझे जैसा विश्वास रखता कभी नहीं सिखाया।

उही बात मूर्तिपूजाकी सो किसी न किसी रूपमें अिसके बिना काम नहीं चल सकता। जब मुसलमान खुस मस्जिदकी रक्षाके किये जिसे वह सुबाका घर कहता है, अपनी जान क्यों दे देता है? और श्रीमात्री गिरजेमें क्यों जाता है और जब खुसे क्षपण देनेको कहा जाता है तो वह बाकिबलकी क्षपण क्यों लेता है? मुझे अिसमें कोशिश आपत्ति

हो ना बन गयी। और मरिचक। और मकखरारे निर्वापने निब बगार पाका दाग करमा मुक्तिपूजा की भी क्या है? जब रामन नैव निब कुमारों केरी और गणेशके सामन—दत्तपदकी विनम्रक शान्तिद मरिचकके अदका बगार या बाँक पर विरिच आगारके सामन—पुत्रके देवने है तब मे मुक्तिपूजा मरी तो और क्या करन है?

सैदगिक पाणीने धारिण करने हूँ कहा परन्तु मे अपनी पापाका निब गणा हूँ और मुझका धर्यादुरिब पुनवन करणा हूँ। मरिचक मे मुझकी पूजा मरी करणा और न गणाकी पूजा करणा हूँ। जब मे भीतरकी पूजा करणा हूँ तब मुझे बगारा मरिचक और निर्मा भी मानव शान्तिग बडा मानना हूँ।

मिगी दरार तब दत्तपदकी पूजा मरी करते परन्तु हम पदर या बापुकी मुक्तिपूजाके आग मे विरिच ही बनपड वरों न हा भीतरके ही पूजा है।

परन्तु धारिण गेग तो दत्तपदकी भीतर समसक ही बनरी पूजा करने है।

मरी मे आनन कहा है कि मे औरवरसे कम किसी बस्तुकी पूजा मरी जान। जब भाव कुमारों केरीक सामने मुझकी धर्यापताके निबे बुटने देवने है तब आप क्या करते है? आर मुझके मारपठ भीतरसे सम्पन सापना जात है। मिगी तरह अेक हिन्दू अेक दत्तपदकी मूर्तिके आग भीतरके मरिचक ध्यानि करना चाहता है। कुमारोंकी मर्यापताकी आपकी सापनाका मे समन गबना हूँ। जब मुतालमान किसी मरिचकके पुनते है तो मुझका मम भय और आमनग वरी घट जाता है? क्या साप विन ही मरिचक मरी है? और आ मर्य आकाशी छठ आर पर छाभी हूँ है। मुन आन क्या कहने? क्या यह किसी मरिचकके कम है? परन्तु मे मुगापताकी दाग समसता हूँ और मुनग हमरकी रपता हूँ। यह भीतरके पाम पदपनका मुनका ठरीका है। हिन्दुओंका मुसी अविनागी तब पदपनका अपन मार्ग है। हमारे मुन प्रमु छठ पदपनके रासे अकम बाग है परन्तु मिगगे बर अलग मर्यग मरी बन जात।

अपने आदर्शको कोभी ठोस रूप देनेके अर्थमें मूर्तिपूजा मनुष्यके स्वभावमें अन्तर्जात वस्तु है। और भक्तिके सहायक साधनके तौर पर वह मूर्त्युक्त भी है। जिस प्रकार जब हम किसी पुस्तकको पवित्र समझकर भुसका आदर करते हैं तब हम मूर्तिकी पूजा करते हैं। जब हम किसी मंदिर या मस्जिदमें पवित्रता या पूजाकी भावनासे जाते हैं तब हम मूर्तिपूजा ही करते हैं। मुझे अिन सब बातोंमें कोभी हानि भी दिखायी नहीं देती। जिसके विपरीत चूंकि मनुष्यकी बुद्धि परिमित है जिसलिये वह दूसरा कुछ कर ही क्या सकता है ?

स्वार्थपूर्ण ध्येयाके लिये व्रत और अुपासना चाहे गिरजोंमें मस्जिदोंमें और मंदिरोंमें हो चाहे बृक्षों और देवालियोंके सामने हो प्रोत्साहन देनेकी चीज नहीं है। स्वार्थपूर्ण याचना करना या व्रत लेना मूर्तिपूजाके साथ वैसा ही सम्बन्ध नहीं रखता जैसा कार्य और कारणका होता है। मित्री स्वार्थके लिये की जानेवाली प्रार्थना दुरी ही है चाहे वह मूर्तिके सामने की जाय अथवा अदृश्य श्रीश्वरके सामने।

यंग सिडिया २६-९-२९ पृ ३२०

मंदिर-पूजा

किसी हिन्दूके लिये रामचन्द्रकी (मूर्तिकी) पूजाके लिये मंदिर जाना जरूरी नहीं है। परन्तु जो अपने रामका ध्यान मंदिरमें भुसकी मूर्तिको देखे बिना नहीं कर सकता भुसके लिये वह जरूरी है। यह दुर्भाग्यकी बात हो सकती है, परन्तु यह सही है कि भुसका राम वैसा भुस मंदिरमें निवास करता है वैसा और कही नहीं करता। मैं जिस भोली श्रद्धाको विचलित नहीं करना चाहता।

हिन्दू भक्तका वृष्ण सम्पूर्ण पुरुष है। भक्त आलोचकाके कठोर निर्णयकी परवाह नहीं करता। अिन नामोंके द्वारा भगवानका ध्यान करके कृष्ण और रामके साथ भक्तोंने अपने जीवनका परिवर्तन कर डाला है। मैं नहीं जानता यह कैसे होता है। यह अेक रहस्य है। मने जिस सावित करनेकी कोशिश नहीं की। यद्यपि मेरी बुद्धि और मेरे हृदयमें बहुत पहले अनुभव कर लिया था कि श्रीश्वरका परम लक्षण और नाम

सत्य है, तो भी मैं सत्यको रामके नामसे पहचानता हूँ। मेरी धुरीस धुरी धड़ियोंमें धिस भेक नामने मुझे बचाया है और अब भी वह मुझे बचा रहा है। यह बचपनका संस्कार भी हो सकता है और तुलसीदासका जादू भी हो सकता है। परन्तु बात सही है। और जब मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ तब मुझे अपने बाल्यकालके ये वृष्य याद आ रहे हैं जब मैं अपने पैतृक घरसे सगे हुमे रामजीके मंदिरमें रोज जाया करता था। भुस समय मेरा राम वहां निवास करता था। उसने मुझे अनेक भयों और पापोंसे बचाया। यह मेरे क्लिमे कोश्री अंधविश्वास नहीं था। मूर्तिका रत्नबासा संभव है बुरा आदमी रहा हो। मैं उसकी कोश्री बुराश्री नहीं जानता। मंदिरमें दुष्कर्म होते रहे होंगे लेकिन भिसका भी मुझे कोश्री पता नहीं है। भिसलिखे भुनका कोश्री धसर भुम पर नहीं हुआ। जो बात मेरे बारेमें सही थी और है वही लाखों हिन्दुओंके बारेमें भी सही है। मंदिर-भूजा मानव-जातिकी अनुभूत आध्यात्मिक अभिज्ञापाकी पूति करती है। भुसमें सुधारकी गुनागिष्ठ है, परन्तु जब तक मनुष्य है तब तक वह भी रहेगी।

हरिजन १८-३-३३ पृ० ६

हिन्दुओंके क्लिमे मंदिर बैस ही हैं जैसे बीसाधियोंके क्लिमे गिरजा-घर। जो हजारों हिन्दू घरल श्रद्धा रत्नकर मंदिरमें जाते हैं वे ठीक वही आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करते हैं जो गिरजेमें जानेवाले सीधे-साधे श्रद्धालु बीसाधियोंको मिलता है। किसी हिन्दूका मंदिर छीन लें तो भाप भुससे मैसी चीज छीन लते हैं जिसे यह आम तौर पर जीवनकी सबसे मूल्यवान वस्तु समझता है। यह बात बिलकुल सही है कि अनेक हिन्दू मंदिरोंके चारों ओर अंधविश्वास और भुरामी पैदा हो गयी है। परन्तु यह तो मंदिरोंके सुधारकी बलील हुमी भुनका महत्त्व कम करनेकी नहीं।

हरिजन ११-२-३३ पृ० २

मुझे अंसा कोश्री धर्म या सम्प्रदाय भासूम नहीं जिसका काम भुसके देवालयोंके बिना चला हो या चल रहा हो, गळे ही भुगे मंदिर, मस्जिद गिरजा यहूदी मंदिर या अगिधारी — कोश्री भी नाम दिया जाय। यह भी निश्चित नहीं कि बीमा आदि महान भुमारणोंमें से किसीने

मंदिरोंको मिलकुल नष्ट या अस्वीकार किया हो। जून सबने मन्दिरा और समाज दोनोंके भीतरसे भ्रष्टाचार मिटानेकी कोशिश की थी। जून सबने नहीं तो कुछने मन्दिरोंमें ही उपदेश दिया माजूम होता है। मैंने कपोंसे मन्दिरोंमें जाना बन्द कर दिया है। परन्तु जिस कारण मैं अपनेको पहलसे बेहतर आदमी नहीं मानता। मेरी माँ जब मंदिर जाने छायाक स्थितिमें होती तो कभी वहाँ जानेसे चूकती नहीं थी। यद्यपि मैं मन्दिर नहीं जाता फिर भी सायद मेरी अपेक्षा बसकी श्रद्धा कहीं अधिक थी। जैसे छात्रों लोग हैं जिनकी श्रद्धा जिन मन्दिरों गिरजों और मस्जिदोंके कारण बनी रहती है। वे सब अंधविश्वासके अंधानुयायी अथवा धर्मांध नहीं हैं। अंधविश्वास और धर्मान्धताका ठेका जुन्हीका नहीं है। जिन बुरावियोंकी जड़ हमारे हृदयों और मनोंमें है।

मन्दिरोंकी आवश्यकताको अस्वीकार करना अश्वर, धर्म और पारिव्य अस्तित्वकी आवश्यकताको अस्वीकार करना है।

हरिजन ११-३-३३ पृ० ५

सुधारकोंके अधिक भिन्ता बाहरी स्वल्पकी अपेक्षा भीतरी धृतिमें मौलिक परिवर्तन करनेकी होनी चाहिये। दूसरा परिवर्तन यदि हो जाता है तो पहला अपने आप हो जायगा। यदि दूसरा परिवर्तन नहीं होता तो पहला कितना ही मौलिक क्यों न हो वह निरा आडंबर ही होगा। मकबरा कितना ही सुन्दर हो तो भी वह मजार ही है, मस्जिद नहीं है और पवित्र की हुकी भूमिका जाली टुकड़ा सचमुच भीस्वरका मन्दिर हो सकता है।

हरिजन २९-४-३३ पृ० ६

बह (कुमारी मेया अपनी पुस्तक मंदर बिडिया में) कहती है कि मस्तक पर लगाये जानेवाले वैष्णव चिह्नका अस्लील अर्थ है। मैं जन्मसे वैष्णव हूँ। वैष्णव मन्दिरोंमें जानेका मुझे पूरा स्मरण है। मेर घरवाले सनातनी लोग थे। बचपनमें मैं स्वयं यह चिह्न लगाया करता था परन्तु मुझे या हमारे परिवारके किसी व्यक्तिको कभी यह माजूम नहीं हुआ कि जिस निर्दोष और सुन्दर चिह्नका कोभी अस्लील अर्थ है। मद्रासमें जहाँ यह छेब सिखा जा रहा है, मैंने वैष्णवोंके एक दसस यह बात

पूछी। खुदहें कथित बदलीस अर्थका कुछ भी पता नहीं था। जिससे मेरा यह कहना नहीं है कि मैंसा अर्थ कमी था ही नहीं। परन्तु मैं यह धारणा कहता हूँ कि लाखों लोगोको बहुतसे रिबाजोंकी जिन्हें हम अब तक निर्दोष होकर बलाते रहे हैं अदखलीसताका ज्ञान नहीं है। मने पहले-पहल एक पादरीकी किताब पढ़कर यह जाना कि शिर्वालिगका कोजी अश्लीस अर्थ है और अब भी जब मैं शिर्वालिगको देखता हूँ तो खुसे जिस रूप और सम्बन्धमें मैं देखता हूँ मुसे कोजी अदखलीसता प्रगट नहीं होती। यह भी मुझे एक पादरियोंकी पुस्तकसे ही मालूम हुआ कि मुड़ीसाके मन्दिरोंको बदलास मूर्तियनि कुसूम बना रखा है। जब मैं पुरी गया तो मुन मूर्तियोंको देख सकनेके लिये प्रयत्न करना पड़ा। परन्तु मैं जानता हूँ कि मुन मंदिरमें जमा होनेवाले हजारों लोगोंको भिन्न मूर्तियोंकी बदलीसताका कुछ भी पता नहीं। छोटोंकी अंधी तैयारी नहीं होती और मूर्तियां जबरदस्ती अपने आपको मुनकी दृष्टि पर जोपतीं नहीं।

योग जिदिया १५-९-२७ पृ० ३११

३५

अवतार

मेरे कृष्णका किसी ऐतिहासिक ब्यक्तिस कोजी सम्बन्ध नहीं। मैं अपना सिर जैसे कृष्णके आगे नहीं झुकायूँगा जो अपने अहंकार पर जोट लगनेके कारण किनीका वध करे जयबा जिसे गैर-हिन्दू बुद्धचरित्र मुनकके रूपमें वर्णन करते हैं। मैं अपनी कल्पनाके कृष्णको सम्पूर्ण अवतार मानता हूँ। यह प्रत्येक अर्थमें निष्कर्षक है, गीताका प्रेरक है और लाखों मनुष्याके जीवनमें स्फूर्ति देनेवाला है। परन्तु यदि मुझ यह मिथ्य कर दिया जाय कि महाभारत वर्गी अर्थमें ऐतिहास है जिसमें आधुनिक ऐतिहासिक पुस्तकें हैं महाभारतका प्रत्येक शब्द सही है और महाभारतके कृष्णने खुनके बताय जानेवाले कुछ इत्य सचमुच किये थे तो मैं हिन्दू समाजसे निबाल दिय जानेवा ग़रब मान्य सेकर भी मुन कृष्णको औरवरका अवतार माननेसे धिक्कार कर दूँगा।

परन्तु मेरी दृष्टिमें महाभारत श्रेष्ठ गहरा धार्मिक ग्रंथ है जो अधिकांशमें रूपक है और किसी भी प्रकारसे ऐतिहासिक माने जानेके लिये नहीं है। यह हमारे भीतरी दुर्गका वर्णन है जो बितने सजीव ढंगसे किया गया है कि कुछ समयके लिये हमें यह क्षमता होने लगता है मानो जिन कृष्योंका भुसमें वर्णन किया गया है वे सचमुच मामूख प्राणिमार्गके किये हुये हैं। महाभारतकी जो प्रति हमें आजकल खुपलम्ब है खुसे मैं मुरुकी वोपरहित प्रतिक्रिया भी नहीं मानता। जिसके विपरीत मैं समझता हूँ कि भुसमें समय-समय पर बहुतसे परिवर्तन हुये हैं।

योग विडिया १-१०-२५, पृ० ३३६

हिन्दू धर्ममें अवतार भुसे माना गया है जिसने मानव-जातिकी कोखी असाधारण सेवा की हो। सब शरीरधारी जीव वास्तवमें बीस्वरक अवतार ही है परन्तु आम तौर पर सभी प्राणिमार्गको अवतार नहीं माना जाता। माभी पीढ़ियां अवतारका यह आदर भुस देती हैं, जो अपनी पीढ़ीमें अपने आचरणमें असाधारण रूपमें धार्मिक रहा हो। भिस पद्धतिमें भुसे कोखी बुराखी नहीं दीखती जिससे बीस्वरकी महानतामें कोखी कमी नहीं आती और सत्यको काखी आभात नहीं पहुंचता। बुर्दकी श्रेष्ठ बहावत है जिसका मतलब है कि आवम खुवा नहीं है, ममर खुदाका मूर है। और जिसलिये जिसका आचरण सबसे ज्यादा धार्मिक होता है भुसमें खुदाका मूर सबसे अधिक होता है। भिस विचारसरणीके अनुसार ही हिन्दू धर्ममें कृष्यको सम्पूर्ण अवतारका पद प्राप्त हुआ है।

अवतारामें यह विश्वास मनुष्यकी आध्यात्मिक बुद्ध्याकाशाका प्रमाण है। मनुष्यको सब सफ भीतरी घान्ति नहीं होती अब तक यह बीस्वरके सद्ग नहीं बन जाता। भिस स्मितिको पहुंचनेका प्रयत्न सबोंपरि और श्रेष्ठमात्र रखने योग्य महत्वाकांक्षा है। भीर यही आत्म-साक्षात्कार है।

योग विडिया ६-८-३१ पृ० २०५-०६

बीस्वर कोखी व्यक्ति नहीं है। यह कहना कि यह मनुष्यके रूपमें समय समय पर पृथ्वी पर अतरता है आंशिक सत्य है भीर भुसका

असना ही अर्थ है कि जिस प्रकारका मनुष्य भीस्वरके निकट रहता है। चूंकि भीस्वर सर्वव्यापी है, जिसलिये वह प्रत्येक मानव प्राणीके भीतर निवास करता है और जिसलिये सभीको उसके अवतार कहा जा सकता है। परन्तु जिसस हम किसी मतीजे पर नहीं पहुँचते। राम, कृष्ण आदि भीस्वरके अवतार जिसलिये कहे जाते हैं कि हम मनुमें देवी गुणोंका आरोपण करते हैं। वास्तवमें वे मानव-कल्पनाकी सृष्टि हैं। वे सचमुच हुये हैं या नहीं, जिसस मनुष्योंके दिमागमें जमे हुये धुनके चित्र पर कौसी अक्षर नहीं पड़ता। अतिहासिक राम और कृष्ण अक्सर भैसी कठिनाभियाँ अनुभवित करत हैं, जिनका तरह तरहकी दसियोंसे निवारण करना पड़ता है।

हरिजन, २२-६-४७ पृ० २००

३६

धर्म और जात-पात

धर्मधर्म

धर्मका अर्थ है मनुष्यके धर्मके निश्चय पहलेसे ही हो जाना। धर्मधर्म यह है कि मनुष्य अपनी आजीविकाके लिये अपने पूर्वजोंका पेशा अस्तिवार करे। जिसलिये धर्म अके प्रकारसे संशानुक्रमका नियम है। धर्म भैसी बस्तु नहीं है जो हिन्दुओं पर अक्षरसे लाद दी गयी हो। परन्तु जो लोग धुनके कल्याणके संरक्षण से मनुष्यनि धुनके खातिर जिस धर्मको बूढ़ निजाला है। यह मनुष्यकी भीजाव की हुयी नीज नहीं परन्तु प्रकृतिका अटल नियम है—यह प्रकृतिकी अके प्रवृत्तिका धर्मन है या स्यूटनके गुरुत्वाकर्षणक नियमकी भाँति इयेंसा विद्यमान और सक्रिय है। जैसे गुरुत्वाकर्षणक नियम पता लगवस भी पहले मौजूद था जैसी प्रकार धर्मधर्म भी था। जिस धर्मको बूढ़ निजालना हिन्दुओंके भाग्यमें था। प्रकृतिक कुछ नियमकी लाज और धुनका प्रयाग करने पदिसवके गंगाने अपनी भौतिक सम्पत्ति मासानीसे बड़ा सी है। जैसी प्रकार हिन्दुधर्मने

जिस अनिवार्य सामाजिक प्रकृतिका पता लगाकर आध्यात्मिक क्षेत्रमें वह सफलता प्राप्त की है जो संसारमें और किसी राष्ट्रने प्राप्त नहीं की।

वर्णका आतिप्रपासे कोजी सम्बन्ध नहीं। वर्णके नाम पर प्रचलित जिस आतिप्रपाके असुरका नाश कीजिये। वर्णके जिस विकृत स्वरूपने ही हिन्दू धर्म और भारतका पतन किया है। वर्णधर्मका पाछन न करना ही हमारी आर्थिक और आध्यात्मिक बरबादीका मुख्य कारण है। बेकारी और गरीबीकी अकमात्र जड़ यही है और अछूतपन तथा हमारे धर्मको छोड़कर परधर्म स्वीकार करनेके लिये भी यही जिम्मेदार है।

सतत प्रयोग और सोचके बाद भूमियोंने ये चार विभाग किये — शिक्षा देना रखा करना धन पैदा करना और हाथ-पैरोंसे सेवा करना।

प्राचीन कालमें अपने-आप चलनेवाले व्यावसायिक संघ ये और यह अखिलित नियम था कि व्यवसायके सब सदस्याका पालन किया जाय। १०० वर्ष पहले दक्षीका छड़का कभी वकील नहीं बनता चाहता था। आज वह चाहता है क्योंकि वह जिस धंधेको अपने पुरानेका सबसे आसान तरीका पाता है।

पुराने जमानेमें दूसरेके धंधे पर आक्रमण करके दौलत जमा करनेकी महत्वाकांक्षा नहीं होती थी। अुदाहरणके लिये सिसरोके कालमें वकीलका धंधा निःशुल्क था। और किसी बुद्धिमान बड़मीका रुपयेके लिये नहीं परन्तु सेवाके लिये वकील बन जाना बिल्कुल ठीक होगा। आगे चलकर स्मावि और धनकी आकांक्षाने प्रवेश किया। वीध लोग समाजकी सेवा करते थे और समाजसे जो कुछ मिल जाता था उससे सघोष कर लेते थे। परन्तु अब वे व्यापारी और समाजके लिये खतरा तक बन गये हैं। बिबिस्ता और कानूनके धंधे 'लिवरल' — शिष्ट जनों बिबि कहे जाते थे और यह ठीक ही था। क्योंकि जिस समय हेतु गुण परोपकारका था।

मैं अपने पिताका धंधा कर्ष तो मुझे मुझे सीखनेके लिये पाठशाला जानेकी जरूरत नहीं होती। और मेरी मानसिक दक्षि आध्यात्मिक प्रयत्नके लिये मुक्त हो जाती है क्योंकि मेरी आजीबिका तो निश्चित ही है। सुसके लिये और सच्ची धर्म-साधनाके लिये वर्ष बीतेका मुत्तम

रूप है। जब मैं दूसरे धर्मों पर अपनी शक्ति केन्द्रित कर देता हूँ तब मैं मानो जेक कानी कौड़ीके लिये आत्म-साक्षात्कारकी अपनी शक्तियोंको या अपनी आत्माको बेच देता हूँ।

हम वर्णकी विकृत कल्पमार्गें रखकर भुसकी बात कर रहे हैं। जब वर्णका सभमुख पासन होता था तब हमें आध्यात्मिक साधनाके लिये काफी फुरसत मिलती थी। अब भी आप दूरके गांधीमें जागिये और देखिये कि दाहरियाके मुकाबलेमें देहातियोंकी आध्यात्मिक संस्कृति कैसी है। दाहरियासे समय तो जानते ही नहीं।

हमें धनप्राप्तिके लिये नये रास्ते ढूँढ़नेकी जरूरत नहीं थी न ढूँढ़ना चाहिये। जब तक हमारे पूर्वबंसी प्राप्त उपाम सुख हैं तब तक हमें अनुसे ही संतोष करना चाहिये। अगर मेरा पिता व्यापारी है और मुझमें सैनिक गुण दिखायी देते हों तो मैं सिपाही बनकर बिना किसी पुरस्कारके अपने वेष्टकी सेवा कर सकता हूँ। परन्तु मुझे अपनी रोजी तो व्यापारके द्वारा कमानेमें ही संतोष होना चाहिये।

मय विडिया २४-११-२७ वृ० १९० १९१ ३९५

वर्णाधमका मतलब मैं जा मानता हूँ खुससे समाजकी धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जरूरतें पूरी हो जाती हैं। खुससे धार्मिक भाव व्यक्तताके अिसलिये पूरी हो जाती हैं कि सारा समाज भिन्न धर्मको स्वीकार कर लें तो खुसे आध्यात्मिक पूर्णताकी प्राप्तिके लिये काफी समय मिलता है। भिन्न धर्मके पासनसे सामाजिक बुरावियां टल जाती हैं और घातक आर्थिक स्पर्धा बिलकुल मिट जाती है। और यदि भिसे भेसा धर्म मान लिया जाय जो संबंधित समाजके अधिकार या विशेषाधिकार नहीं बल्कि खुसके कर्तव्य बतलाता है तो खुससे धर्मका योग्यतम बंटबारा निश्चित हो जाता है मसे ही बहु आदर्श अर्थात् बिलकुल समान वितरण न हो। भिंसलिये अब माय अिस धर्मकी परबाह न करके खुसस कर्तव्यको विशेषाधिकार मान लेते हैं और अपनी भुसतिके रिज मनपाहे बंधे पुन सते हैं तब भिंससे धर्ममें गड़बड़ पैदा होती है और अन्तमें समाजरा बिनाश हाता है। भिंस धर्ममें किसी व्यक्तिसे भुसकी शक्ति विरुद्ध जबरदस्ती पैतुक धर्मको मनवानेका प्रयत्न नहीं है, अर्थात् बाहरसे भुस पर भिंसके लिये

कोभी दबाव नहीं डाला जाता। शायद कभी हमारे धर्म तक ऐसा मोभी दबाव था भी नहीं। जितने अर्थ तक वर्णाश्रम धर्म मबाधित रूपमें काम करता रहा था। लोगोंको सालीम ही बैसी मिली थी कि उन्होंने जिस धर्मको अपना न्याय्य कर्तव्य मान लिया था। और वे स्वेच्छासे जिसके नियंत्रणमें रहते थे। आज राष्ट्राको जिस धर्मका ज्ञान नहीं है वे जिस धर्मका भंग कर रहे हैं और जिसलिसे कष्ट पा रहे हैं। कथित सम्य राष्ट्र हरगिज धुस स्थितिको नहीं पट्टे हैं जिसे वे जरा भी शान्ति और संतोषकी स्थिति समझ सकें।

हरिजन, ४-३-३३, पृ० ५

वर्णधर्मका मैंने जो अर्थ किया है उसके अनुसार ऊंचेसे ऊंचे मानसिक बिकासमें किसी भी प्रकारकी रुकावट नहीं है। रुकावट जो बिरुद्ध स्वभाविक है यह है कि कोभी अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनेके लिखे अपना पैसुक भंडा न बढ़के और जिस प्रकार हानिकारक और विनाशकारी स्पर्धाकी कोभी बैसी प्रणाली स्थापित न करे, जो धात्रक जीवनको उसके सारे आनन्द और सौन्दर्यसे वधित कर रही है।

हरिजन २९-७-३३ पृ० ८

11

वर्णका निर्भय जन्मसे होता है, परन्तु वह कायम तमी रह सकता है जब उसके कर्तव्याका पालन किया जाय। ब्राह्मण माता-पितासे जन्म देनेवाला ब्राह्मण कहलायेगा परन्तु यदि धर्मस्क होने पर उसके जीवनमें ब्राह्मणके गुण प्रमट न हों तो वह ब्राह्मण नहीं कहला सकता। जिसके विपरीत कोभी ब्राह्मणके धर्ममें पैदा न हुआ हो परन्तु अपने आचरणमें ब्राह्मणके गुण प्रदर्शित करे तो वह ब्राह्मण कहलायेगा यद्यपि वह स्वयं यह नाम धारण करना स्वीकार नहीं करेगा।

जिस कल्पनाके अनुसार वर्ण कोभी मनुष्य-कृत संस्था नहीं परन्तु जीवनका वह धर्म है जो मानव-परिवारका सर्वत्र नियंत्रण कर रहा है। जिस धर्मके पालनसे जीवन जीने योग्य बनेगा शान्ति और संतोषका प्रसार होगा, उमान क्षयके और संघर्ष मिट जायंगे—सुखमरी। और मे ४-१२

रह्य है। जब मैं दूसरे धर्मों पर अपनी शक्ति केन्द्रित कर देता हूँ तब मैं मानो ओक कानी कौड़ीके सिधे आरम-मादात्कारकी अपनी शक्तियोंका या अपनी आत्माको बेच देता हूँ।

हम वर्णकी विकृत कल्पनायें रखकर मुसकी बात कर रहे हैं। जब बगका सधमुष पालन हाता या तब हमें आध्यात्मिक साधनाके सिधे काफी फुरसत मिलती थी। अब भी आप वूरके गाँवोंमें जाभिये और देखिये कि गहरियोंके मुकाममें देहातियाकी आध्यात्मिक ससृति कैसी है। गहरबाके समय तो जानते ही नहीं।

हमें धनप्राप्तिके सिधे नये नये रास्ते बूढ़नेकी जरूरत नहीं और न बूढ़ना चाहिये। जब तब हमारे पूर्वजोंसे प्राप्त अुपाय गुप्त हैं तब तक हमें अनुस ही संतोष करना चाहिये। अगर मेरा पिता व्यापारी है और मुझमें सैनिक गुण दिखामी देते हा तो मैं सिपाही बनकर बिना किसी पुरस्कारके अपने वेधानी सेवा कर सकता हूँ। परन्तु मुझे अपनी रात्री तो व्यापारके द्वारा कमानेमें ही संतोष होना चाहिये।

यंग बिडिया, २४-११-'२७, पृ० ३९० ३९१ ३९५

वर्णाधमका मतलब मैं जो मानता हूँ अुससे समाजकी धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जरूरतें पूरी हो जाती हैं। अुससे धार्मिक भाव स्वकतायें अिसलिधे पूरी हो जाती हैं कि सारा समाज अिम धर्मको स्वीकार कर स तो अुस आध्यात्मिक पूर्णताकी प्राप्तिके सिधे काफी समय मिलता है। अिस धर्मके पालनसे सामाजिक बुराभियां टल जाती हैं और घातक आर्थिक स्पर्धा अिसकुल मिट जाती है। और यदि अिसे अेसा धर्म मान लिया जाय जो सर्वोपित समाजके अधिकार या विशेषाधिकार नहीं बल्कि अुसके कर्तव्य बसलाता है तो अुससे धनका योग्यतम बंटबाय निरिषत हा जाता है अेसे ही यह आदर्श अर्थात् अिसकुल समान बितरण न हो। अिसलिधे जब लोग अिम धर्मकी परवाह न करके भूसस कर्तव्यको विगपा धिकार मान लेते हैं और अपनी अुपतिके सिधे मनभाते धंसे चुन लेते हैं तब अिससे धर्ममें गड़बड़ पैदा होती है और अन्तमें समाजका विनाश होता है। अिस धर्ममें किसी ध्यक्तिये अुसकी अधिक विगड जरूरतरी पैनुक धंधको मनवानेका प्रसन नहीं है, अर्थात् बाहरम अुम पर अिसक लिधे

“मगर खुसने-भिसे अपना धंधा नहीं माना था।”

“वह मान लेता तो जिससे खुसका कुछ बिगड़ता नहीं। मेरा मतलब यह है कि मंगीक घर पैदा होनेवालेको मंगी रहकर ही अपनी रोजी कमायी चाहिये, खुसके बाद वह जो भी करना चाहे सो करे। कारण मंगीको मजदूरी पानेका अतना ही अधिकार है जितना बकीलको या व्यापके राष्ट्रपतिको है। मेरे मतानुसार यही हिन्दू धर्म है। पृथ्वी पर जिससे अच्छा साम्यवाद नहीं है। बर्लधर्म गुरुत्वाकर्षणके नियमकी ही तरह अबाध रूपसे काम करता है। मैं प्रतिदिन अधिकाधिक धूँध कूदनेकी कोशिश करूँ और यह समझूँ कि जिस तरह किसी दिन गुरुत्वाकर्षणका नियम अपना काम बन्द कर देगा तो मेरा यह प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होगा। गुरुत्वाकर्षणको जिस तरह रोका नहीं जा सकता। बेक-बूसरेके भूपर कूदकर आगे निकल जानेका प्रयत्न भी बेसा ही है। वर्णधर्म घातक स्पर्धाका विरोधी है।

हरिजन ६-३-३७ पृ० २७ ।

जाति* बनाम वर्ण

-मनुष्य सामाजिक प्राणी है जिससिध्मे खुसे सामाजिक संगठनका कोबी न कोबी तरीका निकालना ही पड़ता है। हम भारतवासियोनि जिसके सिध्मे जातिकी संस्थाका विकास किया है यूरोपवासियोनि वर्णका संगठन किया है। दोनोंमें ही परिवारकी-सी अेकता और स्वाभाविकता नहीं है परिवार तो घायब भीहवर-निमित्त संस्था है। यदि जातिने कुछ सुराशियाँ पैदा की हैं, तो वर्णने खुससे कम सुराशियाँ नहीं पैदा की हैं।

यदि वर्ण कुछ सामाजिक गुणोकी रक्षा करनेमें मदद देता है तो जाति भी अधिक नहीं तो समान मात्रामें बही काम करती है। जाति

* यहाँ गांधीजीने जाति शब्दका अपुयोग वर्णके ही अर्थमें किया है। जब वे जातिकी निन्दा करते हैं तब वे धूँध-नीचके खुस बिचारकी ही निन्दा करते हैं जो बादमें पैदा हो गया है, न कि पैतृक धंधा करनेके सिद्धान्तकी जिसे वे वर्ण कहते हैं और जिसका वे पूरी तरह समर्पन करते हैं।

दखिताका भंत हो जायगा, आबादीका मसख़ा हल हो जायगा, और रोग समा कष्ट तक सतम हो जायंगे।

धर्म हमारे जीवनका धर्म भंग करता है और मिस प्रकार हमारे कर्तव्यका सूचन करता है। लेकिन मुससे कोभी अधिकार नहीं मिल जाता और खूब-नीचका बिघार तो मुसके सर्वथा विपरीत है। सब धर्म समान है क्योंकि समाजका आधार सब धर्मों पर बराबर है। आजकल धर्मका अर्थ खूब-नीचकी सीढ़ियां हो गया है। यह मूस व्यवस्थाका पुणित विपर्यास है। हमारे पूर्वजोंने कठोर तपस्या करके धर्मधर्मकी खोज की थी। ये यथाशक्ति मिस धर्मका पालन करनेकी कोशिश करते थे। हमने आजकल मिससे छोड़-मराड़ दिया है और अपनेको ससारकी हंसीका पात्र बना लिया है।

यद्यपि धर्मधर्म किसी हिन्दू धर्मिकी विशेष खोज है फिर भी वह सार्वभिक है। प्रत्येक धर्मका कोभी विशेष लक्षण होता है परन्तु यदि वह किसी सिद्धान्त या नियमका प्रगट करता है तो वह सर्वत्र कामू हो सकता चाहिये। संसार आज मिसकी खुपेदा कर सकता है, परन्तु मुसे भविष्यमें यथाधमय मिससे स्वीकार करना पड़ेगा। मिसका आवेग है कि सबको अपने अपने धर्मसे प्राप्त कर्तव्यका सेवाकी भावनासे अनुसार आचरण करके जीवन-धर्मका पालन करना चाहिये।

हरिजन २८-९-'३४ पृ० २६१-६२

भमरीकी पादरीसे बातचीत

गांधीजी "मैं भंगी होऊँ तो मेरा सड़का भंगी ही क्यों न हो?"

"कहाँ? आप मिस हल तक आते हैं?"

जल्द, क्योंकि मैं भंगीके वेधेको पादरीके वेधेसे निर्गी भी लच्छ घटिया नहीं मानता।"

"म यह मान लेता हूँ। परन्तु क्या लिकनको भमरीकाका राष्ट्रपति न बनकर सड़की काटनेवाला होना चाहिये या?"

"परन्तु बेक सड़की काटनेवाला भमरीकाका राष्ट्रपति क्यों न हो? स्नैडस्टन सड़कियां फाड़ा करता था।"

अनुकूल नये नये समूह बनने दिये हैं। परन्तु ये सब परिवर्तन धुतने ही शान्तिपूर्ण और आसान तरीकेसे हुये हैं अतः वादलोके रंगरूपमें होते हैं। मानव-समाजमें होनेवाले परिवर्तनोंकी अिससे अधिक शान्तिपूर्ण व्यवस्थाकी कल्पना नहीं की जा सकती।

जातिसे अंध-नीचका भाव प्रयट नहीं होता। वह केवल मित्र मित्र दृष्टिकोणों और मुन्हींके अनुकूल जीवनके तरीकोंको भाग्यता देती है। परन्तु अिस बातसे अिनकार करना व्यर्थ है कि जाति-व्यवस्थामें एक तरहका बड़ा-छोटापन पैदा हो गया है।

यंग अिडिया २९-१२-२० पृ० ३

मेने बहुत बार कहा है कि मे जातिके आधुनिक अर्थमें जातिको नहीं मानता। वह एक विकृति है और अ्यक्तिकी प्रगतिमें बाधक है। किन्ती अ्यक्तिका अपनेको दूसरे किन्ती भी अ्यक्तिसं श्रेष्ठ मान रुना अीश्वर और मनुष्य दोनोंके विरुद्ध पाप है। अिस प्रकार जहां तक जातिसे छोटा-बड़ा दरजा प्रगट होता है वहां तक वह एक बुराजी है।

यंग अिडिया २५-३-३३, पृ० ३

धर्मकी वृष्टिसं सब मनुष्य बराबर हैं। अिद्या बुद्धि अथवा धनसे किसीको यह हक नहीं मिळ जाता कि अिनके पास ये चीजें नहीं हैं अुनसे वह श्रेष्ठ होनेका दावा करे।

दि हिन्दू, १९-९-४५

व्यवस्थाकी सूची यह है कि वह धन-सम्पत्तिके भेदभाव पर अपना आधार नहीं रखती। वैसे इतिहासने सिद्ध कर दिया है क्या सभ्यतामें सबसे बड़ा विग्रहकरी बल है। संकराचार्य कहते हैं कि पारिवारिक सम्बन्धी पवित्रता भी धनके दुष्प्रभावसे सुरक्षित नहीं है। जाति पारिवारिक सिद्धान्तका विस्तार-मात्र है। दोनोंका नियंत्रण रक्त और बंध-परम्परासे होता है। पारिभाष्य वैज्ञानिक यह साबित करनेकी कोशिशमें सघे हुये हैं कि बंध-परम्पराकी बात एक भ्रम है और सामाजिक वातावरण ही सब-कुछ है। अनेक देशोंका ठोस अनुभव दिन वैज्ञानिकोंके निष्पत्तिके खिलाफ पड़ता है परन्तु सामाजिक वातावरणके मुक्त सिद्धान्तको मान लिया जाय तो भी यह आसानीसे साबित किया जा सकता है कि सामाजिक वातावरणकी रक्षा और मुक्तका विकास धर्मकी अपेक्षा जातिके द्वारा अधिक सम्भव है।

जातिके पीछे अहंकारपूर्ण भेदभावकी भावना नहीं है वह आत्मोन्नतिकी मरुग मरुग प्रणालियोंका वर्गीकरण है। मुझमें सामाजिक स्थिरता और प्रगतिका बड़ियासे बड़िया मेल बिठाया गया है। जैसे पारिवारिक भावनामें ये भोग शारीक होते हैं, जो अकेल-बुद्धिसे प्रेम करते हैं और जिनके बीचमें लून और रिस्तेदारीके बन्धन होते हैं ठीक मुझी तरह जाति एक साथ तरहके युद्ध जीवनवाले (यहां जीवनके स्तरकी अर्थात् जीवनके आर्थिक स्तरकी समानताका मतलब नहीं है) परिवारोंको एक ही संघमें सामिल करनेकी कोशिश करती है। अलबत्ता कात्री परिवार कुछ विशेष प्रकारका है या नहीं जिसका निर्णय बन्द आदमियाकी सतक या स्वार्थसे दूषित बनी हुयी राय पर नहीं छोड़ा जाता। जिसमें जाति बंध-परम्पराके सिद्धान्तका भरोसा करती है। और चूंकि वह शास्त्रिक विकासकी प्रणाली है जिसमें यह बीसा नहीं मानती कि अगर कोई व्यक्ति या परिवार अपने जीवनकी पद्धतिमें सुधार करनेके लिये अगे बढ़नेका निश्चय करता है और फिर भी उसे एक विशेष समूहमें रहना पड़ता है तो जिससे मुक्त प्रति कोई अन्वय होता है। जैसा हम एकको मान्नुम है सामाजिक जीवनमें परिवर्तन बहुत धीरे धीरे होता है और जिस प्रकार वास्तवमें जातिने जीवनमें हुये परिवर्तनोंके

अनुकूल नये नये समूह बनने दिये हैं। परन्तु ये सब परिवर्तन धुतने ही क्षान्तिपूर्ण और आसाम तरीकेसे हुये हैं जितने वादलोंके रंगरूपमें होते हैं। मानव-समाजमें होनेवाले परिवर्तनोंकी जिससे अधिक क्षान्तिपूर्ण व्यवस्थाकी कल्पना नहीं की जा सकती।

जातिसे अंध-नीचका भाव प्रगट नहीं होता। वह केवल भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों और मुन्हीके अनुकूल जीवनके तरीकाको मान्यता देती है। परन्तु जिस बातसे भिन्नकार करना व्यर्थ है कि जाति-व्यवस्थामें अेक तरहका बड़ा-छोटापन पैदा हो गया है।

यंग सिडिया २९-१२-२० पृ० ३

मैंने बहुत बार कहा है कि मैं जातिके आधुनिक अर्थमें जातिको नहीं मानता। वह अेक विकृति है और व्यक्तिकी प्रगतियें बाधक है। किसी व्यक्तिका अपनेको दूसरे किसी भी व्यक्तिसे अेच्छ मान समा अध्वर और मनुष्य दोनोंके विरुद्ध पाप है। जिस प्रकार जहाँ तक जातिसे छोटा-बड़ा दरबा प्रगट होता है वहा तक वह अेक बुराजी है।

यंग सिडिया २५-३-३३ पृ० ३

धर्मकी दृष्टिसे सब मनुष्य बराबर हैं। विद्या बुद्धि अथवा धनसे किसीको यह हक नहीं मिल जाता कि जिनके पास ये धर्म नहीं हैं उनसे वह अेच्छ होनेका दावा करे।

दि हिन्दू, १९-९-४५

अस्पृश्यता

छोगोंके प्रति अपने स्वभाविक प्रेमके कारण अस्पृश्यताकी समस्या मेरे जीवनमें जल्दी ही आ गयी। मरी माने कहा 'भिस लड़नेको तुम्हें नहीं छूना चाहिये, वह अछूत है। मैंने खुलटकर पूछा, क्यों न छूऊं?' और मुसी विमसे मेरा विद्रोह शुरू हो गया।

हरिजन २४-१२-३८ पृ० ३९३

अछूतपन धर्मका आदेश नहीं है। वह सैतानकी निकाली हुयी युक्ति है। सैतानने हमेशा धर्मशास्त्रोंका हवाला दिया है। परन्तु धर्म शास्त्र बुद्धि और सत्यसे ऊपर नहीं हो सकते।

वेदोंमें शुद्धता, सत्य निष्पेक्षता शरीर और मनकी पवित्रता मन्त्रता सादगी क्षमा श्रीश्वर-परायणता और बुन्ही सब गुणोंकी सिखा दी गयी है जिन गुणोंके द्वारा स्त्री या पुरुष अवास्त और बहादुर बनते हैं। कोशी शिक्षायत किये बिना भुपपाप सफाभीका काम करनेवाले अपने महान महतर-अंगुओंको कुत्तोसि भी बुरा समझने मुनका तिरस्कार करने और भुन पर चुकनेमें न कोभी मुदातता है और न बहादुरी।

योग विदिया १९-१-'२१, पृ० २२ -

मैं कभी अस्पृश्यताको माननेके लिये अपने मनको तैयार नहीं कर सका। मैंने हमेशा उसे हिन्दू धर्मका अेक कर्मक माना है। यह मय है कि यह बुराभी हमारे यहाँ परम्परासे चली आयी है। परन्तु भिस तरह अन्य अनेक बुरे रिवाज आज तक चले आ रहे हैं। मुझे भिस कल्पनास ही धर्म जाती है कि सड़कियोंका समय बेदयावृत्तिके लिये ही अर्पण कर देना हिन्दू धर्मका अेक अंग था। फिर भी हिन्दुस्तानके बहुतसे हिन्दुओंके हिन्दुओंमें यह रिवाज है। कामीको पारसी बलि पढ़ाना मेरे समाकृत निष्पत अविर्म है और मैं उसे हिन्दू धर्मका अंग

नहीं समझता। हिन्दू धर्म तो अनेक युगोंके विकासका फल है। भारतके लोगोंके धर्मको हिन्दू नाम ही विदेशियोंका दिया हुआ है। जिसमें सबिह नहीं कि किसी समय धर्मके नाम पर पशुबलि की जाती थी। परन्तु यह धर्म नहीं है हिन्दू धर्म तो है ही नहीं। और किसी तरह मुझे लगता है कि अब गोरक्षा हमारे पूर्वजोंका धर्म बन गयी तब गोमांस खाने वालोंका समाजसे बहिष्कार किया गया। जिसके लिये कठिन सामाजिक संघर्ष हुआ होगा। यह सामाजिक बहिष्कार सिर्फ धर्मके विरोधियों पर ही लागू नहीं किया गया परन्तु अनेक पापोंका फल अनेकी सन्तानोंको भी दिया गया। यह रिवाज शायद शुरूमें तो अच्छे हेतुसे ही जारी हुआ होगा, परन्तु बादमें कठोर परिपाटीमें बदल गया और हमारे धर्म ग्रन्थोंमें भी कुछ जैसे श्लोक जोड़ दिये गये जिनसे अनेक रिवाजको बिलकुल अनुचित और अन्यायपूर्ण स्थायित्व मिल गया। मेरा यह अनुमान सही हो या न हो, असुस्थिता बुद्धिके और बया तथा प्रेमकी भावनाओंके बिना है। जिस धर्मने गायकी पूजाका प्रवर्तन और स्थापना की है यह मानव-प्राणियोंके निर्दय और अमानुषिक बहिष्कारका न तो कभी समर्थन कर सकता है न उसे किसी दशामें अहित मान सकता है। और मुझे तो दिन दूने और कुछसे कुछ लोगोंका त्याग करनेकी अपेक्षा अपने घरीरके टुकड़े टुकड़े करा लेनेमें अधिक सन्तोष होगा। चूंकि मुझे हिन्दू धर्म प्राणसे भी प्यारा है जिसलिये यह करक मेरे लिये अनेक असह्य नार बन गया है।

पंग विडिया ६-१०-२१ पु० ३१८-१९

मेरा निश्चित विश्वास है कि हिन्दुओंका हृदय असुस्थिताने कलकालसे बिलकुल मुक्त हो जाय तो जिस घटनाका अनिर्धार असर भारतकी समाज आतिथों पर ही नहीं होगा बल्कि सारी दुनिया पर होगा। मेरा यह विश्वास दिन-दिन दृढ़ होता जा रहा है। मैं कभी एक मानव प्राणियोंके प्रति अपने हृदयसे असुस्थिताको मिटा दूँ और दूसरे कुछ प्राणिके प्रति उसे कायम रखूँ यह संभव नहीं है। हिन्दू हृदयसे अंध-नीचका भेद भाव मिट जानेसे दूसरी आतिथोंके प्रति हमारे और अनेक आतिथोंके आपसी शीर्ष और अविश्वासके भाव अपने आप मिट जायेंगे। किसी कारण

मेने जिस सवाल पर अपने प्राणोंकी बाजी लगायी है। अस्पृश्यताके विरुद्ध यह लड़ायी लड़नेमें मैं केवल हिन्दू 'स्पृश्यों' और अस्पृश्यों' की भेदताके सिद्धे ही नहीं लड़ रहा हूँ परंतु हिन्दू मुसलमान, बीसाबी और सभी भिन्न भिन्न धार्मिक जातियोंकी भेदताके सिद्धे लड़ रहा हूँ।

हरिजन १७-११-३३, पृ० ४

अस्पृश्यता हिन्दुओं और हिन्दुओंके बीचसे ही नहीं बल्कि हिन्दू, बीसाबी, मुसलमान, पारसी और बाकीके लोगोंके बीचसे भी बिलकुल मिट जानी चाहिये। मेरा विश्वास है कि अगर यह बड़ा हृदय-परिवर्तन सम्पन्न हो जाय ता भारतमें हम सब एक होकर रहेंगे, एक-दूसरे पर भरोसा करेंगे और आपसमें कोयी अविश्वास या संदेह नहीं रहेगा। अपने विविध सूक्ष्म रूपोंके द्वारा यह अस्पृश्यताकी भावना ही हमें एक-दूसरेसे अलग करती है और जीवनको कुरूप और कठिन बनाती है।

हरिजन २६-१-३४ पृ० ४

अस्पृश्यता दूर करनेका अर्थ है सारी दुनियाके प्रति मैत्रीका भाव रखना भुसका सबक बनना। भिन्न तरह देखें तो अस्पृश्यता-निवारण अहिंसाका पर्याय बन जाता है और बस्तुतः ही भी। अहिंसा अर्थात् श्रीब्रह्मात्रके प्रति पूर्ण प्रेम। अस्पृश्यता-निवारणका भी यही अर्थ है। श्रीब्रह्मात्रके साथ भेद न करना—यह है अस्पृश्यता-निवारण। अस्पृश्यताको भिन्न दृष्टिसे देखें तो यह दोष कम-ज्यादा मात्रामें सारी दुनियामें फैला हुआ बीजता है।

मंगल-प्रभात (पु) पृ० २५-२६ १९५४

गोरक्षा

गोरक्षा हिन्दू हृदयकी प्रियतम सम्पत्ति है। जिसका गोरक्षामें विष्वाम नहीं वह घायद हिन्दू नहीं हो सकता। यह अुदात्त मिष्ठा है। मेरी दृष्टिमें गायकी पूजाका अर्थ है निर्दोषताकी पूजा। मेरे स्त्रिये गाय निर्दोषताकी मूर्ति है। गोरक्षाका अर्थ है कमजोरों और असहायोंकी रक्षा। अध्यापक वासवानौने ठीक ही कहा है कि गोरक्षाका अर्थ है मनुष्य और पशुके बीच मामीभार। यह एक अुदात्त भावना है जिसका विकास धैर्ययुक्त परिश्रम और तपस्यास होना चाहिये।

यंग विडिया ८-६-२१ पृ० १८२

गोरक्षाका विचार मेरे क्षयाससे मनुष्यके विकास क्रममें एक अत्यंत अद्भुत घटना है। वह मनुष्यको मनुष्य-जातिकी परिधिसे आगे ले जाती है। मेरे स्त्रिये गायका अर्थ है मनुष्यस नीचेका सारा जगत। गायके द्वारा मनुष्यको समस्त ज्ञेय-सृष्टिके साथ आत्मीयता अनुभव करनेके लिये कहा गया है। गायको ही क्यों यह वेवभाव प्रदान किया गया हागा, यह मेरे सामने स्पष्ट है। भारतमें गाय ही मनुष्यका सबसे अच्छा साथी सबसे बड़ा आधार थी। वह कामधेनु थी। वह दूध ही नहीं देती थी बल्कि सारी जेतीका आधार-स्तम्भ थी। गाय दया-धर्मकी मूर्तिमत् कविता है। जिस शान्त और सुकुमार पशुमें हम क्या अुमङ्गली देख सकते हैं। वह छाखों-करोड़ों भारतीयोंको पालनेवाली माता है। गायकी रक्षा श्रीश्वरकी तमाम मूक सृष्टिकी रक्षा है। जिस प्राचीन ऋषिको जिस सत्यका वर्णन हुआ अुसने आरम्भ गायसे किया। पशु-सृष्टिकी पुकार जिसस्त्रिये जोरदार है कि वह गुंमी है। गोरक्षा संसारको हिन्दू धर्मकी अनोखी देन है। और हिन्दू धर्म तक एक जीवित रहेगा जब तक गोरक्षा करनेवाले हिन्दू रहेंगे।

यंग विडिया ६-१०-२१ पृ० ११८ -

हमारे श्रुतियोंने यह अनुमत खोज की (और जिसकी सच्चाई पर मेरा विश्वास दिन-दिन अधिक जमता जा रहा है) कि धर्मशास्त्र और श्रीस्वर-प्रेरित रचनायें अपना सत्य भूरी मात्रामें प्रगट करती हैं जितनी हम अहिंसा और सत्यके पालनमें प्रवृत्ति करते हैं। सत्य और अहिंसाकी जितनी अधिक सिद्धि होगी हमारी बुद्धि मुतनी ही अधिक शीघ्रिभूती बनेगी। अहिंसी श्रुतियोंने यह दिया है कि गोरक्षा हिन्दुधर्म परम धर्म है और उसके पालनसे मोक्ष मिलता है। मगर मैं यह माननको तैयार नहीं कि केवल गाय नामक पशुको बचानसे ही किसीको मोक्ष मिल सकता है। मोक्षके लिये तो हमें अपने मोह द्वेष, भ्रम आदि आदि विकारोंसे पूरी तरह मुक्त होना पड़ता है। अिसलिये यह निष्कर्ष निकलता है कि मोक्षकी दृष्टिसे गोरक्षाका अर्थ जैसा आम तौर पर मान लिया गया है उससे कहीं ज्यादा व्यापक होगा। जिस गोरक्षामें हमें मोक्ष मिल सकता है वह वैसी ही होनी चाहिये जिसमें सभी प्राणियोंकी रक्षा सामिल हो। अिसलिये मेरी राममें अहिंसाके सिद्धान्तका छोटासा अंग भी अुवाहरणके लिये, किसी भी स्त्री पुरुष या बाउकका बठोर धनसे आधास पहुंचाना और ससारके दुर्बलसे दुर्बल तथा अल्पत नपुंसकीयको भी पोड़ा पहुंचाना आदि आरक्षाके सिद्धान्तका अंग होगा गो-मांस भक्षणके पापके समान होगा। अुससे मात्रामें यह भिन्न हो सकता है मगर अुसका प्रकार वही होगा।

यंग विद्विया, २९-१-२५, पु० ३९

जो हिन्दू गायकी रक्षा करता है अुस प्रत्यक प्राणीकी रक्षा करनी चाहिये। परन्तु सब बाउका खयाल करते हुये हमें अुसके गायकी रक्षा करने पर अिसीलिये सिबाधत नहीं हो सकती कि यह और प्राणियोंकी रक्षा नहीं करता। अिसलिये विचारणीय प्रश्न अक ही है कि अुगला गायकी रक्षा करना अुचित है या नहीं। और अुगला अैसा करना अनुचित नहीं है। अुगर प्राणियोंकी हत्या न करना अहिंसाके विश्वास रखनेवालेका सामान्य कर्तव्य मान लिया जाय। और प्रत्यक हिन्दू और हिन्दू ही क्या प्रत्यक धर्म-धरायण मनुष्य अैसा ही करता है। पशुआकी आम तौर पर न मारनेका कर्तव्य और अिसलिये अुसकी रक्षा करनेका

धर्म निविवाह रूपमें मान लेना पड़ता है। तो हिन्दू धर्मके लिये यह बड़े श्रेयकी बात है कि भुसने गोरक्षाको कलात्म्यके रूपमें स्वीकार किया। और यह हिन्दू हिन्दू धर्मका घटिया नमूना है जो केवल गोरक्षा पर टक जाता है, जब कि वह रक्षाकी भुजायें दूसरे पशुओंके लिये भी फैला सकता है। गाय तो केवल प्रतीक है और गायकी रक्षा कमसे कम बात है, जिसकी ओर हिन्दूसे आशा रखी जाती है।

गोरक्षाको प्रेरित करनेवाला हेतु निरा स्वार्थपूर्ण नहीं है यद्यपि स्वार्थका विचार बेसक भीषमें आता है। यदि निरे स्वार्थका ही खयाल होता तो गायका पूरा अुपयोग यम्द हो जाने पर दूसरे देशोंकी तरह यहाँ भी वह मार दी जाती। गायके भारी बोझ बन जाने पर भी हिन्दू भुसे मारेंगे नहीं। अपग और बेकार गायोंके पासनके लिये दान छीछ भोगोंने जो असंख्य गोशालायें कायम कर रखी हैं वे ओक प्रकारसे बिस दिशामें किये जानेवाले प्रयत्नका ज्वलंत प्रमाण है। यद्यपि बाँधित ध्येयकी पूर्तिकी बुद्धिसे ये सस्पायें बिस समय बहुत अपूर्ण हैं फिर भी बिस कार्यके पीछे जो हेतु है अुसका महत्व जिससे कम नहीं हो जाता।

बिसलिखे मेरी राममें गोरक्षाका सत्त्वज्ञान अूँधे दरजेका है। जहाँ तक जीनेके हकका सम्बन्ध है गोरक्षा पशु अगस्तको मनुष्यके बराबरकी सतह पर ला देती है।

संघ बिबिया ११-११-२६, पृ० १९१-९२

हिन्दू धर्मकी महत्त्वपूर्ण विशेषतायें

जैसे पश्चिमके लोगोंने भौतिक क्षेत्रमें अद्भुत आविष्कार किये हैं ठीक उसी तरह हिन्दू धर्मने धर्म और आत्मा-सम्बन्धी बातोंमें सुनते भी अधिक विरलक्षण आविष्कार किये हैं। परंतु बिन महान और सुन्दर कौशलोंकी तरफ हमारी नजर नहीं जाती। हम तो पारंपारिक विज्ञानने जो भौतिक प्रगति की है उसकी घफाघोंपमें आ जाते हैं। मुझे कुछ प्रमत्तिका मोह नहीं है। सच पूछा जाय तो यैसा समझता हूँ मानो श्रीदत्तने सोच-समझकर बुद्धिपूर्वक भारतको कुछ अंगकी प्रगति करनेसे रोकना हूँ ताकि वह भौतिकवादकी बाढ़को रोकनेका अपना काम मिथन पूरा कर सके। आगिर हिन्दू धर्ममें कोशरी अती विशेषता जरूर है जिसने अब तक मुसको जीवित रखा है। मुसने यैबिलोमिया सीरिया, श्रीराम और मिस्रकी सम्प्रदायोंका पतन देना है। अपने चारों ओर नजर डालिये। रोम और श्रीराम कहाँ है? क्या आपका आज कहीं भी मिस्रकी अिटली या यूँ कहिये कि प्राचीन रोम — क्योंकि तब रोम ही तो अिटली या — का नामनिधान मिला है? मुनाम चले जायिये। कहा है वह विद्वद्विख्यात अंटिक सम्प्रदाय? फिर भारतमें आगिये अत्यन्त प्राचीन जेहोंको देख जायिये और फिर अपने चारों तरफ नजर डालिये आपको कहना पड़ेगा हूँ मुझे प्राचीन भारत अब भी जीवित दिलायी दे रहा है।' वगैर अिपर मुझर घूरे भी विस्तायी पड़ेंगे परंतु मुझे नीचे रत्नराशियाँ गड़ी हुयी हैं। और हिन्दू धर्म अब तक बचा हुआ है, अियका कारण यह है कि मुसने अपने सामने भौतिक विकासका सक्षय न रखकर आध्यात्मिक विकासका लक्ष्य रखा है।

मुसकी अनेक देनोंमें मनुष्यकी मूख सृष्टिके साथ अेकतायी बत्पना अद्वितीय है। मेरे लयासे गोपूजा अेक महान विचार है जिमका विस्तार किया जा सकता है। आजकलके धर्म-परिवर्तनके रिवाजये हिन्दू धर्मका अछूता रहना भी मेरी दृष्टिसे अेक कीमती बात है। वह अपना

प्रचार नहीं करता। वह कहता है जीवन जियो वही सच्चा उपदेश है। उत्तम जीवन दिखाना मेरा काम है आपका काम है और तब हम अनेक युगों पर उसका प्रभाव छोड़ सकते हैं। और फिर देखिये उसने कैसे कैसे महापुरुष दिये हैं रामानुज शैतन्य रामकृष्ण आदिने — अधिक आपुनिक कारुणिक नामोंको मैं छोड़ देता हूँ — हिन्दू धर्म पर अपनी गहरी छाप छाड़ी है। प्रगट है कि हिन्दू धर्मकी न तो शक्ति समाप्त हुई है और न वह निष्प्राण हो गया है।

और फिर उसकी आश्रम-व्यवस्थाकी देनको देखिये वह भी एक विचक्षण देन है। सारी दुनियामें उसके वैसे कोमी चीज नहीं है। कैथलिक धर्मियोंमें ब्रह्मचारियोंका सघ है सही परन्तु वह कोमी सामान्य सामाजिक, सत्सा-नहीं है जब कि भारतमें प्रत्येक बालकको ब्रह्मचर्य-आश्रममें से गुजरना पड़ता था। कितनी महान कल्पना थी वह! आज हमारी आँखें मलिन हैं विचार और भी अधिक मलिन है और शरीर तो अत्यन्त मलिन है क्योंकि—हम हिन्दू धर्मसे विमुख हो गये हैं।

मेक और भी बात है जिसका मैंने भिन्न नहीं किया है। मैंस मूसरने ४० साल पहले कहा था कि यूरोपवासियोंको अब पता चल रहा है कि पुनर्जन्म कोमी अनुमान नहीं परन्तु सत्य वस्तु है। यह शोध सबसा हिन्दू धर्मकी ही देन है।

-- आजकल कर्नाथम धर्म और—हिन्दू धर्मका उसके अनुयायी सही प्रतिनिधित्व नहीं करते बल्कि उससे मुकटा आचरण भी करते हैं। लेकिन जिसका अस्वाभाव विनाश नहीं सुमार है। हम अपने आपमें सच्ची हिन्दू वृत्ति प्रगट करें और फिर पूछें कि उससे आत्माको सन्तोष होता है या नहीं।

पंथ विडिया २४-११-२७ पृ० ३९९

तुछनात्मक धर्म-विज्ञानकी एक अमरीकी अध्यापिकाने जो भारतीय धर्मोंका अध्ययन करनेके लिये भारतमें आयी है, गांधीजीसे पूछा कि हिन्दू धर्मका मुख्य महत्त्व संश्लेषमें क्या है?

उन्होंने जवाब देते हुये गांधीजीने कहा "हिन्दू धर्मका मुख्य महत्त्व पास्तबिक रूपमें यह विश्वास रखना है कि सब प्राणी (बेबल

मनुष्य ही नहीं, परंतु तमाम सजीव प्राणी) भेक हैं अर्थात् सब जीवोंका एक ही मुद्गम-स्थान है।

“सब प्राणियोंकी यह श्रेयता हिन्दू धर्मकी ही विशेषता है। तदनुसार हिन्दू धर्म मोक्षको केवल मानव-प्राणियों तक ही सीमित नहीं रखता, यह श्रेय मानता है कि मोक्ष श्रीशिवके सब जीवोंके लिये है। सम्भव है कि मानव-शरीरके बिना मुक्ति प्राप्त न हो सके परंतु जिससे मनुष्य सृष्टिका मालिक नहीं बन जाता। जिससे यह श्रीशिवकी सृष्टिका सेवक बनता है। जब हम मनुष्योंके भागी भागी होनेकी बात करते हैं तब हम वहीं रुक जाते हैं और मान लेते हैं कि अन्य सारे प्राणी मनुष्यके अपने ही मतलबके लिये दायणकी सामग्री हैं। परंतु हिन्दू धर्ममें सब प्रकारके दायणका निषेध है। मनुष्य प्राणीमात्रके साथ जिस प्रकारकी भेकता साधनेक लिये बड़ेसे बड़ा त्याग कर सकता है, वृत्तकी कोयी मर्यादा नहीं है। परंतु अवश्य ही जिस आदमकी महानता मनुष्यको जकरताका सीमित करती है। आप देखेंगे कि यह आपुनिक सम्मताकी स्थितिसे भुलटी स्थिति है क्योंकि आपुनिक सम्मता तो यह कहती है कि अपनी जरूरतें बढ़ायो। जिन लोगोंकी यह मान्यता है भुनके खयालसे जरूरतोंकी वृद्धि ज्ञानकी वृद्धि है और ज्ञानकी वृद्धिसे अनन्त श्रीशिवको ज्योवा अच्छी तरह समझा जा सकता है। जिसके विपरीत हिन्दू धर्म भोग और आवश्यकताओंकी वृद्धिका निषेध करता है, क्योंकि भुनसे परमात्माके साथ हमारा तादात्म्य साधनेमें बाधा पड़ती है।

हरिजन २६-१२-१९५५ पृ० ३९५

हिन्दू धर्मके दुर्लभतम स्वरूपमें ब्राह्मण, पीठी हाथी और इकपद—सबका एक ही धरमा है। और चूंकि हमारा तत्त्वज्ञान अतिना भूँसा है और हम भुन पर भ्रमल नहीं कर रहे हैं किसीलिये भुन तत्त्वज्ञानसे आज हमें बिरहिन हो गयी है। हिन्दू धर्म समस्त मानव-जातिके ही नहीं परंतु प्राणीमात्रके धानुत्वका आपह रखता है। यह श्रेयी कल्पना है जो हमें चबरा देती है परंतु हमें भुन पर भ्रमल करना है। क्यों ही हम मनुष्य मनुष्यके बीच गणनी और सजीव समानता स्थापित कर लेते

एवों ही हम मनुष्य और सारी सृष्टिके बीच समानता स्थापित कर सकेंगे। जब वह दिन आवेगा तब पृथ्वी पर धान्ति और मनुष्योंमें सद्भाव फैल जायगा।

हरिजन, २८-३-३६, पृ ५१

सनातन हिन्दू धर्म

मैं अपने आपको सनातनी हिन्दू कहता हूँ क्योंकि

(१) मेरा बचों उपनिषदों पुराणों और हिन्दू धर्मशास्त्रोंके नामसे प्रचलित सभी ग्रंथोंमें और अिसल्लिखे अबतारों और पुनर्जन्ममें विश्वास है।

(२) मेरा वर्णाश्रम धर्ममें अुसके—मेरे मतानुसार—वैदिक धर्ममें न कि मौजूदा प्रचलित और स्पूल धर्ममें विश्वास है।

(३) मेरा गोरक्षामें विश्वास है परन्तु प्रचलित धर्मसे कहीं व्यापक धर्ममें।

(४) मेरा मूर्तिपूजामें अविश्वास नहीं है।

पाठक देखेंगे कि मैंने बेदों या अन्य धर्मग्रन्थोंके लिखे अीस्वर-प्रेरित होनेका अिक्र ज्ञान-भूझकर नहीं किया है क्योंकि मैं यह नहीं मानता कि केवल बेद ही अीस्वर-प्रेरित हैं। मैं बामिबल कुरान और बिन्दावस्ताको भी बेदोंके बराबर ही अीस्वर-प्रेरित मानता हूँ। हिन्दू धर्मग्रन्थोंमें मेरा विश्वास यह नहीं कहता कि मैं अुनके अेक अेक सद्द और अेक अेक श्लोकको अीस्वर-प्रेरित मानूँ। मेरा यह दावा भी नहीं कि मैंने अुन अद्भुत ग्रंथोंका अध्ययन किया है और अुनका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया है। परन्तु मेरा यह दावा अरूर है कि मैं धर्मग्रंथोंकी असली शिक्षाकी सचाओको ज्ञानता और अनुभव करता हूँ। अुनका कोभी भी धर्म किठना ही पांडित्यपूर्ण क्यों न हो यदि वह बुद्धि अथवा नीतिके विरुद्ध है तो मैं अुसे माननेस अिनकार करता हूँ।

मुझे अिस हिन्दू सूत्र पर अटूट विश्वास है कि अिसने अहिंसा, सत्य और ब्रह्मधर्ममें पूर्णता प्राप्त नहीं कर ली है और समस्त धन तथा सम्पत्तिका त्याग नहीं कर दिया है अुसे शास्त्रका सच्चा ज्ञान नहीं होता।

मूत्र पुरुषकी संख्यामें विद्वान् है। परन्तु जिस युगमें लाखोंपे गुरुवे बिना काम चलाना होया क्योंकि पूर्ण सुदृढता और पूरा विद्वत्ताका सामंजस्य विरलमें ही पाया जाता है। परन्तु अपने धर्मकी सहायी कमी न कमी जान सकनेके बारेमें निराशा होनेकी जरूरत नहीं क्योंकि प्रत्येक महान धर्मकी भाँति हिन्दू धर्मकी बुनियादी बातें भी कमी बदलती नहीं और आसानीसे समझमें आ जाती है। प्रत्येक हिन्दू धर्ममें और अक्सरकी अद्वितीयतामें तथा पुनर्जन्म और मोक्षमें विश्वास करता है।

हिन्दू धर्मके प्रति अपनी भावनाका वर्णन करना मेरे लिये वैसे ही अशक्य है, जैसा अपनी पत्नीके प्रति अपनी भावनाका वर्णन करना। अक्सर मूत्र पर जो अक्षर होता है वह सखारकी और किसी स्त्रीका नहीं हो सकता। मुझमें दोष नहीं हों वो बात नहीं। मैं कह सकता हूँ जितने दोष मुझमें मुझे विद्याजी देते हैं उनसे नहीं अधिक है। परन्तु मैं अनुभव करता हूँ कि मेरे और अक्सर बीच एक अकाट्य बाँध है। हिन्दू धर्मके प्रति भी मेरी यही भावना है जैसे ही मुझमें किसी की दोष और मर्यादाएँ हों। गीता या तुलसीदास रामायणके संगीतमें मुझे जो मुस्लास हाता है वह और किसी चीजसे नहीं होता। हिन्दू धर्मकी यही वो पुस्तकें हैं जिन्हें जाननेका मैं दावा कर सकता हूँ। अक्सर बार जब मुझे भ्रष्टाचार या कि मेरा अन्तर्काल आ गया है तब गीतानें ही मुझे सान्त्वना दी थी। आजकल हिन्दुआदि बड़े बड़े मन्दिरोंमें जो सुराजी चल रही है उसे मैं जानता हूँ। परन्तु मुझमें अक्षरकी बाधाके बावजूद मुझे अक्सर प्रेम है। मुझमें मैं जिस आकर्षणका अनुभव करता हूँ, वैसे किसी और वस्तुमें अनुभव नहीं करता। मैं तुलसीदास और सुपाठक हूँ। परन्तु मेरा अक्सर मैंसे कभी जिस हृदय तक नहीं से जाता कि मैं हिन्दू धर्मकी कोशिश भी असली चीजका छोड़ दूँ।

हिन्दू धर्म वर्जनीय धर्म नहीं है। मुझमें संसारके सभी पैगम्बरोंकी पूजाके लिये स्थान है। मामूली अर्थमें वह कोशिश विनाशकारी — प्रसारका ध्येय रखनेवाला धर्म—नहीं है। अक्सर युगके अक्षरमें सभी जातियाँ समा गयी हैं परन्तु यह प्रक्रिया विनाशकारी स्वाभाविक प्रक्रियाकी तरह और अनुभव हमारे हुयी है। हिन्दू धर्म सब मनुष्यासे अपने ही धर्म

या शब्दाके अनुसार भीश्वरकी अुपासना करनेको कहता है और जिसलिये वह सब धर्मके साथ मिलकर शान्तिसे रहता है।

योग जिदिया, ६-१०-२१, पृ० ३१७-१८

हिन्दू धर्म विकासशील है

हिन्दू धर्म गगाकी तरह है, जो मूलमें शुद्ध और स्वच्छ है, मगर पत्तोंमें गंदगी अपने साथ ले लेती है। गगाकी ही भांति अुसका समग्र परिणाम अुपकारक ही है। प्रत्येक प्रान्तमें वह प्रांतीय स्वरूप ग्रहण करता है परन्तु अुसका भीतरी सार हर जगह कायम रहता है। रुढ़ि धर्म नहीं है। रुढ़ि बदल सकती है परन्तु धर्म अपरिवर्तित रहता है।

हिन्दू धर्मकी शुद्धता अुसके अनुयायियोंके आत्म-समय पर निर्भर करती है। जब कभी अुनक धर्मके लिये संकट अुपस्थित हुआ है तभी हिन्दुआने कठोर प्रायश्चित्त किया है, संकटके कारणोंका पता लगाया है और अुनका मुकाबला करनेके अुपाय सोचे हैं। शास्त्राका सतत विकास हो रहा है। वेद अुपनिषद् स्मृतियां पुराण और अिसिद्वाय सब अेक ही साथ पैदा नहीं हो गये। प्रत्येक समय-विशेषकी आवश्यकताओंसे न अुत्पन्न हुये और अिसलिये अुनमें पारस्परिक विरोध पाया जाता है। ये ग्रंथ समाप्त सत्यका नये ढंगसे निरूपण नहीं करत बल्कि यह बत-साते हैं कि जिस समयसे अिन ग्रन्थोंका सम्बन्ध है अुस समय अुस सत्यका पालन किस तरह किया जाता था। कोभी रिवाज जो किसी आस समयके लिये अच्छा था अगर दूसरे समयमें बिना सोचे-समझे जारी रखा जाय तो वह हमें निराशाके गर्तमें ही गिरायेगा। अुंकि किसी समय पशुबलिका रिवाज था अिसलिये क्या हम अुसे आज फिर जारी कर दें? अुंकि किसी कालमें हम गोमांस खाते थे अिसलिये क्या अब भी अैसा ही करें? अुंकि किसी समय जोरोंके हाथ-पीर काट दिये जाते थे, अिसलिये क्या अब भी अिस बर्बर प्रथाका पुनरुद्धार किया जाय? क्या अनेक पधियोंकी प्रथा फिरसे जारी की जाय? क्या शास्त्र-विवाहको हम फिर आरू करेंगे? अुंकि किसी दिन हमने मनुष्य

आतिके अेक हिस्सेका बहिष्कार किया था, मितीलिभे क्या आज भी
धुसकी सन्तानोंको हम अस्मृत समझेंगे ?

हिन्दू धर्म जैसे ये की दशासे घृणा करता है। ज्ञान असीम है और
यही बात सत्यके प्रयोगकी है। हम प्रतिदिन आत्मशक्तिके ज्ञानमें वृद्धि करते
हैं और करते रहेंगे। नया अनुभव हमें नये सर्वस्य सिखावेगा, परंतु
सत्य हमेशा वही रहेगा। सत्यको पूरी तरह कौन जान पाया है ?

यंग सिद्धिया, ८-४-१२६ पृ० १३१-३२

संसारके अम्य धर्मोंके प्रायेणापूर्ण अध्ययनके प्रकाशमें और जिससे
भी अधिक गीतामें बताया हुवे हिन्दू धर्मकी सिद्धांत अनुसार जीवन बितानेकी
कोशिशके फलस्वरूप प्राप्त हुवे अनुभवोंके आधार पर मैंने हिन्दू
धर्मको विस्तृत धर्म देनेका प्रयत्न किया है। परन्तु यह धर्म सीधतानकर
हरिगज नहीं किया गया है। और हिन्दू धर्म भी वह नहीं जो
अपने विपुल धर्मग्रंथोंमें सड़ा पड़ा है, भेरा मत्तज्ज धुस मजीब धर्ममे है जो
माताकी तरह अपने पीड़ित बालकसे बात करता हा। मैंने जो कुछ किया
है वह पूरी तरह इतिहास-सम्मत है। मैं हमारे पूर्वजोंके पदचिह्नों पर चला
हुं। अेक समय था जब वे कुछ देवताओंको खुद करनेके लिये पशुमांस
भक्षिदान करते थे। वे धुमे यज्ञ कहते थे। धुनकी सन्तानोंने यानी हमारे
धुन पूर्वजोंने जो दादमें आये यज्ञ' शब्दका भिन्न अर्थ किया और
सिखाया कि भक्षिदान हमारी धपनी नीच कृतियोंका होगा चाहिये
और वह कुछ देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये नहीं परन्तु अेकमात्र
जीत-आगते अन्तर्यामीके संतोषके लिये होगा चाहिये।

हरिजन, १-१०-१६ पृ० २६६

मुझे साधु-मन्यामी कहना मरुत है। मेरे जीवनका नियमन
करनेवाके आदम ममस्त मातक-आतिके अपतानेके लिये प्रस्तुत है। मैंने
मुहें क्रमिक विनाग द्वारा प्राप्त किया है। प्रत्येक काम योजनापूर्वक
अच्छी तरह विचार करके और गूढ मननक साथ मूढाया गया था। भेरा
बहापय और मेरी अहिंसा दोनोंका अन्धकार निबी अनुभव था और वे
मार्वाजतिक बतव्यकी पुकारके अभावमें आदरक हो धर्म थे। इति

अफीकामें गृहस्थ बफीस समाज-सुधारक या राजनीतिज्ञ किसी भी रूपमें मुझे जो दूसरोंसे अलग प्रकारका अेकाकी जीवन ब्यतीत करना पड़ा मुसका तकाजा था कि बिन कर्तव्योंका समुचित पालन करनेके लिये यौन-जीवनका कठोर नियमन और देशवासियोंके साथ या यूरोपियनोंके साथ अपने व्यवहारमें अहिंसा और सत्यका कठोर पालन किया जाय। किन्ती मामूली आदमीसे जरा भी बढ़ा होनेका मेरा दावा नहीं है। मेरी योग्यता तो अुससे भी कम है। परिश्रमपूर्ण श्रोजके धाद में अहिंसा या ब्रह्मचर्यकी जो धाड़ी साधना कर सका हूँ मुसके लिये किसी विशेष योग्यताका भी मैं दावा नहीं कर सकता। मुझे शेषमात्र सन्देह नहीं कि जो कुछ भने प्राप्त किया है अुसे कोअी भी स्त्री या पुरुष प्राप्त कर सकता है यदि वह अुतना ही प्रयत्न करे और अुतनी ही धाधा और भडा रहे।

हरिजन ३-१०-२६ पृ० २६८

सत्यसे भिन्न कोअी परमेश्वर है, अैसा भेने कभी अनुभव नहीं किया। यदि बिन प्रकरणोंके पन्ने-पन्नेसे यह प्रतीति न हुअी हो कि सत्यमय बननेका अेकमात्र मार्ग अहिंसा ही है तो मैं अिस प्रयत्नको ब्यर्थ समझता हूँ। प्रयत्न चाहे ब्यर्थ हो किन्तु वचन ब्यर्थ नहीं है। मेरी अहिंसा सच्ची होने पर भी कच्ची है, अपूर्ण है। अतअेव हजारों सूर्योंको भिक्कटा करनेसे भी अिस सत्यस्त्री सूर्यके तेजका पूरा माप नहीं निकल सकता सत्यकी मेरी भांकी अैसे सूर्यकी केवल अेक किरणके दर्शनके समान ही है। आज तकके अपने प्रयोगोंके अंतमें मैं अितना तो अवश्य कह सकता हूँ कि सत्यका सपूर्ण दर्शन संपूर्ण अहिंसाके बिना असंभव है।

अैसे ब्यापक सत्यनारायणके प्रत्यक्ष दर्शनके लिये जीवमात्रके प्रति आत्मवत् प्रेमकी परम आवश्यकता है। और, जो मनुष्य अैसा करना चाहता है वह जीवनके किसी भी क्षेत्रसे बाहर नहीं रह सकता। पही कारण है कि सत्यकी मेरी पूजा मुझे राजनीतिमें शीघ्र लायी है। जो मनुष्य यह कहता है कि धर्मका राजनीतिसे कोअी संबंध नहीं है वह धर्मको नहीं जानता अैसा कहनेमें मुझे संकोच नहीं होता और न अैसा कहनेमें मैं अपिनय करता हूँ।

बिना आत्मशुद्धिके जीवमात्रके साथ भेदक्य सम्भ ही नहीं सकता। आत्मशुद्धिके बिना अहिंसा-धर्मका पाछन सर्वथा असंभव है। बगुड़ आत्मा परमात्माके वधान करनेमें असमर्थ है। अतथेव जीवन-भार्यके सभी क्षेत्रोंमें शुद्धिकी आवश्यकता है। यह शुद्धि साम्य है, क्योंकि व्यक्ति और समष्टिके बीच अंधा निकटका संबंध है कि एककी शुद्धि अनेकोंकी शुद्धिके बराबर हो जाती है। और व्यक्तिगत प्रयत्न करनेकी शक्ति तो सत्यनारायणने सबको जन्मसे ही दी है।

अकिम मैं प्रतिक्षण यह अनुभव करता हूँ कि शुद्धिका यह मार्ग विफट है। शुद्ध बननेका अर्थ है मनसे, बचनसे और वायासे निर्विकार बनना राग-द्वेषादिसे रहित होना। विद्य निर्विकारता तक पहुँचनेका प्रतिक्षण प्रयत्न करते हुये भी मैं पहुँच नहीं पाया हूँ भिसक्तिमे लोगोकी स्तुति मुझे मुलापेमें नहीं बाल सकती। भुस्ते, यह स्तुति प्रायः तीव्र वेदना पहुँचाती है। मनके विकारोंको जीतना संसारको परस्वमुद्धारे जीतनेकी अपेक्षा मुझे कठिन मालूम होता है। हिन्दुस्थान आनके बार भी मैं अपने सीठर छिपे हुये विकारोंका दम सका हूँ परमिन्दा हुआ हूँ किन्तु हारा नहीं हूँ। सत्यके प्रयोग फरत हुअ मेने आनन्द लटा है और आज भी झूट रहा हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि अभी मुझे विकट मार्ग तय करना है। भिसके लिये मुझे दृग्पथ बनना है। मनुष्य जब तक स्वेच्छासे अपनेकी सयरे नीचे नहीं रखता तब तक मुझे मुक्ति नहीं मिलती। अहिंसा नभ्रताकी परकाष्ठा है।

आत्मवधा पृ० ४१२-३३ १९५७

अुपसहार

मैंने जो मठ बनाये हैं और जिन परिणामों पर मैं पहुंचा हूँ वे अन्तिम नहीं हैं। मैं अुन्हें कल बदल सकता हूँ मेरे पास बुनियादी सिद्धान्तके लिये कोई भी नीबू नहीं है। सत्य और अहिंसा सृष्टिके आरम्भसे घले आ रहे हैं। मैंने केवल अुनका अधिकसे अधिक विश्वास पैमाने पर प्रयोग करनेकी कोशिश की है। ऐसा करते हुंमे मने कमी कमी मुझे डी है और अपनी भूलासे सीखा है। अिस प्रकार जीवन और अुसकी समस्यायें मेरे लिये सत्य और अहिंसाके पालनके प्रयोग बन गयी हैं।

हरिजन २८-१-३६ पृ० ४९

सत्य और अहिंसामें मेरा विश्वास दिन दिन बढ़ रहा है और ज्यों ज्यों मैं अपने जीवनमें अुनका पालन करनेका सतत प्रयत्न कर रहा हूँ त्यों त्यों हर क्षण मेरा भी विकास हो रहा है। मुझे अुनके नये गुकार्यें दिखायी दे रहे हैं। मैं अुन्हें रोज नये प्रकाशमें देखता हूँ और अुनमें नये-नये अर्थ पढ़ता हूँ।

हरिजन १-५-३७ पृ० ९४

लिखते समय मैं यह कभी नहीं सोचता कि मैं पहले क्या कह चुका हूँ। मेरा लक्ष्य यह नहीं है कि किसी प्रश्न पर मैं जो विचार प्रगट करूँ वे अुस प्रश्न पर मैं पहले जो कुछ कहा चुका हूँ अुसके साथ सुसंगत हों। मेरा लक्ष्य जिस समय सत्य मुझे अिस रूपमें दिखायी दे रहा हो अुसके अनुसार ही अपने विचार प्रगट करनेका हाता है। परिणाम यह हुआ है कि मैं सत्यकी दिशामें लगातार बढ़ता गया हूँ अपनी स्मरण-शक्तिको अुनुचित परिधमसे बचा सका हूँ और अिससे भी बड़ी बात यह है कि जब कभी मुझे अपनी ५० वर्ष पहले लिखी गयी

बिना आत्मशुद्धिके जीवमात्रके साथ भेद्य सप ही नहीं सनता। आत्मशुद्धिके बिना अहिंसा-धर्मका पालन सर्वथा असंभव है। अशुद्ध आत्मा परमात्माके दर्शन करनेमें असमर्थ है। असंभव जीवन-मार्गके सभी क्षेत्रोंमें शुद्धिकी आवश्यकता है। यह शुद्धि साध्य है क्योंकि स्पष्टि और समष्टिके बीच भेदा निकटवा संबंध है कि भेदकी शुद्धि बनेकोई शुद्धिके बराबर हो जाती है। और व्यक्तिगत प्रयत्न करनेकी शक्ति तो सत्यनारायणने सबको जन्मसे ही दी है।

लेकिन मैं प्रतिक्षण यह अनुभव करता हूँ कि शुद्धिना यह मार्ग विकट है। शुद्ध बननेका अर्थ है मनसे बचनसे और क़ायाने निर्बिकार बनना राग-द्वेषादिसे रहित होना। जिस निर्बिकारता तक पहुँचनेका प्रतिक्षण प्रयत्न करते हुये भी मैं पहुँच नहीं पाया हूँ अियमिते संशयोंकी स्तुति मुझे भ्रष्टाचारमें नहीं डाल सकती। अमुकडे, यह स्तुति प्रायः तीव्र घोरता पहुँचाती है। मनके विकारोंको जीतना संसारको शरणपुत्रम जीतनेकी अपेक्षा मुझे कठिन मानसू हाता है। हिन्दुस्तान जानेके बाद भी मैं अपने भीतर छिपे हुये विकारोंका देग सथा हूँ, पारमिषदा हुआ हूँ किन्तु हारा नहीं हूँ। सत्यके प्रयोग करते हुये मैंने मानसू स्रुता है और ध्यान भी स्रुट रहा हूँ। लेकिन मैं पालता हूँ कि अभी मुझे विकट मार्ग सम करना है। अिसके लिये मुझे ध्यानवत् बनना है। मगूष्य जब तक स्वेच्छास अपनेको सबसे नीचे नहीं रगता, तब तक मुझे मुक्ति नहीं मिलती। अहिंसा ममताकी परकगण्डा है।

आत्मकथा, पृ० ४३२-३३, १९५७

अपसहार

मैंने जो मठ बनाये हैं और जिन परिणामों पर मैं पहुंचा हूँ वे अन्तिम नहीं हैं। मैं मुझे कुछ बदल सकता हूँ मेरे पास दुनियाको सिखानेके लिये कोसी ममी शीब नहीं है। सत्य और अहिंसा सृष्टिके मारम्भसे चले आ रहे हैं। मने केवल भुनका अधिकसे अधिक विज्ञान पैमाने पर प्रयोग करनेकी कोशिश की है। मैंसा करते हुमे मैंने कभी कभी भूछें की है और अपनी भूछोंसे सीखा है। जिस प्रकार जीवन और भुसकी समस्यामें मेरे लिये सत्य और अहिंसाके पालनके प्रयोग बन गयी है।

हरिजन २८-३-३६ पृ० ४९

सत्य और अहिंसामें मेरा विश्वास दिन-दिन बढ़ रहा है और ज्यों ज्यों मैं अपने जीवनमें भुनका पालन करनेका सतत प्रयत्न कर रहा हूँ त्यों त्यों हर क्षण मेरा भी विकास हो रहा है। मुझे भुनके नये गुणकार्य दिखामी दे रहे हैं। मैं मुझे रोज नये प्रकाशमें देखता हूँ और भुनमें नये-नये बर्ष पढ़ता हूँ।

हरिजन १-५-३७, पृ० ९४

लिखते समय मैं यह कभी नहीं सोचता कि मैं पहले क्या कह चुका हूँ। मेरा रुक्य यह नहीं है कि किसी प्रश्न पर मैं जो विचार प्रगट करूँ वे भुस प्रश्न पर मैं पहले जो कुछ कहा चुका हूँ भुसके साथ सुसंगत हों। मेरा रुक्य जिस समय सत्य मुझे जिस रूपमें दिखामी दे रहा हो भुसके अनुसार ही अपने विचार प्रगट करनेका होता है। परिणाम यह हुआ है कि मैं सत्यकी दिशामें लगातार बढ़ता गया हूँ, अपनी स्मरण-शक्तिको अनुचित परिश्रमसे बचा सका हूँ और जिससे भी बड़ी बात यह है कि जब कभी मुझे अपनी ५० बर्ष पहले लिखी गयी

पीअकी ताअी लिखी गयी पीअसे तुलना करनी पड़ी है तो मुझे दोनोंमें कोअी असंगतता मामूम नहीं हुअी है। परन्तु जिन माजियाका अनग तता दिआअी दे मुअके लिअे अछा यही है कि वे मेरी ताअी रचनासं निफलनेबाअे अर्पणो ही प्रहण करें। अुअें पुराना अर्प भी पसन्द हो तो दूसरी बात है। परन्तु चुनाव करनेमें पहले अुअें यह देसनकी काणिा करनेी आहिजे कि अुअ दिआअी देनयाली असंगततामें कहीं कोअी बुनि यादी और स्वायी संगतता तो नहीं है।

हरिजन ३०-९-३९, पृ० २८८

अगर अिस बातकी समुचित नअताके साय और किसी भी प्रकारके अभिमानके बिना कहा जा सकता हो तो मैं कह सकता हूं कि मरा अन्देअ और मेरी कार्य-मदति वास्तवमें सारे संसारके लिअे है।

मुझे लिखित या कथित सभ्यकी अपहा विचारकी शक्तिमें अधिक विश्वास है। और अिस आम्नेलनका प्रतिनिधित्व मैं करना आहूजा हूं अुअमें यदि जीवन-शक्ति है और अुअ भगवानका आणीबांद प्राप्त है तो वह संसारके भिन्न भिन्न भागोंमें मेरी धारीरिक अुपरियतिक बिना ही धारी दुनियामें फैल जायगा।

यंग सिडिया, १७-९-२५, पृ० ३२०

मैं अेया दावा नहीं करता कि अुअमें कोअी विशेष दैवी शक्ति है। पैगम्बर होनेका दावा भी मैं नहीं करता। मैं तो सरयका अेर अत्र साधक-मान हूं और असे प्राप्त करने पर तुला हुआ हूं। अौणरके प्रत्यक्ष दर्शनसे साठिर मैं किसी भी कुरबानीका बहुत बड़ी नहीं समझता।

हरिजन, ६-५-३९, पृ० ४

अब माअी विमलाने बार बार मुझे पूअते हैं कि क्या मिरा अिगरा कोअी सम्प्रदाय स्थापित करने या विशेष दिअ्यताका दावा करनेका है। मैंने अुअें सानसो पत्र लिखकर जवाब दे दिया है, मगर वे आटो है कि आनेवाली पीढ़ीके लिअे मैं अिस बातकी प्रक्य घोषणा करूं। मैंने गोआ या कि मैं ओरदार भागमें निअ्यताक किसी भी दावे

खिनकार कर चुका हूँ। मेरा दावा तो खितना ही है कि मैं भारत और मानव-जातिका भेक नम्र सेवक हूँ और यही सेवा करते हुअे मरनेकी खिञ्छा रसता हूँ। कोखी सम्प्रदाय स्थापित करनेकी मुझे खिञ्छा नहीं है। बास्तवमें मैं खितना महत्त्वाकांक्षी हूँ कि किसी धम्प्रदायके अनुयायियोंसे मुझे सतोप नहीं हो सकता क्योंकि मैं किसी नये सत्यका प्रतिमिधि नहीं हूँ। मैं सत्यको भिस रूपमें जानता हूँ खुस पर चसने और खुसे प्रगट करनेकी कोशिश करता हूँ। बेदाक मैं अनेक पुराने सत्वों पर मया प्रकाश डालनेका दावा जरूर करता हूँ। आशा है भिस वक्तव्यसे प्रदनकर्ताको और खुनके बीसे दूसरे लोगोंको सन्तोप हो पायगा।

मग भिडिया, २५-८-२१ पृ० २६७

सूची,

- 'अन्दु विष सास्ट १९
 अन्तर्नाद ५६-५८
 अपरिग्रह या परोक्षी १४१-४३
 अवतार १७२-७४
 अस्तेय १४३-४५
 अस्पृश्यता १८२-८४
 आहिंसा ५९ ६१ ९२-९८, १२८
 ३०, -हमारी मानव-जातिका
 धर्म ८८-८९
 आहिंसात्मक आर्थिक रचना १५४
 ५५
 आहिंसात्मक राजनीतिक रचना
 १५७-५८
 धार्मिक समानता १५२-५४
 आश्रम २५ -के प्रथ १२४-४५
 -में हर सप्ताह सीताका पाठ
 २५
 आत्मकोषं श्रुत ३६
 अद्विज-दमन १०४, १०६, १०७
 अस्तित्व ३१
 भीष्म -का अस्तित्व है
 ३९-४३ -में गांधीजीकी

- निष्ठा ५१-५५ -सम्पूर्ण
 भारत-समर्पण मांगता है ११२
 भीसा २९
 भीसाभी धर्म २९ ३९ ३७
 मुनवाठ १०३-०७, -का सम्बन्ध
 सभी अिन्द्रियों और अंपोत्रि
 १०७ -पूरा और आधिक
 १०५ -अविनागत और
 सामूहिक १०६ -गणसे
 सच्ची प्राथना १०६
 गांधीजी -अन्तर्नाद पर ५६-५८
 -और भीष्मरकी भावान ५४,
 -और भीमेकी पॉलिसी १९;
 -का हमारे धर्मके सम्बन्धमें
 दृष्टिकोण ३८ -का मुझमें
 भाग देनेके सम्बन्धमें स्पष्टी
 करण ८० ९० -की रायमें-
 कायरता सबसे बड़ा दुर्गुण
 ११०, -की रायमें बोरे-बहुत
 एक धर्म मन्त्रे २१, २२-२३,
 -की रायमें मनुष्यकी हाकि
 -कायबाले पशुओंकी दृष्टिमें

